.822
88Ч

वैशाली की
नगरवधू
र्य चतुरसेन

वैशाली की नगरवधू

बौद्धकालीन सर्वसुन्दरी वेश्या अम्बपाली के मार्मिक जीवन पर आधारित 'वैशाली की नगरवधू' हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासों में प्रमुख है। इसी उपन्यास के सम्बन्ध में इसके लेखक आचार्य चतुरसेन ने लिखा था—"मैं अपनी आज तक की सारी रचनाएं रद्द करता हूं और 'वैशाली की नगरवधू' को अपनी एकमात्र रचना घोषित करता हूं।"

आचार्य चतुरसेन बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार थे। आपने उपन्यास, कहानी, नाटक के अलावा अन्य अनेक विषयों पर लगभग दो सौ रचनाएं लिखीं। पाठकों ने उन्हें बहुत अधिक चाहा और सराहा है। पॉकेट बुक के लिए यह संक्षिप्त संस्करण है।

हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटिड

जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

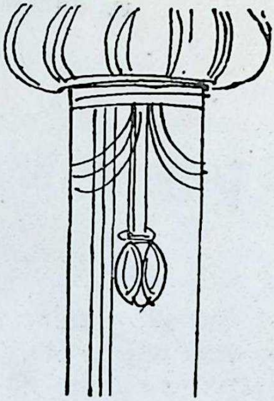

हिन्दी का महान उपन्यास

वैशाली की नगर वधू

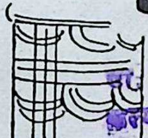

दिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

आचार्य चतुरसेन

© आचार्य चतुरसेन

891.433
आ 88 वै

VAISHALI KI NAGARVADHU
NOVEL
ACHARYA CHATURSEN

वैशाली की नगरवधू

प्रवेश

ुज़फ्फरपुर से पश्चिम की ओर जो पक्की सड़क जाती है—उसपर, ुज़फ्फरपुर से लगभग अठारह मील दूर 'बँसौढ़' नामक एक बिलकुल ोटा-सा गांव है। उसमें अब तीस-चालीस घर भूमिहार ब्राह्मणों के ौर कुछ गिनती के घर क्षत्रियों के बच रहे हैं। गांव के चारों ओर ोसों तक खण्डहर, टीले और पुरानी टूटी-फूटी मूर्तियां ढेर की ढेर मलती हैं, जो इस बात की याद दिलाती हैं कि कभी यहां कोई बड़ा ारी समृद्ध नगर बसा रहा होगा।

वास्तव में वहां, अब से कोई ढाई हज़ार वर्ष पूर्व, एक विशाल गरी बसी थी—वैशाली। यह लिच्छवियों के वज्जी संघ की राज- ानी थी। विदेह राज्य टूटकर यह वज्जी संघ बना था। इस संघ में देह, लिच्छवि, क्षात्रिक, वज्जी, उग्र, भोज, इक्ष्वाकु और कौरव, ये ाठ कुल सम्मिलित थे, जो अष्टकुल कहलाते थे। अष्टकुल से संयुक्त िच्छवियों का यह संघ व्रात्यसंकरों का संघ था; और इनका यह गण- न्त्र पूर्वी भारत में तब एकमात्र आदर्श और सामर्थ्यवान संघ था, ो प्रतापी मगध साम्राज्य की उस समय की सबसे बड़ी राजनीतिक ौर सामरिक बाधा थी।

वज्जी संघ का शासन एक राजपरिषद् करती थी, जिसका चुनाव र सातवें वर्ष उसी अष्टकुल में से होता था। निर्वाचित सदस्य परिषद् एकत्र होकर वज्जी चैत्यों, वज्जी संस्थाओं और राज्य-व्यवस्था का लन करते थे।

वत्स, कोसल, काशी और मगध साम्राज्य से घिरा रहने तथा वस्ती से राजगृह के मार्ग पर अवस्थित रहने के कारण यह स्वतन्त्र ागरिकों का नगर उन दिनों व्यापारिक और राजनीतिक संघर्षों का

केन्द्र बना हुआ था। देश-देश के व्यापारी, जौहरी, शिल्पकार औ यात्री लोगों से यह नगर सदा परिपूर्ण रहता था। 'श्रेष्ठिचत्त्वर', ज यहां का प्रधान बाज़ार था, में बड़े-बड़े दूकानदार स्वच्छ परिधा धारण किए, पान की गिलौरियां कल्लों में दबाए, हंस-हंसकर ग्राहक से लेन-देन करते थे। जौहरी पन्ना, लाल, मूंगा, मोती, पुखराज, हीर और अन्य रत्नों की परीक्षा तथा लेन-देन में व्यस्त रहते थे। गन्ध लोग केसर के थैले हिलाते, चन्दन के तेल में गन्ध मिलाकर इत्र बना थे, जिनका नागरिक खुला उपयोग करते थे। रेशम और बहुमूल्य मही मलमल के व्यापारियों की दूकानों पर बेबीलोन और फारस के व्यापा लम्बे-लम्बे लबादे पहने भीड़ की भीड़ पड़े रहते थे। नगर की गलि संकरी और तंग थीं, और उनमें गगनचुम्बी अट्टालिकाएं खड़ी थ जिनके अंधेरे और विशाल तहखानों में इन धनकुबेरों की अतुल सम्प और स्वर्णरत्न भरे पड़े रहते थे।

दिन निकलने में अभी देर थी। पूर्व की ओर प्रकाश की आभ दिखाई पड़ रही थी। उसमें वैशाली के राजप्रासादों के स्वर्ण-कलश की धूमिल स्वर्ण-क्रान्ति बड़ी प्रभावोत्पादक दीख पड़ रही थी। राज प्रासाद के मुख्य तोरण पर अभी प्रकाश जल रहा था। पार्श्व के रक्ष गृहों में प्रहरी और प्रतिहार पड़े सो रहे थे। तोरण के बीचोबीच ए दीर्घकाय मनुष्य भाले पर टेक दिए ऊंघ रहा था।

धीरे-धीरे दिन का प्रकाश फैलने लगा। राजकर्मचारी और ना रिक इधर-उधर आने-जाने लगे। प्रतिहारों का एक नया दल तोर पर आ पहुंचा। उसके नायक ने आगे बढ़कर भाले के सहारे खड़े ऊं मनुष्य को पुकारकर कहा—"सामन्त महानामन्, सावधान हो जा और घर जाकर विश्राम करो।" महानामन् ने सजग होकर अप दीर्घकाय शरीर को और भी विस्तार करके एक ज़ोर की अंगड़ाई और 'तुम्हारा कल्याण हो नायक' कहकर वह अपना भाला पृथ्वी प टेकता हुआ तृतीय तोरण की ओर बढ़ गया।

सप्तभूमि राजप्रासाद के पच्छिम की ओर प्रासाद का उपवन थ जिसकी देखरेख नायक महानामन् के ही सुपुर्द थी। यहीं वह अप प्रौढ़ा पत्नी के साथ अड़तीस वर्ष से गण की सेवा करता आ रहा थ

अभी भी वह नींद में ऊंघता हुआ झूम-झूमकर चला जा र था। उसने आम्रकुंज में एक आम्रवृक्ष के नीचे, एक श्वेत वस्तु प

रहने का भान किया। निकट जाकर देखा, एक नवजात शिशु स्वच्छ वस्त्र में लिपटा हुआ अपना अंगूठा चूस रहा है। आश्चर्यचकित होकर महानामन् ने शिशु को उठा लिया। देखा—कन्या है। उसने कन्या को उठाकर हृदय से लगाया और अपनी स्त्री को वह कन्या देकर कहा—"देखो, आज इस प्रकार हमारे जीवन की एक पुरानी साध मिटी।"

और वह उसी आम्रकानन में उस एकाकी दम्पती की आंखों के आगे शशिकिरण की भांति बढ़ने लगी। उसका नाम रखा गया 'अम्बपाली', उसी आम्रवृक्ष की स्मृति में, जहां से उसे पाया गया था।

ग्यारह बरस बाद। वैशाली के उत्तर-पश्चिम में पचीस-तीस कोस पर अवस्थित एक छोटे-से ग्राम में एक वृद्ध अपने घर के द्वार पर प्रातः-काल के समय दातौन कर रहा था। पैरों की आहट सुनकर उसने पीछे की ओर देखा। चम्पक पुष्प की कली के समान ग्यारह वर्ष की एक अति सुन्दरी बालिका, जिसके घुंघराले बाल हवा में लहरा रहे थे, दौड़ती हुई आई और वृद्ध से लिपटते हुए बोली—"बाबा, देखा है तुमने रोहण का वह कंचुक ? वैशाली की सभी लड़कियां वैसा ही कंचुक पहनती हैं, मैं भी वैसा ही लूंगी, बाबा !"

वृद्ध की आंखों में पानी और होंठों में हास्य आया। उसने कहा—"अच्छा, अच्छा, मैं तुझे वैशाली से वैसा ही कंचुक मंगा दूंगा, बेटी !"

"पर बाबा, तुम्हारे पास दम्म कहां हैं ? वैसा बढ़िया चमकीला कंचुक छै दम्म में आता है, जानते हो ?"

वृद्ध की भृकुटी कुंचित हुई और ललाट पर चिन्ता की रेखा पड़ गई। वृद्ध की पत्नी को मरे आठ साल बीत चुके थे। उसके बाद कन्या की परिचर्या में बाधा पड़ती देख सामन्त महानामन् राजसेवा त्यागकर अपने ग्राम में आ कन्या की सेवा-सुश्रूषा में अबाध रूप से लगे रहते थे। अम्बपाली को उन्होंने इस भांति पाला था, जैसे पक्षी चुग्गा देकर अपने शिशु को पालता है। अब उसकी छोटी-सी कमाई की क्षुद्र पूंजी यत्न से खर्च करने पर भी समाप्त हो गई थी। अब आज जैसे उसने देखा—उसके प्राणों की पुतली यह बालिका जीवन में आगे बढ़ रही है। उसकी अभिलाषाएं जाग्रत् हो रही हैं, और भी जाग्रत् होंगी। यही सोचकर वृद्ध महानामन् चिन्तित हो उठे; किन्तु उन्होंने हंसकर तड़ातड़ तीन-चार चुम्बन बालिका के लिए और गोद से उतारकर कहा—"वैसा ही बढ़िया कंचुक ला दूंगा, बेटी !"

बालिका खुश होकर तितली की भांति घर में भाग गई और वृद्ध की आंखों से दो-तीन बूंद गर्म आंसू टपक पड़े। वे चिन्तित भाव से बैठकर सोचने लगे—एक बार फिर वैशाली चलकर पुरानी नौकरी की याचना की जाए। वृद्ध का बाहुबल थक चुका था। किन्तु क्या किया जाए? कन्या का विचार सर्वोपरि था। परन्तु वृद्ध के चिन्तित होने का केवल यही कारण न था। बड़ा कारण था—बालिका का अप्रितम सौन्दर्य। उन्हें भय था कि वज्जियों के उस विचित्र कानून के अनुसार उनकी कन्या विवाह से वंचित करके कहीं 'नगरवधू' न बना दी जाए। वज्जी गन्तन्त्र में यह विचित्र कानून था कि उस गणराज्य में जो कन्या सर्वाधिक सुन्दरी होती थी, वह किसी एक पुरुष की पत्नी न होकर 'नगरवधू' घोषित की जाती थी और उसपर सम्पूर्ण नागरिकों का समान अधिकार रहता था। उसे 'जनपद कल्याणी' की उपाधि प्राप्त होती थी। कन्या के अप्रितम सौन्दर्य को देखकर वृद्ध महानामन् वास्तव में इसी भय से राजधानी छोड़कर भागे थे, जिससे किसीकी दृष्टि बालिका पर न पड़े। पर अब उपाय न था।

फागुन बीत रहा था। वैशाली में सन्ध्या के दीये जल गए थे। नागरिक और राजपुरुष अपने-अपने वाहनों पर सवार घरों को लौट रहे थे। धीरे-धीरे यह चहल-पहल कम होने लगी और राजपथ पर अंधकार बढ़ चला। नगर के दक्षिण प्रान्त भाग में मद्य की एक दूकान थी। बूढ़ा दूकानदार बैठा ऊंघ रहा था कि वृद्ध महानामन् बालिका की उंगली पकड़ दूकान के आगे आ खड़े हुए। वे बहुत थक गए थे और बालिका उनसे भी बहुत अधिक।

"तुम तनिक यहीं बैठो, बेटी!" कहकर वृद्ध महानामन् और आगे बढ़कर दूकान के सामने आ गए। महानामन् का कंठस्वर सुनकर बूढ़ा दूकानदार ऊंघ से चौंक उठा था, अब उसने उन्हें सामने खड़ा देखकर कहा:

"हां, हां, मेरी दूकान में सब है, क्या चाहिए? कैसा पान करोगे? दाक्खा, लाजा, गौड़, माध्वीक, मैरेय?" फिर उसने घूरकर वृद्ध महानामन् को देखा और उसे एक दीन भिक्षुक समझकर कहा—"किन्तु मित्र, मैं उधार नहीं बेचता। दम्म पास हों तो निकालो।" वृद्ध महानामन् ने एक कदम आगे बढ़कर कहा—"तुम्हारा कल्याण हो नागरिक, परन्तु मुझे पान नहीं, आश्रय चाहिए। मेरे साथ मेरी बेटी है। हम लोग दूर से चले आ रहे हैं। यहीं कहीं निकट में विश्राम

मिलेगा ? मैं शुल्क दे सकूंगा।"

बूढ़े दूकानदार ने संदेह से महानामन् को देखते हुए कहा—"शुल्क तुम दे सकते हो, सो तो है; परन्तु भाई, तुम हो कौन ? जानते हो, वैशाली में बड़े-बड़े ठग और चोर-दस्यु नागरिक का वेश बनाकर आते हैं···।"

वह और भी कुछ कहना चाहता था, परन्तु इसी समय दो तरुण बातें करते-करते उसकी दूकान पर आ खड़े हुए। बूढ़े ने सावधान होकर दीपक के धुंधले प्रकाश में देखा, दोनों राजवर्गी पुरुष हैं। उनके वस्त्र और शस्त्र अंधेरे में भी चमक रहे थे।

बूढ़े ने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहा—"श्रीमानों को क्या चाहिए ?"

"पहले उस दस्यु की बात कह ! कहां है दस्यु, बोल।" आगन्तुकों में से एक तरुण ने अपना खड्ग हिलाते हुए कहा।

बूढ़े की घिग्घी बंध गई। उसने हाथ जोड़कर कहा—"दस्यु की बात कुछ नहीं, श्रीमान ! यह बूढ़ा ग्रामीण कहीं से आकर रात-भर के लिए विश्राम खोजता है। मुझे संदेह हुआ—कौन जाने कौन है यह ! महाराज, आप तो देखते ही हैं कि वैशाली का महावैभव यहां बड़े-बड़े दस्युओं को खींच लाता है ··"

"बक-बक मत कर बूढ़े।" उसी तरुण ने खड्ग चमकाते हुए कहा—"उन सब दस्युओं को मैं आज ही पकड़ूंगा। ला, माध्वीक दे।"

बूढ़ा चुपचाप मद्य ढालने लगा। अब तरुण आगन्तुक ने महानामन् को सिर से पैर तक देखा और फिर अम्बपाली पर जाकर उसकी दृष्टि स्थिर हो गई जो घुटनों पर सिर रखे सो गई थी।

"साथ में यह कौन है रे बूढ़े ?" उसने वृद्ध महानामन् से कहा।

"मेरी बेटी है।"

"बेटी ही है ? कहीं से उड़ा तो नहीं लाए हो ? यहां वैशाली में ऐसी सुन्दर लड़कियों के खूब दाम उठते हैं। कहो, बेचोगे ?"

वृद्ध महानामन् बोले नहीं। क्रोध से उनके नथुने फूल उठे और होंठ सम्पुटित हो गए। वे निश्चल खड़े रहे।

कहने वाले ने यह सब नहीं देखा। उसके होंठों में एक हास्य नाच रहा था। दूसरा साथी माध्वीक पी रहा था। पात्र खाली करके हंसकर साथी से बोला—"क्यों ? ब्याह करोगे ?"

दूसरा ठहाका मारकर हंसा—"नहीं, नहीं, मुझे एक दासी की

आवश्यकता है। छोटी-सी एक सुन्दर दासी।" वह फिर महानामन् की ओर घूमा। महानामन् धीरे-धीरे वस्त्र के नीचे से खड्ग खींच रहा था। देखकर आगन्तुक चौंका।

वृद्ध महानामन् ने शिष्टाचार से सिर झुकाया। उसने कहा—"नायक, तुम्हें मैं पहचानता नहीं, तुम कदाचित् मेरे किसी मित्र के पुत्र, पौत्र अथवा नाती होगे। अब से ग्यारह वर्ष पूर्व मैं भी एक सेना का नायक था। यही राजपरिच्छद, जो तुम पहने हो, मैं पूरे बयालीस साल तक पहन चुका हूं। उसकी मर्यादा मैं जानता हूं, इसीलिए मुझे तुम्हारे प्रस्ताव का उत्तर इस खड्ग से देने की आवश्यकता हो गई है। आयुष्मान्! तुम खड्ग निकालो और तनिक कष्ट उठाकर उधर मैदान में आ जाओ। यहां लड़की थककर सो गई है; ऐसा न हो, शस्त्रों की झनकार से वह जग जाए।"

तरुण मद्यपात्र हाथ में ले चुका था। वृद्ध महानामन् की यह अतर्कित वाणी सुन उसने मद्यपात्र फेंक खड्ग निकाल लिया और उछलकर आगे बढ़ा।

तरुण का दूसरा साथी कुछ प्रौढ़ था। उसने हाथ के संकेत से साथी को रोककर आगे बढ़कर बूढ़े से कहा, "आप यदि कभी वैशाली की राजसेना में नायक रह चुके हैं, तो आपको नायक चन्द्रमणि का भी स्मरण होगा?"

"चन्द्रमणि! निस्संदेह, वे मेरे परम सुहृद् थे। नायक चन्द्रमणि क्या अभी हैं?" महानामन् ने दो कदम आगे बढ़कर कहा।

"हैं, यह तरुण उन्हींका पुत्र है। आपका नाम क्या है, भन्ते?"

महानामन् ने खड्ग कोष में रख लिया। कहा—"मेरा नाम महानामन् है। यदि यह आयुष्मान् मित्रवर चन्द्रमणि का पुत्र है, तो अवश्य ही इसका नाम हर्षदेव है।"

युवक ने धीरे से अपना खड्ग वृद्ध के पैरों में रखकर कहा—"मैं हर्षदेव ही हूं, भन्ते! मैं आपका अभिवादन करता हूं।"

वृद्ध ने तरुण को छाती से लगाकर कहा—"अरे पुत्र, मैंने तो तुझे अपने घुटनों पर बैठाकर खिलाया है। आह, आज मैं बड़भागी सिद्ध हुआ।"

"मैं समझ गया, भन्ते! पितृचरण ने बहुत बार आपके विषय में चर्चा की है। चलिए अब घर, रात्रि आप यों राजपथ पर न व्यतीत करने पाएंगे।"

१. धिक्कृत कानून

उस दिन वैशाली में बड़ी उत्तेजना फैली थी। सूर्योदय के साथ ही ठठ के ठठ नागरिक संथागार की ओर जा रहे थे। पैदल, अश्वारोही, रथ और पालकी पर सवार सभी प्रकार के पुरुष थे। उनमें नगरसेट्ठि, श्रेणिक और सामन्तपुत्र भी थे। सामन्तपुत्र अपने-अपने शस्त्र चमका-कर और भाले ऊंचे करके चिल्ला-चिल्लाकर उत्तेजना प्रकट कर रहे थे। उनके वीच से होते हुए गणसदस्य अपने-अपने वाहनों से उतर चुपचाप गंभीर मूर्ति धारण किए सभाभवन में जा रहे थे।

संथागार का सभामण्डल मत्स्य देश के उज्ज्वल श्वेत मरमर का बना था और उसका फर्श चिकने और प्रतिविम्बित काले पत्थर का बना था। उसकी छत एक सौ आठ खम्भों पर आधारित थी। ये खम्भे भी काले पत्थर के बने थे। सभाभवन के चारों ओर भीतर की तरफ नौ सौ निन्यानवे हाथीदांत की चौकियां रखी थीं, जिनपर अपनी-अपनी नियुक्ति के अनुसार आठों कुल के सभ्यगण आ-आकर चुपचाप बैठे रहे थे। भवन के बीचोबीच सुन्दर चित्रित हरे रंग के पत्थर की एक वेदी थी जिसपर दो बहुमूल्य स्वर्ण-खचित चांदी की चौकियां रखी थीं। एक पर गणपति सुनन्द बैठते थे और दूसरी पर महाबलाधिकृत सुमन।

जब गणपति और महाबलाधिकृत भी आकर अपने आसनों पर बैठ गए तो प्रतिहार ने सन्निपात के कार्यारम्भ की सूचना तूर्य बजाकर दी।

संथागार के बाहर खड़ी भीड़ में और भी क्षोभ फैल गया। सबके मुंह उत्तेजना से लाल हो गए। प्रत्येक व्यक्ति की आंखें चमकने लगीं। संथागार के अलिन्द में सामन्तपुत्रों और सेट्ठिपुत्रों के झुण्ड के झुण्ड जमा हो गए। वातावरण अत्यंत अशांत, उत्तेजित और उद्वेगपूर्ण था।

एकाएक रथ का गम्भीर घोष सुनकर कोलाहल थम गया। जो जहां था, चित्रलिखित-सा खड़ा रह गया। रथ धीर-मन्थर गति से अपनी सहस्र स्वर्णघण्टिकाओं का घोष करता हुआ संथागार के प्रांगण में आ खड़ा हुआ। लोगों ने कौतूहल से देखा—एक भव्य प्रशांत भद्र वृद्ध पुरुष रथ से उतर रहे हैं। उनका स्वच्छ-श्वेत परिधान और लम्बी श्वेत दाढ़ी हवा में फहरा रही थी। कमर में एक लम्बा खड्ग लटक रहा था, जिसकी मूठ और कोष पर रत्न जड़े थे। एक तरुण के कन्धे पर सहारा लिए वे धीरभाव से संथागार की सीढ़ियां चढ़ने लगे।

संथागार में वृद्ध के प्रवेश के साथ ही गणपति सुनन्द ने कहा—

"भन्तेगण, सुनें। आज जिस गुरुतर कार्य के लिए अष्टकुल का गणः सन्निपात हुआ है, अब उसका कार्यक्रम आरंभ होता है—" फिर वृद्ध आगन्तुक से सम्बोधित हो गणपति ने कहा—"भन्ते महानामन्! आज आपकी पुत्री अम्बपाली अठारह वर्ष की आयु पूरी कर चुकी। वैशाली जनपद ने उसे सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी निर्णीत किया है। इसलिए वज्जी गणतन्त्र के कानून के अनुसार उसे यह परिषद्, 'वैशाली की नगरवधू' घोषित किया चाहती है और आज उसे 'वैशाली की जनपद कल्याणी' का पद देना चाहती है। गण-सन्निपात की आज्ञा है कि वह आज से सार्वजनिक स्त्री की भांति जीवन व्यतीत करे, इसीसे आज उसे संथागार में उपस्थित होकर अष्टकुल के गण-सन्निपात के सम्मुख शपथ ग्रहण करने की आज्ञा दी गई थी। उसके अभिभावक की हैसियत से आपपर उसे गण-सन्निपात के सम्मुख उपस्थित करने का दायित्व है। अब आप क्या देवी अम्बपाली को गण-सन्निपात के सम्मुख उपस्थित करते हैं?"

महानामन् ने एक बार सम्पूर्ण सन्निपात को देखकर आंखें नीची कर लीं। वे कुछ झुके और उनके होंठ कांपे, परन्तु फिर तुरन्त ही वे तनकर खड़े हो गए और बोले :

"भन्ते, मैं स्वयं लिच्छवि हूं, और मैंने बयालीस वर्ष वज्जी संघ की निष्ठापूर्वक सेवा इस शरीर से इसी खड्ग के द्वारा की है। मैंने सदैव ही वज्जी संघ के विधान, कानून और मर्यादा की रक्षा की है और अब भी करूंगा।" महानामन् इतना कहकर चुप हो गए। उनके होंठ जैसे आगे कुछ कहने में असमर्थ होकर जड़ हो गए। उन्होंने आंखें फैलाकर परिषद्-भवन में उमड़ती उत्तेजित भीड़ को देखा, जिनकी जलती हुई आंखें उन्हींपर लगी थीं। फिर सहज शान्त स्वर में स्थिर वाणी से कहा—"मेरी पुत्री अम्बपाली के सम्बन्ध में वज्जी गणतन्त्र के कानून के अनुसार गण-सन्निपात ने जो निर्णय किया था, उसे जानकर मैंने अठारह वर्ष की अवस्था तक उसका विवाह करना स्थगित कर दिया था। अब···"

बीच ही में सामन्तपुत्र चिल्ला उठे—"स्थगित कर दिया था! इसका क्या अर्थ है? यह सन्दिग्ध बात है।"

सहस्रों कण्ठ चिल्ला उठे—"यह सन्दिग्ध बात है, हम स्पष्ट सुनना चाहते हैं। देवी अम्बपाली किसी एक पुरुष की पत्नी नहीं हो सकती। वह हमारी, हम सबकी है। हमारा उसपर समान अधिकार है और उसे हम शस्त्र के बल से भी प्राप्त करेंगे।"

गणपति सुनन्द ने हाथ उठाकर कहा—"आयुष्मान् शान्त होकर सुनें, सन्निपात के कार्य में बाधा न दें। अभी भन्ते महानामन् का वक्तव्य नहीं हुआ।"

परिषद् में फिर सन्नाटा छा गया।

महानामन् ने परिषद् के बाहर-भीतर दृष्टि फेंककर आंखें नीची कर लीं और फिर कहा—"भन्तेगण, आज अम्बपाली अठारह वर्ष की आयु पूरी कर चुकी। वज्जी संघ के कानून के अनुसार अब वह स्वाधीन है और अपने प्रत्येक स्वार्थ के लिए उत्तरदायी है। अतः आज से मैं उसका अभिभावक नहीं हूं। वह स्वयं ही परिषद् को अपना मन्तव्य देगी।"

संथागार का वातावरण फिर बड़े वेग से क्षुब्ध हो उठा। तरुण सामन्तपुत्रों ने अपने खड्ग कोष से खींच लिए। बहुतों ने अपने-अपने भालों को हवा में ऊंचा करके चीत्कार करना प्रारम्भ कर दिया। सब लोग चिल्लाने लगे—"विश्वासघात! विश्वासघात! भन्ते महानामन् ने वज्जी संघ से विश्वासघात किया है! उन्हें इसका दण्ड मिलना चाहिए!" बहुतों ने अपने पैर धरती में पटक-पटककर और भाले हवा में हिला-हिलाकर कहा—"हमारे जीवित रहते अम्बपाली हमारी, हम सबकी है। वह वैशाली की नगरवधू है। संघ यदि अपने कर्तव्य-पालन में ढील करेगी तो हम अपने भालों और खड्ग की तीखी धार के बल पर उसे कर्तव्य-पालन करने पर विवश करेंगे।"

सहसा कोलाहल स्तब्ध हो गया, जैसे किसीने जादू कर दिया हो। सब कोई चकित-स्तम्भित होकर परिषद् के द्वार की ओर देखने लगे। एक अवगुण्ठनवती नारी वातावरण को सुरभित करती हुई और मार्ग में सुषमा फैलाती हुई आ रही थी—यह अम्बपाली थी।

अम्बपाली ने शुभ्रकौशेय धारण किया था। उसके जूड़ाग्रथित केशकुन्तल ताज़े फूलों से गूंथे गए थे। ऊपरी वक्ष खुला हुआ था। देह-यष्टि जैसे किसी दिव्य कारीगर ने हीरे के समूचे अखण्ड टुकड़े से यत्न-पूर्वक खोदकर गढ़ी थी। उससे तेज, आभा, प्रकाश, माधुर्य, कोमलता और सौरभ का अटूट झरना झर रहा था। इतना रूप, इतना सौष्ठव, इतनी अपूर्वता कभी किसीने एक स्थान पर देखी नहीं थी। उसने कण्ठ में बड़े-बड़े सिंहल के मोतियों की माला धारण की थी। कटिप्रदेश की हीरे-जड़ी करधनी उसकी क्षण कटि को पुष्ट नितम्बों से विभाजित-सी कर रही थी। उसके सुडौल गुल्फ मणि-खचित उपानत् से, जिनके

ऊपर स्वर्ण पैंजनियां चमक रही थीं, अपूर्व शोभा का विस्तार कर रहे थे, मानो वह संथागार में रूप, यौवन, मद, सौरभ को बिखेरती चली आई थी। जनपद लुटा-सा, मूर्च्छित-सा, स्तब्ध-सा खड़ा था।

अम्बपाली जैसे उस सुषमा की सम्पदा को आंचल में भरे, नीची दृष्टि किए, वृद्ध महानामन् के पार्श्व में आ खड़ी हुई। गणपति सुनन्द ने कहा—"भन्ते, देवी अम्बपाली अपना मत परिषद् के सामने प्रकट करने आई हुई हैं। सब कोई उनका वक्तव्य सुनें।"

एक बार गगनभेदी जयनाद से परिषद्-भवन हिल उठा—"देवी अम्बपाली की जय, वैशाली की नगरवधू की जय, वैशाली जनपद-कल्याणी की जय!"

अम्बपाली के होंठ हिले, जैसे गुलाब की पंखुड़ियों को प्रात:समीर ने आन्दोलित किया हो। वीणा की झंकार के समान उसकी वाणी ने संथागार में सुधावर्षण किया—"भन्ते, आपके आदेश पर मैंने विचार कर लिया है। मैं वज्जी संघ के धिक्कृत कानून को स्वीकार करती हूं, यदि गण-सन्निपात को मेरी शर्तें स्वीकार हों।"

परिषद्-भवन में मन्द जनरव सुनाई दिया। एक अधेड़ सदस्य ने अपनी मूंछों को दांतों से दबाकर कहा—"क्या कहा? धिक्कृत कानून? देवी अम्बपाली, तुम यह वाक्य वापस लो; यह परिषद् का घोर अपमान है।"

चारों ओर से आवाज़ें आने लगीं—"यह शब्द वापस लो, 'धिक्कृत कानून' शब्द अनुचित है।"

अम्बपाली ने सहज शान्त स्वर में कहा—"मैं सहस्र बार इस शब्द को दुहराती हूं। वज्जी संघ का यह धिक्कृत कानून वैशाली जनपद के यशस्वी गणतन्त्र का कलंक है। भन्ते, मेरा अपराध केवल यही है कि विधाता ने मुझे यह अथाह रूप दिया। इसी अपराध के लिए आज मैं अपने जीवन के गौरव को लांछना और अपमान के पंक में डुबो देने को विवश की जा रही हूं। अब मैं अपनी रुचि और पसन्द से किसी व्यक्ति को प्रेम नहीं कर सकती, उसे अपनी देह और अपना हृदय अर्पण नहीं कर सकती। अपना स्नेह से भरा हृदय और रूप से लथपथ यह अधम देह लेकर अब मैं वैशाली की हाट में ऊंचे-नीचे दाम में इसे बेचने बैठूंगी। आप जिस कानून के बल पर मुझे ऐसा करने को विवश कर रहे हैं, वह एक बार नहीं, लाख बार धिक्कृत होने योग्य है, जिसे आज ये स्त्रैण तरुण सामन्तपुत्र अपने खड्ग की तीखी धार और भालों की

नोक के बल पर अक्षुण्ण और सुरक्षित रखना चाहते हैं और ये सेट्ठिपुत्र अपनी रत्नराशि जिसपर लुटाने को दृढ़प्रतिज्ञ हैं।" अम्बपाली यह कहकर रुकी। उसका अंग कांप रहा था और वाणी तीखी हो रही थी। परिषद्-भवन में सन्नाटा था।

उसने फिर कहा—"भन्ते, मैं अपना अभिप्राय निवेदन कर चुकी। यदि सन्निपात को मेरी शर्तें स्वीकार हों—तो मैं अपना सतीत्व, स्त्रीत्व, मर्यादा, यौवन, रूप और देह आपके इस धिक्कृत कानून के अर्पण करती हूं। वे शर्तें भन्ते गणपति आपको बता देंगे। यदि आपको मेरी शर्तें स्वीकार न हों तो मैं नीलपद्म प्रासाद में आपके वधिकों की प्रतीक्षा करूंगी।"

इतना कहकर उसने अवगुण्ठन से शरीर को आच्छादित किया और वृद्ध महानामन् का हाथ पकड़कर कहा—"चलिए।" महानामन् अम्बपाली के कंधे का सहारा लिए संथागार से बाहर हो गए। वैशाली का जनपद मूढ़-अवाक् होकर देखता रह गया।

२. गण-सन्निपात

जब तक रथ की घण्टियों का घोष सुनाई देता रहा, वैशाली का जनपद मार्ग पर उसी ओर मंत्रविमोहित-सा देखता रह गया। अम्बपाली का वह अपूर्व रूप ही नहीं—उसका तेज, दर्प, साहस और दृढ़ता सब कुछ उन्हें अकल्पित दीख पड़ी। जो थोड़े-से वाक्य अम्बपाली ने सभा में कहे, उनका सभीपर भारी प्रभाव पड़ा। कुछ लोग निरीह नारीत्व की इस कानूनी लांछन के विरोधी हो गए।

परन्तु बहुत-से उद्धत तरुण सामन्तपुत्र अस्त्र चमका-चमकाकर और हवा में भाले उछाल-उछालकर अपने अश्व दौड़ाने लगे। वे कह रहे थे—"उसका वध वधिक नहीं कर सकते। हम उसकी दिव्य देह का उपयोग चाहते हैं। हम उसकी शरच्चन्द्र की चांदनी के समान रूप-सुधा का पान किया चाहते हैं। उसके अनिंद्य यौवन का आनन्द लिया चाहते हैं। वह हमारी है, हम सबकी है। वह वैशाली का प्राण, वैशाली की शोभा, वैशाली के जीवन की केन्द्रस्थली है। वह वैशाली की नगरवधू है। उसकी वे शर्तें कुछ भी हों, हमें स्वीकार हैं। हम सर्वस्व देकर भी उसे प्राप्त करेंगे या स्वयं मर मिटेंगे।"

प्रतिहार और दण्डधर परिषद् की व्यवस्था-स्थापन में असमर्थ हो

गए। तब गणपति सुनन्द ने खड़े होकर कहा—"आयुष्मान् ! शांत होकर देवी अम्बपाली की शर्तों को सुनें। उनपर अभी गण-सन्निपात का छन्द ग्रहण होगा। उन शर्तों के पूरी होने पर देवी अम्बपाली स्वेच्छा से नगरवधू होने को तैयार हैं।"

एक बार संथागार में फिर सन्नाटा छा गया।

गणपति ने कहा— 'सब आयुष्मान् और भन्तेगण सुनें। देवी की पहली शर्त यह है कि उसे रहने के लिए सप्तभूमि प्रासाद, नौ कोटि स्वर्णभार, प्रासाद समस्त साधन और वैभव सहित दिया जाए।"

गणसदस्य जड़ हो गए। नागरिक भी विचलित हुए। बहुत-से राजवर्गियों की भृकुटियों में बल पड़ गए। महामात्य सुप्रिय ने क्रुद्ध होकर कहा—"भन्ते, यह असम्भव है, ऐसा कभी नहीं हुआ। सप्तभूमि प्रासाद जम्बूद्वीप-भर में अद्वितीय है; उसका वैभव और साधन एक राजतन्त्र का संचालन करने योग्य है। फिर नौ कोटि स्वर्णभार! नौ कोटि स्वर्णभार देने पर वज्जी संघ का राजकोष ही खाली हो जाएगा। नहीं, नहीं, यह शर्त स्वीकार नहीं की जा सकती।"

बहुत-से सेट्ठिपुत्र एकसाथ बोल उठे—"क्यों नहीं की जा सकती? राजकोष यदि रिक्त हो जाएगा तो हम उसे भर देंगे। अष्टकुल दूसरे प्रासाद का निर्माण कर सकता है। हम शत कोटि स्वर्णभार भी देने को प्रस्तुत हैं।"

सामन्तपुत्रों ने अपने-अपने भाले चमका-चमकाकर कहा—"देवी अम्बपाली को सप्तभूमि प्रासाद, सम्पूर्ण साधन और वैभव तथा नौ कोटि स्वर्णभार सहित दे दिया जाए। वह प्रासाद, वह वैभव वैशाली के जनपद का है, वह हमारा है, हम सबका है, हमने गर्म रक्त के मूल्य पर उसका निर्माण कराया है। जिस प्रकार अनुपम रूप यौवनश्री की अधिष्ठात्री देवी अम्बपाली हमारी, हम सबकी है, उसी प्रकार अप्रतिम वैभव और सौष्ठव का आगार सप्तभूमि प्रासाद भी हमारा, हम सबका है। वह अवश्य वैशाली के जनपद का सान्ध्य-क्रीड़ास्थल होना चाहिए।"

गणपति ने खड़े होकर हाथ के इशारे से सबको चुप रहने को कहा। फिर कहा— 'भन्तेगण, अब मैं आपसे पूछता हूं कि क्या आपको देवी अम्बपाली की पहली शर्त स्वीकार है? यदि किसीको आपत्ति हो तो बोलें।" सभा-भवन में सब चुप थे। गणपति ने कहा—"सब चुप हैं। तो भन्ते, वज्जियों का यह सन्निपात देवी अम्बपाली की पहली

शर्त स्वीकार करता है।"

सभा के बाहर-भीतर हर्ष की लहर दौड़ गई। एक बार फिर देवी अम्बपाली के जयनाद से संथागार गूंज उठा।

गणपति ने कुछ ठहरकर कहा—"भन्ते, अब देवी की शेष दो शर्तें भी सुनिए। उसकी दूसरी शर्त यह है कि उसके आवास की दुर्ग की भांति व्यवस्था की जाए, और तीसरी यह कि उसके आवास में आने-जानेवाले अतिथियों की जांच-पड़ताल गणिकाध्यक्ष न करें।"

गणपति के यह कहकर बैठते ही महाबलाधिकृत सुमन ने क्रोध से आसन पर पैर पटककर कहा—"भन्ते, यह तो आत्मघात से भी अधिक है। मैं कभी इसका समर्थन नहीं कर सकता कि देवी का आवास दुर्ग की भांति व्यवस्थित रहे। इसका तो स्पष्ट यह अर्थ है कि देवी अम्बपाली अलग ही अपनी सेना रखेगी और नगर के कानून उसके आवास में रहनेवालों पर लागू नहीं होंगे।"

सन्धि-विग्राहिक जयराज ने कहा—"और उसके आवास में कौन आता-जाता है, यदि इसकी जांच-पड़ताल गणिकाध्यक्ष न करेंगे तो निश्चय ही अम्बपाली का आवास शीघ्र की षड्यंत्रकारी शत्रुओं का एक अच्छा-खासा अड्डा बन जाएगा और वे लोग निश्चिन्तता से वैशाली ही में बैठकर वैशाली के गणतन्त्र की जड़ उखाड़ने के सब प्रयत्न करते रहेंगे। भन्ते, मैं कहना चाहता हूं कि इस समय वैशाली का गणसंघ चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ है। एक तरफ राजगृह के सम्राट बिम्बिसार उसे विषम लोचन से देखते हैं, दूसरी ओर मत्स्य, अंग, बंग, कलिंग, कोसल और अवन्ती के राजाओं की उसपर सदा वज्रदृष्टि बनी हुई है। वे सदा वैशाली के गणसंघ को ध्वंस करने की ताक में रहते हैं। यदि हमने देवी अम्बपाली की ये दो शर्तें स्वीकार कर लीं, तो निस्सन्देह उसका आवास शत्रुओं के गुप्तचरों का एक केन्द्र बन जाएगा और हमारे घर में एक ऐसा छिद्र हो जाएगा जिससे हम वैशाली जनपद की रक्षा नहीं कर सकेंगे।"

संथागार के बाहर-भीतर फिर विषम कोलाहल हुआ; परन्तु गणनायक सुनन्द के खड़े होते ही सब चुप हो गए। गणपति ने कहा—"भन्ते, अम्बपाली जैसी गुण-गरिमापूर्ण जनपद कल्याणी के लिए जनपद को कुछ बलिदान तो करना ही होगा। इस समय जबकि वैशाली का जनपद पद-पद पर शत्रुओं से घिरा है, हमें छोटी-छोटी बातों पर कलह नहीं करना चाहिए। मैं अपने तरुण सामन्तपुत्रों से, जो बार-

वार अपने खड्ग और भाले चमका-चमकाकर बात-बात पर रोष प्रक करते हैं, यह कहना चाहता हूं कि वह समय आ रहा है, जब उनके बाहुबल और शस्त्रों की परीक्षा होगी, जिनपर उन्हें इतना गर्व है पर हमें अपनी शक्ति शत्रु पर ही लगानी चाहिए, गृहकलह से आपस में टकराकर नष्ट नहीं होना चाहिए। इसलिए गण-सन्निपात से अनुरोध करूंगा कि वे देवी की दूसरी शर्त स्वीकार कर लें। तीसरी शर्त की बात यह है कि जब कभी देवी के आवास की जांच करने की आवश्यकता समझी जाए, तो उसे एक सप्ताह पहले इसकी सूचना देनी चाहिए।"

सभा-भवन में सन्नाटा ही रहा। गणपति कुछ देर को चुप रहकर बोले—"भन्तेगण, सुनें, जैसाकि मैंने प्रस्ताव किया है, देवी अम्बपाली की दूसरी शर्त ज्यों की त्यों और तीसरी प्रस्तावित संशोधन के सा स्वीकार कर ली जाए। इसपर जो सहमत हों, वे चुप रहें; जो असहम हों, वे बोलें।"

सब कोई चुप रहे। गणपति ने कहा—"सब चुप हैं, तो तीस शर्त थोड़े संशोधन के साथ स्वीकार करके देवी अम्बपाली की ती शर्तें अष्टकुल का गण-सन्निपात स्वीकार करता है। मैं अभी नीलप प्रासाद में देवी अम्बपाली से मिलकर सब बातें तय करने जाता और कल इसके निर्णय की घोषणा कर दी जाएगी। आज संघ कार्य समाप्त होता है।"

गणपति के आसन त्यागते ही एक बार तीव्र कोलाहल से संथाग का भवन गूंज उठा और सामन्तपुत्र तथा नागरिक भांति-भांति बातें करते परिषद्-भवन से लौटे।

३. नीलपद्म प्रासाद

नीलपद्म प्रासाद नीलपद्म सरोवर के बीचोबीच बना था। प्रा का बाहरी घेरा और फर्श मत्स्य देश के श्वेत मरमर का था, कि उसकी दीवारों पर ऊपर से नीचे तक विविध रंगीन रत्नों की पच्ची कारी हो रही थी। बाहरी प्रांगण से प्रासाद तक एक प्रशस्त सुन्दर पुल था, जिसके दोनों ओर स्वर्णदण्ड लगे थे।

सरोवर के तट पर एक स्वच्छ मरमर की वेदी पर देवी अम्बपा विषण्णवदना बैठी सान्ध्याकाश में सुदूर एक क्षीण तारे को एक

देख रही थी। अनेक प्रकार के विचार उसके मन में उदय हो रहे थे। वह सोच रही थी, अपना भूत और भविष्य। एक द्वन्द्व उसके भीतर चल रहा था। आज से सात वर्ष पूर्व एक ग्यारह वर्ष की बालिका के रूप में जब उसने वैशाली की पौर में सन्ध्या के बढ़ते हुए अंधकार में पिता की उंगली पकड़कर प्रवेश किया था, उसने नवीन जीवन, नवीन चहल-पहल, नवीन भाव देखे थे। नायक चन्द्रमणि की कृपा से उसके पिता को उसकी नष्ट सम्पत्ति और त्यक्त पद मिल गया था, और अब उसके उद्ग्रीव यौवन और विकसित जीवन की क्रीड़ा के दिन थे। सब वैभव उसे प्राप्त थे। भाग्य उसके साथ असाधारण खेल खेल रहा था। जो बालिका एक दिन छः दम्म के कंचुक के लिए लालायित हो पिता से याचना कर चुकी थी, आज जीवन के ऐसे संघर्ष में आ खड़ी थी, जिसकी कदाचित् ही कोई युवती सम्भावना कर सकती है। वैशाली का जनपद आज उसके लिए क्षुब्ध था और अष्टकुल के एक महासंकट को टालने की शक्ति केवल उसीमें थी।

एक दिन, उसके अज्ञात में, धृष्टतापूर्वक जिस हर्षदेव ने उसके पिता से उसके सम्बन्ध में उपहास किया था, उसी हर्षदेव की प्रणयाभिलाषा उसने एक बार अपनी कच्ची मति में आंखों में हंसकर स्वीकार कर ली थी। उस स्वीकृति में कितना विवेक और कितना अज्ञान था, इसका विश्लेषण करना व्यर्थ है। परन्तु जब उन दोनों के बूढ़े पिता पुरातन मैत्री और नवीन कृतज्ञता के पाश में बंधकर उनसे विवाह का वचन दे चुके, तब से वह हर्षदेव को आंखों में 'हां' और होंठों में 'ना' भरकर कितनी बार तंग कर चुकी थी। इसके इतिहास पर आज अनायास ही उसका ध्यान जा पहुंचा था। उसकी अप्रतिम रूपराशि को वैशाली के जनपद से छिपाने के सभी प्रयत्न व्यर्थ हुए। प्रभात की धूप की भांति उसके रूप की ख्याति बढ़ती ही गई और ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, अम्बपाली के रूप की काल्पनिक सैकड़ों कहानियां वैशाली के घर-घर कही जाने लगीं और इस प्रकार अम्बपाली वैशाली के जनपद की चर्चा का मुख्य विषय बन गई।

फिर एक दिन, जब महानामन् ने गण से नायक चन्द्रमणि के पुत्र हर्षदेव के साथ अम्बपाली के वाग्दान करने की अनुमति मांगी तो संथागार में एक हंगामा उठ खड़ा हुआ और गणपति को आज्ञापत्र जारी करके महानामन् को विवश करना पड़ा कि जब तक अम्बपाली वयस्क न हो जाए, वे उसका विवाह न करें और महानामन् को

प्रतिज्ञा लिखनी पड़ी कि वे अम्बपाली का विवाह तब तक नहीं करें जब तक कि वह अठारह वर्ष की नहीं हो जाती। अठारह वर्ष की आ होने पर वे उसे संथागार में उपस्थित करेंगे।

उस बात को आज तीन वर्ष बीत गए। इन तीन वर्षों में जनप ने खुल्लमखुल्ला अम्बपाली को जनपद कल्याणी कहना प्रारम्भ क दिया और गणसंघ पर ज़ोर दिया कि वह उसे 'नगरवधू' घोषित क देने का आश्वासन दे। यह आन्दोलन इतना उग्र रूप धारण कर ग कि अष्टकुल के गणपति को अम्बपाली और महानामन् को गणस के समक्ष प्रत्युत्तर के लिए संथागार में उपस्थित करने को बाध्य हो पड़ा।

अम्बपाली ने अपने उस नये जीवन के सम्बन्ध में, जिसमें वैशा का जनपद उसे डालना चाहता था, जब कल्पना की, तो वह सह गई। हर्षदेव के प्रति प्रेम नहीं तो स्नेह उसे था। कुलवधू होने पर व स्नेह बढ़कर प्रेम हो जाता है। अब एक ओर उसके सामने कुलव की अस्पष्ट धुंधली आकृति थी और दूसरी ओर 'नगरवधू' बनकर स जनभोग्या होने का चित्र था। एक ओर बन्धन और दूसरी ओर उन्मु जीवन। एक ओर एक व्यक्ति को मध्य बिन्दु बनाकर आत्मा करने की भावना थी, दूसरी ओर विशाल वैभव, उत्सुक जीवन अ महाविलास की मूर्ति थी। उसका विकसित साहसी हृदय द्वन्द्व में गया और उसने अपनी तीन शर्तें परिषद् में रख दीं। उसने सो जब कानून की मर्यादा पालन करनी ही है तो फिर जीवन को वै और अधिकार की चोटी पर पहुंचाना ही चाहिए और वैशाली के जनपद ने उसे इस ओर जाने को विवश किया है, उसे अपने स चरणों से रौंद-रौंदकर दलित करना चाहिए।

विचारों की उत्तेजना के मारे उसका वक्षस्थल लुहार की धौं की भांति उठने-बैठने लगा। उसने दांतों में होंठ दबाकर कहा— वैशाली के स्त्रैण पुरुषों से पूरा बदला लूंगी। मैं अपने स्त्रीत्व पूरा सौदा करूंगी। मैं अपनी आत्मा का हनन करूंगी और उस लोथ इन लोलुप गृद्धों को उन्हींकी प्रतिष्ठा और मर्यादा के दामों बेचूंगी।"

ये सब बातें अम्बपाली सोच रही थी कि मदलेखा ने आ नम्रतापूर्वक कहा—"देवी की जय हो! गणपति आए हैं और पर खड़े अनुमति की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"उन्हें यहीं ले आ।" अम्बपाली ने भृकुटी चढ़ाकर कहा।

वह प्रस्तरपीठ पर सावधान होकर बैठ गई। गणपति सुनन्द ने आकर कहा—"देवी अम्बपाली प्रसन्न हों! मैं वज्जीसंघ का संदेश लाया हूं।"

"तो आपके वधिक कहां हैं? उनसे कहिए कि मैं तैयार हूं। वैशाली जनपद के ये हिंस्र नरपशु किस प्रकार मेरा हनन करना चाहते हैं?"

"वे तुम्हारा शरीर चाहते हैं।"

"वह तो उन्हें अनायास ही मिल जाएगा।"

"जीवित शरीर चाहते हैं, सस्मित शरीर। देवी अम्बपाली, वज्जीसंघ ने तुम्हारी शर्तें स्वीकार कर ली हैं। केवल अंतिम शर्त···"

"अंतिम शर्त क्या?" अम्बपाली ने उत्तेजना से कहा—"क्या वे उसे अस्वीकार करेंगे? मैं किसी भी प्रकार अपनी शर्तों की अवहेलना सहन न करूंगी।"

वृद्ध गणपति ने कहा—"देवी अम्बपाली, तुम रोष और असन्तोष को त्याग दो। तुम्हें सप्तभूमि प्रासाद, समस्त वैभव और साधन-सहित और नौ कोटि स्वर्णभार-सहित मिलेगा। तुम्हारा आवास दुर्ग की भांति सुरक्षित रहेगा। किन्तु यदि तुम्हारे आवास के आगन्तुकों की कभी जांच की आवश्यकता हुई, तो उसकी एक सप्ताह पूर्व तुम्हें सूचना दे दी जाएगी। अब तुम अदृष्ट की नियति को स्वीकार करो, देवी अम्बपाली! महान व्यक्तित्व की सदैव सार्वजनिक स्वार्थों पर बलि होती है। आज वैशाली के जनपद को तुम्हारे स्त्रीत्व की बलि की आवश्यकता है। वह बलि उसे दो, वैशाली जनपद को अपने ही लोहू में डूबने से बचा लो।"

अम्बपाली ने उत्तेजित हो कहा—"क्यों? किसलिए? जहां स्त्री की स्वाधीनता पर हस्तक्षेप हो, उस जनपद को जितनी जल्द लोहू में डुबोया जाए, उतना ही अच्छा है।"

"परन्तु यह अत्यन्त भयानक है, देवी अम्बपाली! तुम्हें वैशाली के जनपद को बचाना होगा। अष्टकुल के स्थापित गणतन्त्र की रक्षा करनी होगी। यह जनपद तुम्हारा है, तुम उसकी एक अंग हो। कहो, तुम अपना प्राण देकर उसे बचाओगी!"

"मैं···मैं अभी प्राण देने को तैयार हूं। आप वधिकों को भेजिए तो।"

गणपति ने आर्द्र कण्ठ से कहा—"तुम चिरंजीविनी होओ, दे अम्बपाली ! तुम अमर होओ। जनपद की रक्षा का भार स्त्री-पु दोनों ही पर है। पुरुष सदैव इसपर अपनी वलि देते आए हैं। स्त्रि को भी बलि देनी पड़ती है। तुम्हारा यह दिव्य रूप, यह अनिन्द्य सौंद यह विकसित यौवन, यह तेज, यह दर्प, यह व्यक्तित्व स्त्रीत्व के न पर किसी एक नगण्य व्यक्ति के दासत्व में क्यों सौंप दिया जाए ? तो साधारण जीवन है। पर देवी अम्बपाली, तुम असाधारण स्त्री-र हो, तुम्हारा जीवन भी असाधारण ही होना चाहिए।"

"तो इसीलिए वैशाली का राष्ट्र मेरी देह को आक्रान्त वि चाहता है, क्यों ?" अम्बपाली ने होंठ चबाकर कहा।

"इसीलिए," वृद्ध गणपति ने स्थिर मुद्रा में कहा—"देवी अम पाली, वैशाली का जनपद अप्रतिम सप्तभूमि प्रासाद, नौ कोटि स्व भार और प्रासाद की सब सज्जा—रत्न, वस्त्र और साधन—तुम्हें रहा है; तुम्हें दुर्ग में सम्राट की भांति शासक रहने की प्रतिष्ठा दे है। यह वह प्रतिष्ठा है देवी अम्बपाली, जो आज तक वज्जीसंघ अष्टकुलों में से किसी गण को, यहां तक कि गणपति को भी प्राप्त न हुई। अब और तुम चाहती क्या हो ?"

"तो यह मेरा मूल्य ही है न ? इसे लेकर मैं अपनी देह वैशा जनपद के अर्पण कर दूं, आप यही तो कहने आए हैं ?"

"निस्सन्देह, मेरे आने का यही अभिप्राय है, देवी अम्बपाली किन्तु अभी जो तुम्हें अटूट सम्पदा मिल रही है, यही तुम्हारा म नहीं है। यह तो उसका एक क्षुद्र भाग है। विश्व की बड़ी-बड़ी स दाएं और वड़े-बड़े सम्राटों के मस्तक तुम्हारे चरणों पर आ गिरें तुम स्वर्ण, रत्न, प्रतिष्ठा और श्री से लद जाओगी। इस सौभाग्य इस अवसर को मत जाने दो, देवी अम्बपाली !"

"तो आप यह एक सौदा कर रहे हैं ! किन्तु यदि मैं यह कहूं मैं अपनी देह का सौदा नहीं करना चाहती, मैं हृदय को बाजा नहीं रख सकती, तव आप क्या कहेंगे ?" अम्बपाली ने वक्रदृष्टि वृद्ध गणपति को देखकर कहा।

गणपति ने संयत स्वर में कहा—"मैं केवल सौदा नहीं कर हूं देवी, मैं तुमसे कुछ वलिदान भी चाहता हूं, जनपद-कल्याण के न सोचो तो, इस समय वैशाली का जनपद किस प्रकार चारों ओ संकट में घिरा हुआ है। शत्रु उसे ध्वस्त करने का मौका ताक र

और अब तुम्हीं एक ऐसी केन्द्रित शक्ति बन सकती हो, जिसके संकेत पर वैशाली जनपद के सेट्ठिपुत्रों और सामन्तपुत्रों की क्रियाशक्ति अवलम्बित होगी। तुम्हीं उनमें आशा, आनन्द, उत्साह और उमंग भर सकोगी। तुम्हीं इन तरुणों को एक सूत्र में बांध सकोगी। वैशाली के तरुण तुम्हारे एक संकेत से, एक स्निग्ध कटाक्ष से वह कार्य कर सकेंगे जो अष्टकुल का गणसंघ तथा संथागार के सम्पूर्ण राजपुरुष मिलकर भी नहीं कर सकते।"

वृद्ध गणपति इतना कहकर घुटनों के बल धरती पर झुक गए। उन्होंने आंखों में आंसू भरकर कहा—"देवी अम्बपाली, मैं जानता हूं कि तुम्हारे हृदय में एक ज्वाला जल रही है। परन्तु देवी, तुम वैशाली के स्वतन्त्र जनपद को बचा लो, नहीं तो वह गृहकलह करके अपने ही रक्त में डूबकर मर जाएगा। वह आज तुम्हारे जीवित शरीर की बलि चाहता है, वह उसे तुम दो। मैं समस्त वज्जियों के जनपद की ओर से तुमसे भीख मांगता हूं।"

अम्बपाली उठ खड़ी हुई। उसने कहा—"उठिए, भन्ते गणपति!" वह सीधी तनकर खड़ी हो गई। उसके नथुने फूल उठे, हाथों की मुट्ठियां बंध गईं। उसने कहा—"जाइए, आप वैशाली जनपद को सन्देश दीजिए कि मैंने उस धिक्कृत कानून को अंगीकार कर लिया है। आज से अम्बपाली कुलवधू की सब मर्यादा, सब अधिकार त्यागकर वैशाली की नगरवधू बनना स्वीकार करती है।"

४. मंगलपुष्करिणी-अभिषेक

वैशाली की मंगलपुष्करिणी का अभिषेक वैशाली जनपद का सबसे बड़ा सम्मान था। इस पुष्करिणी में स्नान करने का जीवन में एक बार सिर्फ उसी लिच्छवि को अधिकार मिलता था, जो गणसंस्था का सदस्य निर्वाचित किया जाता था। उस समय बड़ा उत्सव-समारोह होता था और उस दिन 'गण नक्षत्र' मनाया जाता था। यह पुष्करिणी उस समय बनाई गई थी जब वैशाली प्रथम बार बसाई गई थी। उसमें लिच्छवियों के उन पूर्वजों के शरीर की पूत गंध होने की कल्पना की गई थी, जिन्हें आर्यों ने व्रात्य करके बहिष्कृत कर दिया था और जिन्होंने अपने भुजबल से अष्टकुल की स्थापना की थी।

अम्बपाली लिच्छवि थी और वैशाली जनपद कल्याणी का पद

उसे मिला था। उसे विशेषाधिकार के तौर पर वैशाली के जनपद ने यह सम्मान दिया था। तीन दिन से इस अभिषेक-महोत्सव की धूम वैशाली में मची थी। उस दिन अम्बपाली शोभा-यात्रा बनाकर पहली वार सार्वजनिक रूप में वैशाली के नागरिकों के सामने अनवगुण्ठनवती होकर निकलनेवाली थी।

पहर दिन चढ़े, उस मनोरम वसन्त के प्रभात में नीलपद्म प्रासाद से देवी अम्बपाली की शोभा-यात्रा चली। उसका विमान विविध वर्ण के फूलों से वनाया गया था। उसपर देवी अम्बपाली केवल अन्तरवासक और उत्तरीय पहने लज्जावनत मुख बठी निराभरण होने के कारण तारकाहीन उषा की सुषमा धारण कर रही थी। वह फूलों के ढेर में एक सजीव पुष्पगुच्छ-सी प्रतीत हो रही थी। लज्जा और संकोच से जैसे उसकी आंखें झुकी जा रही थीं। उसका मुंह रह-रहकर लाल हो रहा था। उसकी सुडौल शुभ्र ग्रीवा, उज्ज्वल उन्नत वक्ष और लहराते हुए चिक्कण कुन्तल उसमें गुंथे हुए ताज़े विविध रंग के कुसुम, इन सबकी शोभा अपार थी।

शोभा-यात्रा में आगे वाद्य बज रहे थे। उसके पीछे हाथियों पर ध्वजपताका और निशान थे। उसके पीछे उज्ज्वल परिधान पहने दासियां स्नान और पूजन की सामग्री लिए चल रही थीं। इसके पीछे अम्बपाली का कुसुम-विमान था। उसे घेरकर वैशाली के सामंतपुत्र और सेट्ठिपुत्र अम्बपाली पर पुष्प-गंध की वर्षा करते चल रहे थे। नगरजन अपने-अपने मकानों से पुष्प-गंध फेंक रहे थे। चारों ओर रंगीन पताकाएं ही पताकाएं चमक रही थीं। पीछे नागरिक जन चल रहे थे।

पुष्करिणी के अन्दर द्वार के इधर ही सब लोग रोक दिए गए। केवल सेट्ठिपुत्र और सामंतपुत्र ही भीतर आ सके। इसके बाद घाट पर उन्हें भी रोक दिया गया। पुष्करिणी के घाट पर खड्गधारी भट पंक्तियां बांधकर खड़े थे। उन सबकी पीठ पुष्करिणी की ओर थी। गणपति ने हाथ का सहारा देकर अम्बपाली को विमान से उतारा और धीरे-धीरे उसे पुष्करिणी की सीढ़ियों पर से उतारकर जल के निकट तक ले गए।

फिर उन्होंने पुष्करिणी का पवित्र जल हाथ में लेकर अम्बपाली की अंजलि में दिया और कहा—"कहो देवी अम्बपाली, मैं वज्जीसंघ के अधीन हूं।"

अम्बपाली ने ऐसा ही कहा। तब गणपति उसे जल में और एक

सीढ़ी उतारकर घुटनों तक पानी में खड़े होकर बोले—"कहो देवी अम्बपाली, मैं वैशाली के जनपद की हूं।"

अम्बपाली ने ऐसा ही कहा।

गणपति ने अब कमर तक जल में घुसकर कहा—"कहो देवी अम्बपाली, क्या तुम लिच्छवियों की सात मर्यादाओं का पालन करोगी?"

अम्बपाली ने मृदु कण्ठ से स्वीकृति दी।

तब गणपति ने उच्च स्वर से पुकारकर कहा—"भन्ते आयुष्मान्, सब कोई सुनें। मैं अष्टकुल के वज्जीतन्त्र की ओर से घोषित करता हूं कि देवी अम्बपाली वैशाली की जनपद कल्याणी हैं। वे आज वैशाली की नगरवधू घोषित की गईं।"

यह सुनते ही चारों ओर हर्षनाद तथा ऐसा कोलाहल हुआ कि कान पड़ी आवाज़ सुनाई न देती थी। पुष्पवर्षा से फूलों के ढेर लग गए।

५. पहला अतिथि

अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। सप्तभूमि प्रासाद के प्रहरीगण अलसाई-उनींदी आंखों को लिए विश्राम की तैयारी में थे। तभी एक तरुण धूल-धूसरित, मलिन वेश, अर्धविक्षिप्त अवस्था में धीरे-धीरे प्रासाद के बाहरी तोरण पर आ खड़ा हुआ। प्रहरी ने पूछा—"कौन है?"

"मैं देवी अम्बपाली से मिलना चाहता हूं।"

"अभी देवी अम्बपाली शयनकक्ष में हैं। यह समय उनसे मिलने का नहीं है, अभी तुम जाओ।"

"मैं नहीं जा सकता, देवी के जागने तक मैं प्रतीक्षा करूंगा।" यह कह वह प्रहरी की अनुमति लिए बिना ही वहीं तोरण पर बैठ गया।

प्रहरी ने क्रुद्ध होकर कहा—"चले जाओ तरुण, यहां बैठने की आज्ञा नहीं है। देवी से सन्ध्याकाल में मिलना होता है। इस समय नहीं।"

"कुछ हर्ज नहीं, मैं सन्ध्याकाल तक प्रतीक्षा करूंगा।"

प्रहरी क्रुद्ध होकर बलपूर्वक उसे हटाने लगा, तो तरुण ने खड्ग खींच लिया। प्रहरी ने सहायता के लिए सैनिकों को पुकारा। इतने ही में ऊपर से किसीने कहा—"इन्हें आने दो प्रहरी!"

प्रहरी और आगन्तुक दोनों ने देखा, स्वयं देवी अम्बपाली अलिन्द पर खड़ी आदेश दे रही हैं। प्रहरी ने देवी का अभिवादन किया और

पीछे हट गया। तरुण तीनों प्रांगण पार करके ऊपर शयनकक्ष में पहुंच गया।

अम्बपाली ने पूछा—"रात-भर सोए नहीं, हर्षदेव ?"

"तुम भी तो कदाचित् जागती ही रहीं, देवी अम्बपाली !"

"मेरी बात छोड़ो; परन्तु तुम क्या रात-भर भटकते रहे हो ?"

"कहीं चैन नहीं मिला। यह हृदय जल रहा है। यह ज्वाला सही नहीं जाती अब।"

"एक तुम्हारा ही हृदय जल रहा है हर्षदेव ! परन्तु यदि यह सत्य है तो इसी ज्वाला से वैशाली के जनपद को फूंक दो। यह भस्म हो जाए। तुम बेचारे यदि अकेले जलकर नष्ट हो जाओगे तो उससे क्या लाभ होगा ?"

"परन्तु अम्बपाली, तुम क्या एकबारगी ही ऐसी निष्ठुर हो जाओगी ? क्या इस आवास में तुम मुझे आने की अनुमति नहीं दोगी ? मैं तुम्हारे विना रहूंगा कैसे ? जीऊंगा कैसे ?"

"आओगे तुम इस आवास में ? यदि तुममें इतना साहस हो तो आओ और देखो कि तुम्हारी वाग्दत्ता पत्नी से वैशाली के तरुण सेट्ठि-पुत्र और सामन्तपुत्र किस प्रकार प्रेम-प्रदर्शन करते हैं और वह किस कौशल से हृदय के एक-एक खण्ड का क्रय-विक्रय करती है। देखोगे तुम ? देख सकोगे ? तुम्हें मनाही किस बात की है ? यह तो सार्वजनिक आवास है। यहां सभी आवेंगे, तुम भी आना। परन्तु इस प्रकार दीन-हीन पागल की भांति नहीं। दीन-हीन पुरुष का इस आवास में प्रवेश निषिद्ध है। तुम्हें यह न भूल जाना चाहिए कि यह वैशाली की नगरवधू देवी अम्बपाली का आवास है। जैसे और सब आते हैं, उसी भांति आओ तुम, सज-धजकर हीरे-मोती-स्वर्ण बिखेरते हुए। होंठों पर हास्य और पलकों पर विलास का नृत्य करते हुए। सबको देवी अम्बपाली से प्रेमाभिनय करते देखो। तुम भी वैसा ही प्रेमाभिनय करो, हंसो, बोलो, शुल्क दो, और फिर छूछे हाथ, शून्यहृदय अपने घर चले जाओ। फिर आओ और फिर जाओ। जब तक पद-मर्यादा शेष रहे, जब तक हाथ में स्वर्ण-रत्न भरपूर हों, आते रहो, जाते रहो, लुटाते जाओ, लुटते जाओ। यह नगरवधू का घर है, यह नगरवधू का जीवन है, यह मत भूलो।"

अम्बपाली कहती ही चली गई। उसका चेहरा हिम के समान श्वेत हो रहा था। हर्षदेव पागल की भांति मुंह फाड़कर देखते रह गए।

उनसे कुछ भी कहते न बन पड़ा। कुछ क्षण स्तब्ध रहकर अम्बपाली ने कहा—"क्यों, कर सकोगे ऐसा ?"

"नहीं, नहीं, मैं नहीं कर सकूंगा।"

"तब जाओ तुम। इधर भूलकर भी पैर न देना। इस नगरवधू के आवास में कभी आने का साहस न करना। तुम्हारी वाग्दत्ता स्त्री अम्ब-पाली मर गई। यह नगरवधू देवी अम्बपाली का सार्वजनिक आवास है। यदि तुममें कुछ मनुष्यत्व है, तो तुम जिस ज्वाला से जल रहे हो, उसीसे वैशाली के जनपद को जला दो। भस्म कर दो। मैं तुम्हारी जलाई हुई उस ज्वाला को उत्सुक नेत्रों से देखने की प्रतीक्षा करूंगी।"

हर्षदेव फिर ठहरे नहीं। उसी भांति उन्मत्त की भांति वे आवास से चले गए।

अम्बपाली पत्थर की प्रतिमा की भांति क्षण-क्षण में उदय होते हुए अपने नगरवधू-जीवन के प्रथम प्रभात को देखती खड़ी रही।

६. वैशाली का स्वर्ग

वैशाली का सप्तभूमि प्रासाद उस युग के नन्दन वन की होड़ लगाता था। वहां की सम्पदा, सम्पन्नता, विभूति और सजावट देखकर सम्राटों को ईर्ष्या होती थी। यह समूचा महल श्वेत मरमर का बना था, जिसमें सात खण्ड और सात ही प्रांगण थे।

दीये जल चुके थे। सप्तभूमि प्रासाद का सिंहद्वार उन्मुक्त था। भीतर-बाहर सर्वत्र सुगंधित सहस्रदीपगुच्छ जल रहे थे। दासी, बांदी, चेटी और दण्डधर प्रबंध-व्यवस्था में व्यस्त बाहर-भीतर आ-जा रहे थे। सेट्ठिपुत्र और सामन्तपुत्र अपने-अपने वाहनों पर आ रहे थे। भृत्य-गण दौड़-दौड़कर उनके वाहनों की व्यवस्था कर रहे थे। वे आगंतुक मित्रों के साथ गप्पें उड़ाते आ-जा रहे थे। छठे अलिंद के द्वार पर प्रति-हार उनका स्वागत करके उन्हें प्रमोदभवन के द्वार पर पहुंचा रहे थे, जहां मदलेखा अपनी सहायक साथिनों के साथ आगंतुकों को आदर-पूर्वक ले जाकर उनकी पदमर्यादा के अनुसार भिन्न-भिन्न पीठिकाओं पर बैठाती थीं। कुमारी दासियां पार्श्व में बैठकर मद्य ढाल-ढालकर दे रही थीं। प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर नृत्य-गान प्रारम्भ हुआ। सुन्दरी कुमारी किशोरियां रत्नावली कण्ठ में धारण कर, लोध्ररेणु से कपोल-संस्कार कर, कमर में स्वर्ण-करधनी और पैरों में जड़ाऊ पैंजनी पहन,

आलक्तक पैरों को कुसुम-स्तवकवाले उपाहनों से सज्जित करके कोमल-तन्तु वाद्य और गम्भीर घोष मृदंग की घमक पर शुद्ध स्वर-ताल पर उठाने-गिराने और भू पर आघात करने लगीं। वे थिरक-थिरककर सावधानी और व्यवस्था से स्वर-ताल पर पदाघात करके कामुक युवकों को मूच्छित-सा करने लगीं।

धीरे-धीरे अर्धरात्रि व्यतीत हो चली। तब देवी अम्बपाली ने हंसते हुए प्रमोद-प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। प्रत्येक कामुक पर उसने तीखा कटाक्षपात करके उसे निहाल किया। इस समय उसने वक्षस्थल को मकड़ी के जाले के समान महीन वस्त्र से ढांप रखा था। कण्ठ में महा-तेजस्वी हीरे का एक हार था। हीरों के ही मकर-कुण्डल कपोलों पर दोलायमान हो रहे थे। वक्ष के ऊपर का श्वेत निर्दोष भाग बिलकुल खुला था। कटिप्रदेश के नीचे का भाग स्वर्णमण्डित रत्नखचित पाटम्बर से ढांपा गया था। परन्तु उसके नीचे गुल्फ और अरुण चरणों की शोभा पृथक् विकीर्ण हो रही थी। उसीकी अनिंद्य सुन्दर देहयष्टि, तेजपूर्ण दृष्टि, मोहक-मंद मुस्कान, मराल की सी गति, सिंहनी की सी उठान सब कुछ अलौकिक थी। उस प्रमोद कानन में मुस्कान बिखेरती हुई, नागरिकों को मंद मुस्कान से निहाल करती हुई धीरे-धीरे वह एक अति सुसज्जित स्वर्णपीठ की ओर बढ़ी। वहां तीन युवक सामंतपुत्र उपधानों के सहारे पड़े मद्यपान कर रहे थे। मदलेखा स्वयं उन्हें मद्य ढालकर पिला रही थी।

मदलेखा एक षोड़शी बाला थी। उसकी लाज-भरी बड़ी-बड़ी आंखें उसके उन्मत्त यौवन को जैसे उभरने नहीं देती थीं। वह पद्मराग की गढ़ी हुई पुतली के समान सौन्दर्य की खान थी। व्यासपीठ पर पड़े युवक की ओर उसने लाल मद्य से भरा स्वर्णपात्र बढ़ाया। स्वर्णपात्र को छूती हुई किशोरी मदलेखा की चमक-कली के समान उंगलियों को अपने हाथ में लेकर मदमत्त युवक सामंत ने कहा—"मदलेखा, इतनी लाज का भार लेकर जीवन-पथ कैसे पार करोगी भला? तनिक और निकट आओ।" उसने किशोरी की उंगली की पोर पकड़कर अपनी ओर खींचा।

किशोरी कण्टकित हो उठी। उसने मूक कटाक्ष से युवक की ओर देखा, फिर मंद-कोमल स्वर से कहा—"देवी आ रही हैं, छोड़ दीजिए।"

युवक ने मदविह्वल नेत्र फैलाकर देखा—देवी अम्बपाली साक्षात्

रतिमूर्ति की भांति खड़ी बंकिम कटाक्ष करके मुस्करा रही हैं। युवक ससंभ्रम उठ खड़ा हुआ। उसने कहा—"अब इतनी देर बाद यह सुधा-वर्षण हुआ?"

"हुआ तो,"—देवी ने कुटिल भ्रू-भंग करके कहा—"किन्तु तुम्हारा सौदा पटा नहीं क्या, युवराज?"

"कैसा सौदा?" युवक ने आश्चर्यमुद्रा से कहा।

अम्बपाली ने मदलेखा को संकेत किया, वह भीतर चली गई।

अम्बपाली ने पीठिका पर बैठते हुए कहा—"मदलेखा से कुछ व्यापार चल रहा था न?"

युवराज ने झेंपते हुए कहा—"देवी को निश्चय ही भ्रम हुआ।"

"भ्रम-विभ्रम कुछ नहीं।" उसने एक मन्द हास्य करके कहा—"मेरे ये दोनों मित्र इस सौदे के साक्षी हैं। मित्र जयराज और सूर्यमल्ल! कह सकते हो, युवराज स्वर्णसेन कुछ सौदा नहीं पटा रहे थे?"

जयराज ने हंसकर कहा—"देवी प्रसन्न हों। जब तक कोई सौदा हो नहीं जाता, तब तक वह सौदा नहीं कहला सकता।" अम्बपाली खिलखिलाकर हंस पड़ी। उसने तीन पात्र मद्य से भरकर अपने हाथ से तीनों मित्रों को अर्पण किए और कहा—"मेरे सर्वश्रेष्ठ तीनों मित्रों की स्वास्थ्य-मंगलकामना से ये तीनों पात्र परिपूर्ण हैं।"

फिर उसने युवराज स्वर्णसेन के और निकट खिसककर कहा—"युवराज, क्या मैं तुम्हारा कुछ प्रिय कर सकती हूं?"

युवराज ने तृषित नेत्रों से उसे देखते हुए कहा—"केवल इन प्राणों को, इस खण्डित हृदय को अपने निकट ले जाकर।"

अम्बपाली ने मुस्कराकर कहा—"युवराज का यह प्रणय-निवेदन विचारणीय है, मेरे प्रति भी और मदलेखा के प्रति भी।"

वह उठ खड़ी हुई। उसने हंसकर तीनों युवकों का हाथ पकड़कर कहा—"युवराज स्वर्णसेन, जयराज और मित्र सूर्यमल्ल! अब जाओ, तुम्हारी रात्रि सुखनिद्रा और सुखस्वप्नों की रात्रि हो।"

वह आनन्द बिखेरती हुई, किसीको मुस्कराकर, किसीकी ओर मृदु दृष्टिपात करती हुई, किसीसे एकाध बात करती हुई भीतरी अलिन्द की ओर चली गई। तीनों मित्र शून्य हृदय में कसक लेकर बाहर आए। दूर तक उच्च सप्तभूमि प्रासाद के सातवें अलिन्द के गवाक्षों में से रंगीन प्रकाश छन-छनकर राजपथ पर यत्र-तत्र आलोक बिखेर रहा था।

७. राजगृह

अति रमणीय हरितवसना पर्वतस्थली को पहाड़ी नदी सदानीरा अर्ध-चन्द्राकार काट रही थी। उसीके बायें तट पर अवस्थित शैल पर कुशल शिल्पियों ने मगध साम्राज्य की राजधानी राजगृह का निर्माण किया था। बहुत-सी पर्वत-कन्दराओं को काट-काटकर गुफाएं बनाई गई थीं, जिन्हें प्रासादों की भांति चित्रित एवं विभूषित किया गया था। नगर की शोभा अलौकिक थी तथा उसका कोट दुर्लंघ्य था। राजमहालय में पीढ़ियों की सम्पदा एकत्र थी। नगर के बाहर अनेक बौद्धविहार बन गए थे। अनेक प्राणियों की तरह स्वयं सम्राट बिम्बसार तथागत गौतम के उपासक बन चुके थे। सम्राट के अनुरोध से गौतम राजगृह में भी आ चुके थे। राजगृह के विश्वविद्यालय की भारी प्रतिष्ठा थी। उस समय तक नालन्दा विश्वविद्यालय को भी उतनी प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हुई थी। राजगृह के जगद्विख्यात विश्वविद्यालय में दूर-दूर के नागरिक, उपाध्याय, बटु, प्रकांड विद्वानों के चरणतल में बैठकर अपनी-अपनी ज्ञानपिपासा शांत करते थे।

कोसल के अधिपति प्रसेनजित् ने मगध-सम्राट बिम्बसार को अपनी बहन कोशलदेवी ब्याही थी और उसके दहेज में काशी का राज्य दे दिया था। इस समय काशी पर बिम्बसार के अधीन ब्रह्मदत्त शासन करता था। बिम्बसार की दूसरी राजमहिषी विदेहकुमारी कूकिना थी, जिसके विषय में प्रसिद्ध था कि वह ब्रह्मविद्या की पारंगत पण्डिता है। इन दिनों सम्पूर्ण भारत में चार राज्य ही प्रमुख थे— मगध, वत्स, कोसल और अवन्ती। इन चारों राज्यों में परस्पर संघर्ष रहता था। कोसल से सम्बन्ध होने पर भी मगध सम्राट की महत्त्वाकांक्षा ने कोसल और मगध में सदैव संघर्ष रखा। जिस समय की बात हम कर रहे हैं, उस समय मगध-सम्राट बिम्बसार ने स्वयं कोसल पर चढ़ाई की थी और उसके महान सेनापति भद्रिकचण्ड ने चम्पा का घेरा डाला हुआ था, जिसे आठ मास बीत चुके थे। चम्पा और कोसल के इस अभियान का उद्देश्य यह था कि भारत के पूर्वीय और पश्चिमी वाणिज्य-द्वार सर्वतोभावेन मागधों के हाथ में रहें। चम्पा उन दिनों सम्पूर्ण पूर्वी द्वीपसमूहों का एकमात्र वाणिज्य-मुख था। इस समय मगध-राज की राजधानी राजगृह में प्रसिद्ध मगध-अमात्य वर्षकार, जिनकी बुद्धि-कौशल की उपमा बृहस्पति और शुक्राचार्य से ही दी जा सकती

थी, बैठे शासनचक्र चला रहे थे।

८. रहस्यमयी भेंट

एक पहर रात जा चुकी थी। राजगृह के प्रान्त भाग सुनसान थे। उन्हीं सूनी और अंधेरी गलियों में एक तरुण अश्वारोही चुपचाप आगे बढ़ता जा रहा था। उसका सारा शरीर काले लबादे से ढका था। उसके शरीर और वस्त्रों पर गर्द छा रही थी। तरुण का मुख प्रभावशाली था। उसके गौरवर्ण मुख में तेज़ काली आंखें चमक रही थीं। उसके लबादे के नीचे भारी-भारी अस्त्र अनायास ही दीख पड़ते थे। तरुण का अश्व भी एक असाधारण सिन्धु देश का अश्व था। अश्व और आरोही दोनों थके हुए थे।

बस्ती से अलग वृक्षों के झुरमुट में एक अशुभ-से मकान के पास आकर वह अश्वारोही रुक गया। अन्धकार के कारण वह जान नहीं पाया कि मठ-रूपी उस मकान का प्रवेश-द्वार किधर है। मठ में कोई जीवित व्यक्ति है या नहीं, इसका भी पता नहीं लग रहा था। एक बार उसने मठ के चारों ओर परिक्रमा दी। तब एक ओर कोने में उसे छोटा-सा द्वार दिखाई दिया। उसीको खूब ज़ोर से खटखटाकर तरुण ने पुकारना आरम्भ किया। इसपर कुछ आशा का संचार हुआ। मकान की खिड़की में प्रकाश की झलक दीख पड़ी। किसीने आकर खिड़की में झांककर बाहर खड़े अश्वारोही को देखकर कर्कश स्वर में कहा—"कौन है?"

"मैं अतिथि हूं। आचार्यपाद शाम्बव्य काश्यप से मुझे काम है।"

"आए कहां से हो?"

"गान्धार से।"

"किसके पास से?"

"तक्षशिला के आचार्य बहुलाश्व के पास से।"

"क्या तुम सोमप्रभ हो?"

"जी हां।"

"तब ठीक है।"

वह सिर भीतर घुस गया। थोड़ी देर में एक व्यक्ति ने आकर द्वार खोल दिया। उसके हाथ में दीपक था। उसीके प्रकाश में तरुण ने उस व्यक्ति का चेहरा देखा। देखकर साहसी होने पर भी वह भय से कांप

गया। चेहरे पर मांस का नाम न था। सिर्फ गोल-गोल दो आंखें गहरे गढ़ों में स्थिर चमक रही थीं। चेहरे पर खिचड़ी दाढ़ी-मूंछों का अस्त-व्यस्त गुलझट था। सिर के बड़े-बड़े रूखे बाल उलझे हुए और खड़े थे। गालों की हड्डियां ऊपर को उठी हुई थीं और नाक बीच से धनुष की भांति उभरी हुई थी। वह व्यक्ति असाधारण ऊंचा था। उसका वह हाथ, जिसमें वह दीया थामे था, एक कंकाल का हाथ दीख रहा था।

उसने थोड़ी देर दीपक उठाकर तरुण को गौर से देखा, फिर उसके पतले-सफेद होंठों पर मुस्कान आई। उसने यथासाध्य अपनी वाणी को कोमल बनाकर कहा—"अश्व को सामने उस गोवाट् में बांध दो। वहां एक बालक सो रहा है, उसे जगा दो—वह उसकी सब व्यवस्था कर देगा। और तुम भीतर आओ।"

तरुण घोड़े से उतर पड़ा। उसने उस व्यक्ति के कहे अनुसार अश्व की व्यवस्था करके घर में प्रवेश किया। घर में प्रवेश करते ही वह सिहर उठा। एक विचित्र गन्ध उसमें भर रही थी। भीतर एक बड़ा भारी खुला मैदान था। उसमें अन्धकार फैला हुआ था। कहीं भी जीवित व्यक्ति का चिह्न नहीं दीख रहा था। वही दीर्घकाय अस्थि-कंकाल-सा पुरुष दीपक हाथ में लिए आगे-आगे चल रहा था और उसके पीछे-पीछे भय और उद्वेग से विमोहित-सा वह तरुण जा रहा था। उनके चलने का शब्द उन्हें ही चौंका रहा था। मठ के पश्चिम प्रान्त भाग में कुछ घर बने थे। उन्हींकी ओर वे जा रहे थे। निकट आने पर उसने उच्च स्वर से पुकारा—"सुन्दरम्!"

एक तरुण बटुक आंख मलता हुआ सामने के कुटीर से निकला। तरुण सुन्दर, बलिष्ठ और नवयुवक था। उसकी कमर में पीताम्बर और गले में स्वच्छ जनेऊ था। सिर पर बड़ी-सी चुटिया थी। युवक के हाथ में दीपक देकर दीर्घकाय व्यक्ति ने कहा—"इस आयुष्मान् की शयन-व्यवस्था यज्ञशाला में कर दो।" फिर उसने आगन्तुक की ओर घूमकर कहा—"प्रभात में और बात होगी। अभी मैं बहुत व्यस्त हूं।"

इतना कह वह तेज़ी से अन्धकार में विलीन हो गया।

बटुक ने युवक से कहा—"आओ मित्र, इधर से।"

तरुण चुपचाप बटुक के पीछे-पीछे यज्ञशाला में गया। वहां एक मृगचर्म की ओर संकेत करके उसने कहा—"यह यथेष्ट होगा मित्र?"

"यथेष्ट होगा।"

बटुक जल्दी से एक ओर चला गया। थोड़ी देर में एक पात्र दूध से

भरा तथा थोड़ा मधुगोलक लेकर आया। उन्हें तरुण के सम्मुख रखकर कहा—"वहां पात्र में जल है, हाथ-मुंह धो लो, वस्त्र उतार डालो और यह थोड़ा आहार कर लो। बलि-मांस भी है, इच्छा हो तो लाऊं?"

"नहीं मित्र, यही यथेष्ट है। मैं बलि-मांस नहीं खाता।"

"तो मित्र, और कुछ चाहिए?"

"कुछ नहीं, धन्यवाद।"

बटुक चला गया और युवक ने अन्यमनस्क होकर वस्त्र उतारे, शस्त्रों को खूंटी पर टांग दिया। मधुगोलक खाकर दूध पिया और मृगचर्म पर बैठकर चुपचाप उस अंधकार को देखने लगा। उसे अपने बालकाल की विस्मृत स्मृतियां याद आने लगीं। आठ वर्ष की अवस्था में उसने यहीं से तक्षशिला को एक सार्थवाह के साथ प्रस्थान किया था। तब से अब तक अठारह वर्ष निरंतर उसने तक्षशिला के विश्वविश्रुत विद्यालय में विविध शस्त्र-शास्त्रों का अध्ययन किया था। वह अतीत काल की बहुत-सी बातों को सोचने लगा। इन अठारह वर्षों में उसने केवल शस्त्राभ्यास और अध्ययन ही नहीं किया, पार्शपुर, यवन देश तथा उत्तर कुरु तक यात्रा भी की। देवासुर-संग्राम में सक्रिय भाग लिया। पार्शपुर के शासानुशास से सिन्धु नद पर लोहा लिया। इसके बाद लगभग सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की यात्रा कर डाली। अब यह राजगृह का वह पुरातन मठ न मालूम उसे कैसा कुछ अशुभ, तुच्छ और अप्रिय-सा लग रहा था। इस दीर्घ काल में आचार्य की तो आकृति ही बदल गई थी।

अकस्मात् एक अस्पष्ट चीत्कार से वह चौंक उठा, जैसे गहरी वेदना से कोई दबे कण्ठ से चिल्ला उठा हो। भय और आशंका से वह चंचल हो उठा। उसने खूंटी से खड्ग लिया और चुपचाप दीवार से कान लगाकर सुनने लगा। उस ओर कुछ हो रहा था। ऐसा उसे प्रतीत हुआ कि कहीं कुछ अनैतिक कार्य किया जा रहा है। उसने दीवार टटोलकर देखा—शीघ्र ही एक छोटा-सा, द्वार उसे दीख गया। यत्न करने से वह खुल गया। परन्तु द्वार खुलने पर भी अंधकार के सिवा और कुछ उसे प्रतीत नहीं हुआ। फिर भी किसीके बोलने का अस्फुट स्वर उसे कुछ और साफ सुनाई पड़ने लगा। उसने साहस करके हाथ में खड्ग लेकर उस द्वार के भीतर अंधकार में कदम बढ़ाया। टटोलकर उसने देखा तो वह एक पतली गलियारी-सी मालूम हुई। आगे चलकर वह गलियारी कुछ घूम गई। घूमने पर प्रकाश की एक क्षीण रेखा उसे दीख पड़ी। तरुण और भी साहस करके आगे बढ़ा। सामने नीचे उतरने की

सीढ़ियां थीं। तरुण ने देखा, वह एक गर्भगृह का द्वार है, शब्द और प्रकाश दोनों वहीं से आ रहे हैं। वह चुपके से सीढ़ी उतरकर गर्भगृह की ओर अग्रसर हुआ। सामने पुराने किवाड़ों की दरार से प्रकाश आ रहा था। उसीमें से झांककर जो कुछ उसने देखा, देखकर उसकी हड्डियां कांप उठीं। आचार्य एक व्याघ्रचर्म पर स्थिर बैठे थे। उनके सम्मुख कोई राजपुरुष वीरासन से दूसरे व्याघ्रचर्म पर बैठे थे। इनकी आयु साठ के लगभग होगी। इनका शरीर मांसल, कद ठिगना, सिर और दाढ़ी-मूंछें मुड़ी हुईं, बड़ी-बड़ी तेजपूर्ण आंखें, दृढ़ सम्पुटित होंठ। उनके पास लम्बा नग्न खड्ग रखा था। उनके पास ही बगल में एक अति सुन्दरी बाला अधोमुखी बैठी थी। उसका शरीर लगभग नग्न था। उसकी सुडौल गौर भुजलता अनावृत थी। काली लटें चांदी के समान श्वेत मस्तक पर लहरा रही थीं। पीठ पर पदतल-चुम्बी चोटी लटक रही थी। उसका गौर वक्ष अनावृत था, सिर्फ बिल्वस्तन कौशेय पट्ट से बंधे थे। कमर में मणिजटित करधनी थी, जिससे अधोवस्त्र कसा हुआ था। इस सुन्दरी के नेत्रों में अद्भुत मद था। कुछ देर उसकी ओर देखने ही से जैसे नशा आ जाता था। उसके बिम्बाफल जैसे ओष्ठ इतने सरस और आग्रही प्रतीत हो रहे थे कि उन्हें देखकर मनुष्य का काम अनायास ही जाग्रत् हो जाता था। इस तरुणी की आयु कोई बीस वर्ष की होगी। इस समय वह अति उदास एवं भीत हो रही थी। तरुण ने झांककर देखा, तरुणी कह रही थी—"नहीं पिता, अब नहीं, मैं सह न कर सकूंगी।" आचार्य ने कठोर मुद्रा से उसकी ओर ज्वालानेत्रों से देखा—"सावधान कुण्डनी, मुझे क्रुद्ध न कर।" उन्होंने हाथ में चमड़े का एक चाबुक हिलाकर रुक्ष हिंस्रभाव से कहा—"दंश ले।"

बाला ने एक बार असहाय दृष्टि से आचार्य की ओर, फिर उस राजपुरुष की ओर देखकर पास रखे हुए पिटक का ढकना उठाया। एक भीमकाय काला नाग फुंफकार मार और फन उठाकर हाथ-भर ऊंचा खड़ा हो गया। बाला ने अनायास ही नाग का मुंह पकड़कर कण्ठ में लपेट लिया। एक बार फिर उसने करुणदृष्टि से आचार्य की ओर देखा और फिर अपने सुन्दर लाल अधरों के निकट सर्प का फन ले जाकर अपनी जीभ बाहर निकाली और नाग की चुटकी ढीली कर दी। नाग ने फूं करके बाला की जीभ पर दंश किया और उलट गया।

आचार्य ने सन्तोष की दृष्टि से राजपुरुष की ओर देखा। बाला ने सर्प को अपने गले से खींचकर दूर फेंक दिया। वह क्रुद्ध दृष्टि

आचार्य को देखती रही। सर्प निस्तेज होकर एक कोने में पड़ा रहा। बाला के मस्तक पर स्वेद-विन्दु झलकने लगे। यह देखकर तरुण का सारा शरीर भय से शीतल हो गया।

आचार्य ने एक लम्बी लौहशलाका से सर्प को अर्धमूर्च्छित अवस्था में उठाकर पिटक में बन्द कर दिया और मद्यपात्र आगे सरकाकर स्नेह के स्वर में कहा—"मद्य पी ले कुण्डनी!" बाला ने मद्यपात्र मुंह से लगाकर गटागट सारा मद्य पी लिया।

राजपुरुष ने अब मुंह खोला। उन्होंने कहा—"ठीक है आचार्य, कल प्रातःकाल ही कुण्डनी को चम्पा भेजने की व्यवस्था करूंगा, परन्तु यदि आप जाते तो···"

"नहीं, नहीं, राजकार्य राजपुरुषों का है—मेरा नहीं।" आचार्य ने रूखे स्वर से कहा। फिर युवती की ओर लक्ष्य करके कहा—"कुण्डनी, तुझे अंगराज दधिवाहन पर अपने प्रयोग करने होंगे, पुत्री!"

कुण्डनी विष की ज्वाला से लहरा रही थी। उसने सर्पिणी की भांति होंठों पर जीभ का पुचारा फेरते हुए भ्रांत नेत्रों से आचार्य की ओर देखकर कहा—"मैं नहीं जाऊंगी पिता, मुझ पर दया करो।"

आचार्य ने कठोर स्वर में कहा—"मूर्ख लड़की, क्या तू राजकाज का विरोध करेगी?"

"तो आप मार डालिए पिता, मैं नहीं जाऊंगी।"

आचार्य ने फिर चाबुक उठाया। तरुण अब अपने को आपे में नहीं रख सका, खड्ग ऊंचा करके घड़घड़ाता गर्भगृह में घुस गया। उसने कहा—"आचार्यपाद, यह घोर अन्याय है, यह मैं नहीं देख सकता।"

आचार्य और राजपुरुष दोनों ही अवाक् रह गए। वे हड़बड़ाकर खड़े हो गए। राजपुरुष ने खड्ग उठाकर कहा:

"तू कौन है रे, छिद्रान्वेषी? तूने यदि हमारी बात सुन ली है, तो तुझे अभी मरना होगा।"

उन्होंने ताली बजाई और चार सशस्त्र योद्धा गर्भगृह में आ उपस्थित हुए। राजपुरुष ने कहा—"इसे बन्दी करो।"

युवक ने खड्ग ऊंचा करके कहा—"कदापि नहीं।"

आचार्य ने कड़ी दृष्टि से युवक को ताककर उच्चस्वर से कहा—"खड्ग रख दो, आज्ञा देता हूं।"

एक अतर्कित अनुशासन के वशीभूत होकर युवक ने खड्ग रख दिया। सैनिकों ने उसे बांध लिया।

राजपुरुष ने कहा—"इसे बाहर ले जाकर तुरन्त वध कर दो।"
आचार्य ने कहा—"नहीं, अभी बन्दी करो।"

राजपुरुष ने आचार्य की बात रख ली। सैनिक तरुण को ले ग
आचार्य ने राजपुरुष के कान में कुछ कहा। उसे सुनकर वे चौंक प
उनका चेहरा पत्थर की भांति कठोर हो गया।

आचार्य ने मुस्कराकर कहा—"चिन्ता की कोई बात नहीं।
उसे ठीक कर लूंगा। मेरे विचार में कुण्डनी के साथ इसीका च
जाना ठीक होगा।"

राजपुरुष विचार में पड़ गए। आचार्य ने कहा—"द्विविधा
कोई बात नहीं है।"

"जैसा आपका मत हो, परन्तु अभी उसे उसका तथा कुण्डनी
परिचय नहीं दिया जाना चाहिए।"

"किन्तु आर्या मातंगी से उसे भेंट करनी होगी।"

"क्यों?"

"आवश्यकता है, मैंने आर्या को वचन दिया है।"

"नहीं, नहीं, आचार्य, ऐसा नहीं हो सकता।"

आचार्य ने रूखे नेत्रों से राजपुरुष को देखकर कहा—"चाहे
भी हो, मैं निर्मम-नीरस वैज्ञानिक हूं, फिर भी आर्या का कष्ट
नहीं देख सकता। आप राजपुरुष मुझ वैज्ञानिक से भी अधिक
और निर्दय हैं।"

"किन्तु आर्या जब तक उस रहस्य का उद्घाटन नहीं करतीं

"उनपर बल-प्रयोग का आपको अधिकार नहीं है।"

"किन्तु सम्राट की आज्ञा···!"

"अब मैं उनकी प्रतीक्षा नहीं कर सकता। मैं सम्राट से
लूंगा, आप जाइए। कुण्डनी प्रातः आपके पास पहुंच जाएगी।"

"और वह···वह, खैर, वह तरुण भी?"

आचार्य हंस दिए। उन्होंने कहा—"उसका नाम सोमप्रभ है
भी सेवा में पहुंच जाएगा।"

९. बन्दी की मुक्ति

राजपुरुष के जाने के बाद बहुत देर तक राजगृह का वह अद्भुत
निक उस एकान्त भयानक कुंज में चुपचाप अकेला टहलता रहा।

ठों ही होंठों में गुनगुना रहा था। कभी-कभी उसके हाथों की ट्ठियां बंध जातीं और वह बहुत उत्तेजित हो जाता। सम्भवत: वह तीत की अति कटु और वेदनापूर्ण स्मृतियों को विस्मृत करने की ष्टा कर रहा था। थोड़ी देर में वह शांत होकर एक व्याघ्रचर्म पर ठ गया। फिर वह उठा, कक्ष का द्वार सावधानी से बन्द करके वह सी अन्धकारपूर्ण गर्भगृह में टेढ़ी-तिरछी सुरंगों में चलता रहा। एक लती हुई मशाल उसके हाथ में थी। अन्त में वह गर्भगृह के द्वार र आकर खड़ा हो गया। प्रहरियों ने उसका प्रणिपातपूर्वक अभिवादन या। प्रहरी से उसने कहा :

"क्या बन्दी सो रहा है ?"

"नहीं, जग रहा है।"

"तब ठीक है, द्वार खोल दो।"

प्रहरी ने द्वार खोल दिया। वैज्ञानिक ने भीतर जाकर देखा, युवक शांत मुद्रा में एक काष्ठफलक पर बैठा है। आचार्य ने स्निग्ध स्वर कहा—"तुम्हारा ऐसा अविनय आयुष्मान् !"

"किन्तु मैं ..."

"चुप, एक शब्द भी नहीं—मेरे पीछे आओ।" आचार्य ने द्वार ओर मुंह किया। पीछे-पीछे युवक था। वे उन्हीं टेढ़ी-तिरछी सुरंगों चलते गए। अन्त में एक कक्ष के द्वार पर आकर वे रुके। वह एक ास्त कक्ष था। एक दीपक वहां जल रहा था। बहुत-से मृतक पशु-क्षियों के शरीर वहां लटक रहे थे। अनेक जड़ी-बूटियां थैलियों में री हुई थीं। बहुत-से पिटक, भाण्ड और कांच की शीशियों में रसायन य भरे थे। यह सब देखकर युवक भय और घबराहट से भौंचक गया। एक शिलापीठ पर बैठकर आचार्य ने तरुण को भी निकट ने का संकेत किया। वे कुछ देर उसके नेत्रों की ओर देखकर बोले, ुम्हें अपने बाल्यकाल की कुछ स्मृति है ?"

"बहुत कम, आचार्यपाद !"

"तुम आठ वर्ष की अवस्था तक मेरे पास यहीं रहे हो। स्मरण ?"

"कुछ-कुछ।"

"अब जब तुम तक्षशिला से चले थे—तब वयस्य बहुलाश्व ने से मेरे विषय में कुछ कहा था ?"

"कहा था, आचार्य ! आचार्य बहुलाश्व ने कहा था—सोम,

तुम्हें मैंने शस्त्र और शास्त्रों का पूर्ण अध्ययन करा दिया, तुम्हा बुद्धि प्रखर कर दी। अठारह वर्षों में तुम एक अजेय योद्धा, रणपं और सर्वशास्त्र निष्णात पंडित हो गए। अब इस शौर्य और प्र बुद्धि का उपयोग तुम्हें राजगृह के समर्थ सिद्ध योगेश्वर वयस्य शाम काश्यप बताएंगे।"

"बस, इतना ही कहा था ?"

"और भी कहा। कहा था—तुम सीधे उन्हींके पास जाना जो कुछ कहें, वही करना। तुम पूर्वीय भारत के एक म साम्राज्य के महारथी सूत्रधार होगे। तुम्हारा दायित्व बहुत होगा।"

"ठीक है, परन्तु अभी तुमने अविनय ही नहीं किया, गुरुतर राध भी किया है। गुरुजन के क्रियाकलाप पर इस प्रकार उत्तेजि जाना बड़ी ही मूर्खता की बात है।"

तरुण लज्जित हो गया। उसने कहा—"आचार्यपाद, मुझे कीजिए। मैंने समझा, एक निरीह अबला पर अत्याचार हो है।"

आचार्य ने क्रुद्ध होकर कहा—"वत्स, अत्याचार तुम्हारे अविवेकी तरुण कहते हैं, न कि हमारे जैसे विरक्त, जिन्होंने विश्व अपने लिए घृणा, भय, विरक्त और अशौच ही प्राप्त किया है। अभी यह जानना शेष है कि राजतन्त्र शस्त्रविद्या और बुद्धिबल प नहीं चलता। यदि ऐसा होता तो योद्धा लोग ही सम्राट बन ज वत्स, राजतन्त्र के बड़े जटिल ताने-बाने हैं। उनके अनेक रूप कुत्सित, बड़े बीभत्स और अप्रिय हैं। राजवर्गी पुरुष को वे सब पड़ते हैं। जो सत्य है, शिव है, वही सुन्दर नहीं है आयुष्मान्, न मानव-समाज सदैव लोहू की नदी बहाना ही अपना परम पुरु समझता।"

यह कहते-कहते आचार्य उत्तेजना के मारे कांपने लगे। पीला भयानक अस्थिकंकाल जैसा शरीर एक प्रेत के समान लगा और उनकी वाणी प्रेतलोक से प्रेरित-सी होने लगी।

युवक भय और आचार्य के विचित्र प्रभाव से ऐसा अभिभूत कि कुछ बोल ही न सका। आचार्य एकाएक उठ खड़े हुए। कहा—"जाओ, अब तुम विश्राम करो, कल प्रातः तुम्हें आर्य व की सेवा में उपस्थित होकर, तुमने अब तक जो सीखा है, उसका

वत् परिचय उनको देना होगा।"

आचार्य ने अपनी सूखी कांपती हुई उंगली उठाई। तीखी चितवन से देखा और युवक को जाने का संकेत किया। तरुण ने उठकर आचार्य को नमस्कार किया और कहा—"एक निवेदन और है। मुझे अभी तक मेरे माता-पिता का नाम नहीं मालूम है; मेरा क्या कुल-गोत्र है, यह भी मैं नहीं जानता हूं। क्या आचार्यपाद मुझे मेरे माता-पिता और कुल-गोत्र से परिचित करा सकेंगे?"

"वयस्य बहुलाश्व ने क्या कहा था?"

"उन्होंने कहा था—'तुम्हारा आत्मपरिचय संसार में केवल तीन व्यक्ति जानते हैं, उनमें एक आचार्य शाम्बव्य काश्यप हैं।' शेष दो का नाम नहीं बताया। इसीसे मैंने आचार्यपाद से निवेदन किया।"

"वह समय पर जानोगे।"

और वे तेज़ चाल से एक ओर जाकर अंधकार में विलीन हो गए। उस भयानक स्थान में तरुण अकेला ठहरने का क्षण-भर भी साहस न कर सका। वह शीघ्रता से यज्ञशाला में चला आया। उस अद्भुत वैज्ञानिक का विचित्र प्रभाव और उस अनन्त सुन्दरी बाला का वह अप्रतिम रूप और वह सर्पदंश उसके मस्तक में तूफान उठाने लगा।

१०. राजगृह का वैज्ञानिक

"रात में सो नहीं पाए आयुष्मान्? तुम्हारी आंखें भारी हो रही हैं!"

"आचार्य, नहीं ही सो सका।"

"ठीक है, अकस्मात् ही तुम्हें अतर्कित तथ्य देखना पड़ा। परंतु क्या तुमने मेरी प्रयोगशाला देखी है?"

"अभी मित्र सुन्दरम् ने यत्किंचित् दिखाई, वही।"

"अधिक तो समय-समय पर जानोगे सोम, ये सब विविध जन्तुओं के पित्त, रक्त और आंतों के रस, विविध द्रव्य गुण विपाकवाली वनस्पति, अमोघ सामर्थ्यवान रस-रसायन जो इन पिटकों और भाण्डों में देख रहे हो, वास्तव में इनमें जीवन और मृत्यु बन्द है।"

"जीवन और मृत्यु? इसका क्या अभिप्राय है आचार्य?"

"अभिप्राय है राजतन्त्र। तुमने योद्धा का कार्य किया है। तुम जानते हो, युद्ध करना और युद्ध में विजय पाना दोनों भिन्न-भिन्न

कार्य हैं। इन कांचकूप्यकों के रसायन को छूकर, खाकर, देखकर मनुष्य और जनपद अंधा, बहरा, उन्मत्त, नपुंसक, मूच्छित तथा मृतक हो जाता है वत्स !"

"ओह, कितना दुस्सह है, आचार्य !"

"पर उससे अधिक नहीं, जब तुम स्वस्थ मनुष्य के कलेजे में दया-भावहीन होकर खड्ग घुसेड़ देते हो; तुम्हारे बाण निरीह व्यक्तियों की पसलियों में बलात् घुस जाते हैं; जब तुम जीवित, आशापूर्ण हृदय रखनेवाले तरुण का अनायास ही शिरच्छेद कर डालते हो। रणोन्माद में यही तो करना पड़ता है तुम्हें।"

"पर वह युद्ध है, आचार्य !"

"यह भी वही है वत्स, उसमें शौर्य चाहिए, इसमें बुद्धि-कौशल। राजतन्त्र और धवल अट्टालिकाएं और राजमहलों के मोहक वैभव ऐसे ही कदर्य कार्यों से प्राप्त होते हैं। तुम देखोगे वत्स, कि जिस विजय का सेहरा तुम्हारी सेना के सिर बंधता है, वह इन्हीं पिटकों और कांचकूप्यकों से प्राप्त होती है। परन्तु अधिक वितण्डा से क्या, तुम्हें अभी आर्य वर्षकार के निकट जाना है। स्मरण रखो, भरतखण्ड के एक महान व्यक्ति के सामने जा रहे हो। आज पृथ्वी पर दो ही राजतन्त्री पुरुष जीवित हैं। एक कौशाम्बी में यौगन्धरायण और दूसरे राजगृह में वर्षकार।"

"यौगन्धरायण को देख चुका हूं, आचार्य, कौशाम्बीपति उदयन के साथ मैं देवासुर-संग्राम में सम्मिलित हुआ हूं। तभी आर्य यौगन्धरायण का कौशल देखा है।"

"तो अब आर्य वर्षकार को देखो, आयुष्मान् ! परन्तु एक बात याद रखना, मगध-साम्राज्य के प्रति एकान्त, एकनिष्ठ रहना, और दो व्यक्तियों के प्रति अविनय न करना—एक सम्राट के प्रति, दूसरे वर्षकार के प्रति।"

"आचार्यपाद का यह आदेश याद रखूंगा।"

"तो तुम अभी कुण्डनी को लेकर वयस्य वर्षकार के पास जाओ और उनके आदेश का यत्नपूर्वक पालन करो।"

"कुण्डनी कौन ?"

"कल रात जिसे देखा था।"

"वह कौन है ?"

"तुम्हारी भगिनी।"

"इस अज्ञात कुलशील भाग्यहीन की कोई भगिनी भी है ?"

"कहा तो, है। परन्तु इससे अधिक जानने की चेष्टा न करो। गुरुजन के आदेशों पर कौतूहल ठीक नहीं है। एक वचन दो, सोम !"

"आचार्य की क्या आज्ञा है ?"

"यदि वयस्य वर्षकार तुम्हें किसी अभियान पर कुण्डनी के साथ भेजें तो प्राण देकर भी कुण्डनी की रक्षा करना।"

"ऐसा ही होगा आचार्य, किन्तु इस समय राजगृह पर मालवराज चण्डमहासेन के अभियान का भय है। मैं समझता था, यहां मेरी सेवाओं की आवश्यकता होगी।"

"यह मगध-महामात्य के विचार का विषय है, भद्र !" आचार्य ने उपेक्षा से कहा। फिर आचार्य ने उच्चस्वर से कुण्डनी को पुकारा। कुछ ही क्षण में वही रातवाली बाला आ खड़ी हुई। इस समय वह एक काले लंबे वस्त्र से अपने को आवेष्टित किए हुए थी। उसका चम्पे की कली के समान पीतप्रभ मुख, उसपर वही विलासपूर्ण मद-भरी आंखें और लालसा से लबालब होंठ, कुंचित भृकुटि-विलास, सब कुछ वही रातवाला था। देखकर युवक ने आंखें नीची कर लीं।

आचार्य ने कहा—"तो तुम बिलकुल तैयार हो ? यह तुम्हारा भाई और रक्षक सोम है, इसपर विश्वास करना पुत्री ! और यह लो, इसे अत्यन्त सावधानी से प्रयोग करना।" इतना कहकर एक हाथी-दांत की मूठ की छोटी-सी किन्तु अति सुन्दर कटार उसे पकड़ा दी। फिर उन्होंने दोनों हाथ उठाकर कहा—"शुभास्ते पन्थानः सन्तु !" वे कुछ देर चुप रहे।

मालूम होता है, कहीं से आर्द्रभाव उनके नेत्रों में आ गया। उसे क्षण-भर ही में रोककर कहा :

"सौम्य सोम, तुम्हें एक और आवश्यक काम करना होगा। महामात्य से आदेश लेकर जब राजगृह से प्रस्थान करने लगो, तब प्रस्थान से पूर्व तुम एक बार आर्या मातंगी से साक्षात् करना।"

"आर्या मातंगी कौन ?"

आचार्य ने क्रुद्ध नेत्रों से सोम की ओर ताककर कहा—"फिर कौतूहल ! क्या तुमने मेरा आदेश नहीं सुना ?"

सोम ने नतशिर होकर कहा—"क्षमा आचार्य, मेरी भूल हुई।"

"तुम्हारे अश्व बाहर तैयार हैं।" आचार्य ने रुखाई से कहा—"अब जाओ तुम।"

कुण्डनी ने कटार को वेणी में छिपाकर भूमि में गिरकर आचा[र्य] को प्रणिपात किया। फिर दृढ़ स्वर में कहा—"चलो सोम !"

११. मगध-महामात्य आर्य वर्षकार

मगध-महामात्य के सौध, सौष्ठव और वैभव को देखकर सोम हतबु[द्धि] हो गया। उसने कुभा, कपिशा, काम्बोज, पार्शुक, यवन, पांचाल [,] अवन्ती और कौशाम्बी के राजवैभव देखे थे; कोसल की राजनग[री] श्रावस्ती और साकेत भी देखी थी; पर इस समय जब उसने कुण्डनी [के] साथ राजगृह के अन्तरायण के अभूतपूर्व वैभव को देखते हुए महामा[त्य] के सौध के सम्मुख आकर वहां का विराट रूप देखा, तो वह समझ [ही] न सका कि वह जाग्रत् है या स्वप्न देख रहा है।

अनेक अलिन्दों और प्रकोष्ठों को पार कर जब वह अमात्य [के] कक्ष में पहुंचा तो देखा, अमात्य रजतपीठ पर झुके हुए कुछ लिख र[हे] हैं। थोड़ी देर में लेख समाप्त कर अमात्य ने ज्योंही सिर उठाया, उ[न्हें] देखते ही सोमप्रभ भयभीत होकर दो कदम पीछे हट गया। उस[ने] देखा—महामात्य और कोई नहीं, रात में आचार्य के गर्भगृह में जि[स] राजपुरुष को देखा था, वही हैं।

अमात्य भी सोम को देखकर एकदम विचलित हो उठे। वे हठा[त्] आसन छोड़कर उठ खड़े हुए, परन्तु तत्क्षण ही वे संयत होकर आस[न] पर आ बैठे।

सोम ने आत्मसंवरण करके खड्ग कोष से निकालकर उष्णीय [से] लगा अमात्य को सैनिक पद्धति से अभिवादन किया। अमात्य पीठ प[र] निश्चल बैठे रहे और कठोर दृष्टि से उसकी ओर कुछ देर देखते र[हे] फिर भृकुटी में बल डालकर बोले :

"अच्छा, तुम्हीं वह उद्धत युवक हो, जिसे छिद्रान्वेषण की ग[न्दी] आदत है !"

"आर्य, मैं अनजाने में अविनय और गुरुतर अपराध कर बैठ[ा] किन्तु मेरा अभिप्राय बुरा न था।"

"तुमने तक्षशिला में शस्त्र-शास्त्र और राजनीति की शिक्षा पा[ई] है न ?"

"आर्य का अनुमान सत्य है।"

"तब तो तुम्हारे इस अपराध का गौरव बहुत बढ़ जाता है।"

"किन्तु आचार्य ने मेरी मनःशुद्धि को जानकर मेरा अपराध क्षमा कर दिया है, अब मैं आर्य से क्षमा-प्रार्थना करता हूं।"

अमात्य बड़ी देर तक होंठ चबाते और दोनों हाथों की उंगलियां ऐंठते रहे, फिर एक मर्मभेदिनी दृष्टि युवक पर डालकर कहा :

"हुआ, परन्तु क्या तुम अपने दायित्व को समझने में समर्थ हो?"

"मैं आर्य का अनुगत हूं।"

"क्या कहा तुमने?"

"मैं, सोमप्रभ, मगध-महामात्य का अनुगत सेवक हूं।"

"और मगध-साम्राज्य का भी?"

"अवश्य आर्य, मैं सम्राट के प्रति भी अपना एकनिष्ठ सेवाभाव निवेदन करता हूं।"

अमात्य ने घृणा से होंठ सिकोड़कर कहा—"यह तो मैंने नहीं पूछा, परन्तु जब तुमने निवेदन किया है तो पूछता हूं—यदि सम्राट और साम्राज्य में मतभेद हो, तो तुम किसके अनुगत होगे?"

"साम्राज्य के, आर्य!"

अमात्य ने मुस्कराकर कहा—"और यदि अमात्य और साम्राज्य में मतभेद हुआ, तब?"

क्षण-भर सोमप्रभ विचलित हुआ, फिर उसने दृढ़ स्वर में किंतु विनम्र भाव से कहा :

"साम्राज्य के, आर्य!"

अमात्य की भृकुटी में बल पड़ गए। उन्होंने रूखे स्वर में कहा—"किन्तु युवक, तुम अज्ञात कुलशील हो।"

"तो मगध-महामात्य मेरी सेवाओं को अमान्य कर सकते हैं और अनुमति दे सकते हैं कि मैं आचार्य बहुलाश्व और आचार्यपाद काश्यप से की गई प्रतिज्ञाओं से मुक्त हो जाऊं।"

"अपने आचार्यों से तुमने क्या प्रतिज्ञाएं की हैं, आयुष्मान्?"

"मगध के प्रति एकनिष्ठ रहने की, आर्य!"

"क्यों?"

"क्योंकि मैं मागध हूं। तक्षशिला से चलते समय बहुलाश्व आचार्य-पाद ने कहा था कि तुम मगध-साम्राज्य के प्रति प्राण देकर भी एकनिष्ठ रहना और आचार्यपाद काश्यप ने कहा था—महामात्य के आदेश का पालन प्रत्येक मूल्य पर करना।"

"आचार्य ने ऐसा कहा था?" अमात्य ने मुस्कराकर कहा।

फिर कुछ ठहरकर धीमे स्वर से बोले :

"यह यथेष्ट है आयुष्मान् कि तुम मागध हो। अच्छा, तो तुम याद रखो—मगध-साम्राज्य और मगध-अमात्य के तुम एक सेवक हो।"

"निश्चय, आर्य !"

"ठीक है, कुण्डनी से तुम परिचित हुए ?"

"वह मेरी भगिनी है, आर्य !"

"और वयस्य काश्यप ने तुम्हें उसका रक्षक नियत किया है ?"

"जी हां, आर्य !"

"मैं तुम्हें अभी एक गुरुतर भार देता हूं। तुम्हें इसी क्षण एक जोखिमपूर्ण और गोपनीय यात्रा करनी होगी।"

"मैं प्रस्तुत हूं।"

"तो तुम इसी क्षण कुण्डनी को लेकर चम्पा को प्रस्थान करो। तुम्हारे साथ केवल पांच योद्धा रहेंगे। वे मैंने चुन दिए हैं। सभी जीवट के आदमी हैं। वे बाहर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। किन्तु तुम्हारी यात्रा कोई जान न पाएगा, तथा तुम्हें कुण्डनी की रक्षा भी करनी होगी। उससे भी अधिक और एक वस्तु की।"

"वह क्या, आर्य ?"

"यह," वर्षकार ने एक पत्र सोमप्रभ को देकर कहा—"इसे जल्द से जल्द सेनापति चण्डभद्रिक को पहुंचाना होगा। पत्र निरापद उनके हाथ में पहुंचाना अत्यन्त आवश्यक है।"

"आर्य निश्चिन्त रहें।"

"परन्तु यह सहज नहीं है, आयुष्मान् ! राह में दस्यु और असुरों के जनपद हैं। फिर तुम्हें मैं अधिक सैनिक भी नहीं ले जाने दे सकता।"

"वचन देता हूं, पत्र और कुण्डनी ठीक समय पर सेनापति के पास पहुंच जाएंगे।"

"कुण्डनी नहीं, केवल पत्र। कुण्डनी सेनापति के पास नहीं जाएगी। सेनापति को उसकी सूचना भी नहीं होनी चाहिए।"

"ऐसा ही होगा, आर्य; किन्तु कुण्डनी को किसके सुपुर्द करना होगा ?"

"यह तुम्हें चंपा पहुंचने पर मालूम हो जाएगा।"

"जो आज्ञा, आर्य !"

अमात्य ने दण्डधर को कुण्डनी को भेज देने का संकेत किया। कुण्डनी ने अमात्य के निकट आकर उनके चरणों में प्रणाम किया।

अमात्य ने उसके मस्तक पर हाथ धरकर कहा :

"कुण्डनी !"

कुण्डनी ने विह्वल नेत्रों से अमात्य की ओर देखा।

अमात्य ने कहा—"सम्राट के लिए।"

कुण्डनी उसी भांति स्थिर रही। अमात्य ने फिर कहा—"साम्राज्य के लिए।"

कुण्डनी फिर भी स्तब्ध रही। अमात्य ने कहा—"मगध-जनपद के लिए।"

कुण्डनी अब भी अचल रही। अमात्य ने कहा—"हाथ दो कुण्डनी !"

कुण्डनी ने अपना दक्षिण हाथ अमात्य के हाथ में दे दिया।

अमात्य ने कहा—"कांप क्यों रही हो, कुण्डनी ?"

कुण्डनी बोली नहीं। अमात्य ने उसके मस्तक पर हाथ धरकर कहा—"सोम की रक्षा करना, सोम तुम्हारी रक्षा करेगा, जाओ।"

कुण्डनी ने एक शब्द भी बिना कहे भूमि में गिरकर प्रणाम किया।

अमात्य ने एक बहुमूल्य रत्नजटित खड्ग तरुण को देकर कहा—"सोम, इसे धारण करो। आज से तुम मगध-महामात्य की अंगरक्षिणी सेना के अधिनायक हुए।"

सोम ने झुककर खड्ग दोनों हाथों में लेकर अमात्य का अभिवादन किया और दोनों व्यक्ति पीठ फेरकर चल दिए।

अमात्य के मुख पर एक स्याही की रेखा फैल गई। उन्हें प्राचीन स्मृतियां व्यथित करने लगीं और वे अधीर भाव से कक्ष में टहलने लगे।

बाहर आकर सोम ने कहा—"कुण्डनी, अभी मुझे एक मुहूर्त-भर राजगृह में और काम है।"

"आर्या मातंगी के दर्शन न ?"

"हां, क्या तुम उन्हें जानती हो ?"

"जानती हूं।"

"क्या तुम भी साथ चलोगी ?"

"नही, वहां प्रत्येक व्यक्ति का जाना निषिद्ध है।"

"तब मैं कैसे जाऊंगा ?"

"पिता ने कुछ व्यवस्था कर दी होगी।"

"तब तुम सैनिकों को लेकर दक्षिण तोरण पर मेरी प्रतीक्षा करो और मैं आर्या मातंगी के दर्शन करके वहीं आता हूं।"

दोनों ने दो दिशाओं में अपने अश्व फेरे।

१२. आर्या मातंगी

नगर के बाहर एक बहुत पुराना सूना मठ था। वह मठ गोविन्द स्वामी के मठ के नाम से प्रसिद्ध था। गोविन्द स्वामी वेदपाठी ब्राह्मण थे और उनके तप और दिव्यज्ञान की बहुत गाथाएं राजगृह में प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि वर्तमान सम्राट बिम्बिसार के पिता को इन्हीं गोविन्द स्वामी ने अश्वमेध यज्ञ कराकर सम्राट की उपाधि दी थी। सम्राट के पिता गोविन्द स्वामी की बहुत पूजा-अर्चना तथा सम्मान करते थे। वे सदैव पांव-प्यादे उनसे मिलने जाते थे। उन्हींके जीवन-काल में गोविन्द स्वामी की मृत्यु हुई। उस समय उन्होंने एक अबोध आठ वर्ष की बालिका अपने पीछे छोड़ी। उसे सम्राट के हाथ में सौंपकर कहा—'सम्राट इसकी रक्षा का भार लें', और सम्राट ने कहा था—'मेरे पुत्र बिम्बिसार के बाद यही कन्या मेरी पुत्री है। राजपुत्री की भांति ही इसका लालन-पालन होगा।' परन्तु गोविन्द स्वामी ने कहा—'नहीं, नहीं, सम्राट ! मातंगी का लालन-पालन ब्राह्मण-कन्या की भांति होना चाहिए और उसकी शिक्षा भी उसी प्रकार होनी चाहिए।' गोविन्द स्वामी की इस पुत्री के अतिरिक्त उनका एक शिष्य ब्राह्मण-कुमार था। वह किसका पुत्र था, यह कोई नहीं जानता। सभी जानते थे कि गोविन्द स्वामी के किसी अतिप्रिय स्वजन का वह बालक है। गोविन्द स्वामी के पास वह बहुत छोटी अवस्था से था। उसका नाम वर्षकार था। वर्षकार और मातंगी साथ ही साथ बालकाल में रहे। गोविन्द स्वामी ने बालक वर्षकार को भी, जो उस समय ग्यारह वर्ष का था, सम्राट को सौंपकर कहा था—'यह मेरे एक अतिप्रिय आत्मीय का पुत्र है, इसके लक्षण राजपुरुषों के हैं और एक दिन यह बालक तुम्हारे साम्राज्य का कर्णधार होगा। इसकी शिक्षा-दीक्षा, देख-भाल सावधानी से करना और इसे मगध का महामात्य बनाना।' परन्तु गोविन्द स्वामी ने अत्यन्त सतर्कता से सम्राट से वचन ले लिया था कि वर्षकार और मातंगी दोनों ही अन्ततः इसी मठ में उस समय तक रहें, जब तक दोनों का विवाह उपयुक्त समय पर उपयुक्त पात्रों से न हो जाए। सम्राट के सन्देह करने पर गोविन्द स्वामी ने यह भी कह दिया था कि मातंगी के साथ कदापि वर्षकार का विवाह नहीं हो सकता। परन्तु मातंगी का विवाह उसके वयस्क होने पर उसकी स्वीकृति से ही किया जाना चाहिए।

गोविन्द स्वामी मर गए और सम्राट ने भृत्यों और उपाध्यायों की व्यवस्था करके वर्षकार और मातंगी की शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया। इस बालक वर्षकार के सम्बन्ध में केवल एक पागल अपवाद करता सुना गया था। वह कभी राजगृह में दिखाई दे जाता और पुकार-पुकार-कर कहता—'देखो, देखो इस पाखण्डी गोविन्द स्वामी को—इस बालक का मुंह इससे कितना मिलता है!' इसपर बहुत लोग सन्देह करने लगे थे कि हो न हो, इस पागल से इस बालक का कुछ सम्बन्ध अवश्य है। एक बार तो यह अपवाद इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि इसी पागल की परिणीता पत्नी से गोविन्द स्वामी ने जार करके यह पुत्र उत्पन्न किया है। इसपर क्रुद्ध होकर उसने पत्नी को मार डाला है और स्वयं पागल हो गया है। जो हो, सत्य बात कोई नहीं जानता था। मरने के समय जो गोविन्द स्वामी ने मातंगी से वर्षकार के विवाह का निषेध किया—इससे लोगों में यह शंका और घर कर गई। परन्तु गोविन्द स्वामी ने सम्राट से अति गोपनीय रीति से यह बात कही थी, इससे वह बालक-बालिका दोनों ने सुनी भी नहीं। वही आठ वर्ष की बालिका मातंगी और ग्यारह वर्ष का बालक वर्षकार बाललीला समाप्त कर किशोर हुए और यौवन के प्रांगण में आ पहुंचे। युवक वर्षकार की तीक्ष्ण बुद्धि, प्रबल धारणा और बलिष्ठ देह, शस्त्र और शास्त्र में उसकी एकनिष्ठ सत्ता देखकर सभी उसका आदर करते थे। सम्राट उसे पुत्रवत् समझते और राजवर्गी लोग उसकी अभ्यर्थना करते। युवराज बिम्बिसार उसके अन्तरंग मित्र हो गए थे। दोनों बहुधा अश्व पर आखेट के लिए जाते तथा भांति-भांति की क्रीड़ा करते। परन्तु उधर भीतर ही भीतर अनंग रंग जमा रहा था। देवी मातंगी का यौवन विकास पा रहा था और दोनों बालसखा परस्पर दूसरे ही भाव से एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हो रहे थे। यह देखकर सम्राट की चिन्ता बढ़ गई। परन्तु उसने युवक-युवती से कुछ कहना ठीक नहीं समझा। केवल वर्षकार को राजकाज सीखने के बहाने मठ से हटाकर राजमहालय में बुलाकर रख लिया। वर्षकार महालय में रहने लगे। परन्तु इससे दोनों ही प्राणी वियोग-विदग्ध रहने लगे। देवी मातंगी का रूप-यौवन असाधारण था। निराभरणा तापसी के वेश में उसका शरीर तप्त कांचन की भांति दमकता था। युवराज बिम्बिसार भी उसपर मन ही मन विमोहित हो, मठ में अधिक आने-जाने लगे थे। परन्तु शीघ्र ही वर्षकार ने ये आंखें ताड़ लीं और एक बार उन्होंने खड्ग नंगा करके कहा—'वयस्य युवराज, मगध

१२. आर्या मातंगी

नगर के बाहर एक बहुत पुराना सूना मठ था। वह मठ गोविन्द स्वामी के मठ के नाम से प्रसिद्ध था। गोविन्द स्वामी वेदपाठी ब्राह्मण थे और उनके तप और दिव्यज्ञान की बहुत गाथाएं राजगृह में प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि वर्तमान सम्राट बिम्बिसार के पिता को इन्हीं गोविन्द स्वामी ने अश्वमेध यज्ञ कराकर सम्राट की उपाधि दी थी। सम्राट के पिता गोविन्द स्वामी की बहुत पूजा-अर्चना तथा सम्मान करते थे। वे सदैव पांव-प्यादे उनसे मिलने जाते थे। उन्हींके जीवन-काल में गोविन्द स्वामी की मृत्यु हुई। उस समय उन्होंने एक अबोध आठ वर्ष की बालिका अपने पीछे छोड़ी। उसे सम्राट के हाथ में सौंपकर कहा—'सम्राट इसकी रक्षा का भार लें', और सम्राट ने कहा था—'मेरे पुत्र बिम्बिसार के बाद यही कन्या मेरी पुत्री है। राजपुत्री की भांति ही इसका लालन-पालन होगा।' परन्तु गोविन्द स्वामी ने कहा—'नहीं, नहीं, सम्राट! मातंगी का लालन-पालन ब्राह्मण-कन्या की भांति होना चाहिए और उसकी शिक्षा भी उसी प्रकार होनी चाहिए।' गोविन्द स्वामी की इस पुत्री के अतिरिक्त उनका एक शिष्य ब्राह्मण-कुमार था। वह किसका पुत्र था, यह कोई नहीं जानता। सभी जानते थे कि गोविन्द स्वामी के किसी अतिप्रिय स्वजन का वह बालक है। गोविन्द स्वामी के पास वह बहुत छोटी अवस्था से था। उसका नाम वर्षकार था। वर्षकार और मातंगी साथ ही साथ बालकाल में रहे। गोविन्द स्वामी ने बालक वर्षकार को भी, जो उस समय ग्यारह वर्ष का था, सम्राट को सौंपकर कहा था—'यह मेरे एक अतिप्रिय आत्मीय का पुत्र है, इसके लक्षण राजपुरुषों के हैं और एक दिन यह बालक तुम्हारे साम्राज्य का कर्णधार होगा। इसकी शिक्षा-दीक्षा, देख-भाल सावधानी से करना और इसे मगध का महामात्य बनाना।' परन्तु गोविन्द स्वामी ने अत्यन्त सतर्कता से सम्राट से वचन ले लिया था कि वर्षकार और मातंगी दोनों ही अन्ततः इसी मठ में उस समय तक रहें, जब तक दोनों का विवाह उपयुक्त समय पर उपयुक्त पात्रों से न हो जाए। सम्राट के सन्देह करने पर गोविन्द स्वामी ने यह भी कह दिया था कि मातंगी के साथ कदापि वर्षकार का विवाह नहीं हो सकता। परन्तु मातंगी का विवाह उसके वयस्क होने पर उसकी स्वीकृति से ही किया जाना चाहिए।

गोविन्द स्वामी मर गए और सम्राट ने भृत्यों और उपाध्यायों की व्यवस्था करके वर्षकार और मातंगी की शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया। इस बालक वर्षकार के सम्बन्ध में केवल एक पागल अपवाद करता सुना गया था। वह कभी राजगृह में दिखाई दे जाता और पुकार-पुकारकर कहता—'देखो, देखो इस पाखण्डी गोविन्द स्वामी को—इस बालक का मुंह इससे कितना मिलता है!' इसपर बहुत लोग सन्देह करने लगे थे कि हो न हो, इस पागल से इस बालक का कुछ सम्बन्ध अवश्य है। एक बार तो यह अपवाद इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि इसी पागल की परिणीता पत्नी से गोविन्द स्वामी ने जार करके यह पुत्र उत्पन्न किया है। इसपर क्रुद्ध होकर उसने पत्नी को मार डाला है और स्वयं पागल हो गया है। जो हो, सत्य बात कोई नहीं जानता था। मरने के समय जो गोविन्द स्वामी ने मातंगी से वर्षकार के विवाह का निषेध किया—इससे लोगों में यह शंका और घर कर गई। परन्तु गोविन्द स्वामी ने सम्राट से अति गोपनीय रीति से यह बात कही थी, इससे वह बालक-बालिका दोनों ने सुनी भी नहीं। वही आठ वर्ष की बालिका मातंगी और ग्यारह वर्ष का बालक वर्षकार बाललीला समाप्त कर किशोर हुए और यौवन के प्रांगण में आ पहुंचे। युवक वर्षकार की तीक्ष्ण बुद्धि, प्रबल धारणा और बलिष्ठ देह, शस्त्र और शास्त्र में उसकी एकनिष्ठ सत्ता देखकर सभी उसका आदर करते थे। सम्राट उसे पुत्रवत् समझते और राजवर्गी लोग उसकी अभ्यर्थना करते। युवराज बिम्बिसार उसके अन्तरंग मित्र हो गए थे। दोनों बहुधा अश्व पर आखेट के लिए जाते तथा भांति-भांति की क्रीड़ा करते। परन्तु उधर भीतर ही भीतर अनंग रंग जमा रहा था। देवी मातंगी का यौवन विकास पा रहा था और दोनों बालसखा परस्पर दूसरे ही भाव से एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हो रहे थे। यह देखकर सम्राट की चिन्ता बढ़ गई। परन्तु उसने युवक-युवती से कुछ कहना ठीक नहीं समझा। केवल वर्षकार को राजकाज सीखने के बहाने मठ से हटाकर राजमहालय में बुलाकर रख लिया। वर्षकार महालय में रहने लगे। परन्तु इससे दोनों ही प्राणी वियोग-विदग्ध रहने लगे। देवी मातंगी का रूप-यौवन असाधारण था। निराभरणा तापसी के वेश में उसका शरीर तप्त कांचन की भांति दमकता था। युवराज बिम्बिसार भी उसपर मन ही मन विमोहित हो, मठ में अधिक आने-जाने लगे थे। परन्तु शीघ्र ही वर्षकार ने ये आंखें ताड़ लीं और एक बार उन्होंने खड्ग नंगा करके कहा—'वयस्य युवराज, मगध

का सम्पूर्ण साम्राज्य तुम्हारा है, केवल मातंगी मेरी है। इसपर दृष्टि मत देना, नहीं तो मेरे-तुम्हारे बीच यह खड्ग है।' बिम्बिसार ने हंसकर और मित्र का हाथ पकड़कर कहा—'नहीं मित्र, मातंगी तुम्हारी ही रहे। चिन्ता न करो।' पीछे जब वर्षकार को सम्राट ने राजमहालय में बुलाकर रखा, तो युवराज को मातंगी के एकान्त साहचर्य का अधिक अवसर मिल गया। उनके ही अनुग्रह से वर्षकार भी अत्यन्त गुप्तभाव से मातंगी से मिलते रहते थे।

अकस्मात् मातंगी ने देखा कि वह गर्भवती है। वह अत्यन्त भयभीत हो गई। परन्तु गर्भ युवराज और वर्षकार दोनों में से किसके औरस से था, मातंगी ने यह भेद दोनों पर प्रकट नहीं किया। वर्षकार और युवराज दोनों ने मिलकर इस अवस्था को सम्राट से छिपा लिया और जब शिशु का जन्म हुआ तो वर्षकार ने हठ करके दासी को उसे कूड़े के ढेर में फेंक आने को कहा। उसे संदेह था कि वह उसका पुत्र नहीं है। मातंगी ने बहुत निषेध किया, रोई-पीटी, पर वर्षकार ने एक न सुनी। दासी एक सूप में नवजात शिशु को लेकर कूड़े पर फेंक आई। दैवयोग से उधर ही से राजगृह के महावैज्ञानिक सिद्ध शाम्बव्य काश्यप जा रहे थे। घूरे पर एक लाल वस्त्र में लपेटी कोई वस्तु पड़ी देख निकट आकर देखा, एक सद्योजात शिशु मुंह में अंगूठा डालकर चूस रहा है। आचार्य ने शिशु को उठा लिया और उत्तरीय से ढांपकर अपने मठ में ले आए तथा लालन-पालन करने लगे। उन्हें शीघ्र ही यह भी पता लग गया कि वह आर्या मातंगी का पुत्र है। उन्होंने उनपर और युवराज पर यह बात प्रकट भी कर दी। युवराज भयभीत हुए, परन्तु आचार्य ने आश्वासन दिलाया कि चिन्ता न करो, वे यह भेद नहीं खोलेंगे। बालक का भी अनिष्ट न होगा। युवराज बिम्बिसार ने आचार्य को बहुत-सा स्वर्ण देकर सन्तुष्ट कर दिया। परन्तु वर्षकार के इस ईर्ष्यापूर्ण क्रूर कृत्य से मातंगी का हृदय फट गया। उसकी कोमल भावनाओं पर बड़ा आघात हुआ और वह एकान्त में उदासीन भाव से रहने लगी। युवराज भी वर्षकार से भयभीत रहने लगे, क्योंकि उसे युवराज पर भी पूरा सन्देह था। इसी बीच सम्राट की मृत्यु हो गई। मरने के समय उन्होंने युवराज बिम्बिसार और वर्षकार को मृत्युशय्या के निकट बुलाकर दो बातें कहीं। एक यह कि वर्षकार बिम्बसार के महामात्य होंगे। दूसरे, अपने राज्य के तीसरे वर्ष बिम्बिसार देवी मातंगी का उनकी पसन्द के वर से विवाह करके उन्हें आजीविका को अस्सी ग्राम दे दें।

साथ ही एक पत्र गुप्तभाव से युवराज को देकर कहा—इसे तुम अपने राज्यारोहण के तीन वर्ष बाद खोलना। तब मातंगी का विवाह करना।

सम्राट मर गए। बिम्बिसार सम्राट और वर्षकार उनके महामात्य हुए। वर्षकार अब खुल्लमखुल्ला मठ में जाकर देवी मातंगी से मिलने लगे। मातंगी ने वर्षकार से विवाह करने का आग्रह किया, परन्तु वर्षकार ने कहा—'स्वर्गीय सम्राट ने हमारे पूज्य पिता गोविन्द स्वामी के आदेश से यह व्यवस्था की है कि सम्राट बिम्बिसार अपने राज्यारोहण के तीसरे वर्ष विवाह-व्यवस्था करेंगे।' मातंगी मन मारकर रहने लगी, परन्तु उसका चित्त उचाट रहने लगा। तीन वर्ष बीत गए और अपने राज्यारोहण की तीसरी वर्षगांठ के दिन सम्राट ने वह गुप्त पत्र खोला। उसमें लिखा था कि मातंगी वर्षकार की भगिनी है। उन दोनों का परस्पर विवाह नहीं हो सकता।

वर्षकार और बिम्बिसार दोनों ही भीत-चकित रह गए। भय का सबसे बड़ा कारण यह था कि मातंगी इस समय फिर गर्भवती थी और यह स्पष्ट था कि यह गर्भ वर्षकार का था। अतः इस दारुण और हृदय-विदारक समाचार को उन्हें सुनाना सम्राट ने ठीक नहीं समझा और उन्हें समझा-बुझाकर जलवायु-परिवर्तन के लिए वैशाली भेज दिया। कुछ दिन बाद एक कन्या को गुप्त रूप से जन्म देकर और स्वस्थ होकर मातंगी राजगृह में आईं और तभी उन्हें सत्य बात का पता चला। सुनकर वे एकबारगी ही विक्षिप्त हो गईं। उन्होंने मठ के सभी राजसेवकों को पृथक् कर दिया और कठोर एकान्तवास ग्रहण किया। वर्षकार का मठ में आना निषिद्ध करार दे दिया गया। सम्राट बिम्बिसार से मिलने से भी उन्होंने इन्कार कर दिया, तथा अपने विवाह से भी। तब से किसीने भी देवी मातंगी के दर्शन नहीं किए, किसीने भी उन्हें नहीं देखा, तथापि उनका नाम अब भी राजगृह में आर्या मातंगी के नाम से घर-घर सम्मान के साथ लिया जाता था। वे एक पूर्ण ब्रह्मचारिणी तपस्विनी सिद्ध थीं।

वर्षकार ने भी ग्लानि के मारे विवाह नहीं किया। आज आर्य वर्षकार की आयु साठ वर्ष की हो गई, तथा देवी मातंगी भी पचास को पार कर चुकीं। वर्षकार का तेज प्रताप दिगन्त में व्याप्त हो गया। मगध के प्रतापी महामात्य और विश्व के अप्रतिम राजनीति-विशारद सिद्ध हुए। साथ ही किसीने उनके अखण्ड ब्रह्मचर्य पर भी सन्देह नहीं किया। देवी मातंगी के साथ उनके तथा सम्राट के सम्बन्ध की बात

तथा उनके एक पुत्र और एक पुत्री की गुप्त जन्मकथा आचार्य शाम्ब
काश्यप को छोड़कर और कोई जानता भी नहीं। सोमप्रभ मातंगी
गर्भ से जन्मे अवैध पुत्र हैं, यह बात आचार्य काश्यप, सम्राट औ
स्वयं वे ही जानते हैं। परन्तु वे सम्राट के पुत्र हैं या वर्षकार के, य
केवल मातंगी ही जानती हैं। मातंगी की पुत्री कौन है, कहां है, यह बा
एकमात्र आर्य वर्षकार ही जानते हैं, दूसरे नहीं।

सोमप्रभ ज्योंही मठ के द्वार को पार कर भीतर जाने लगे, उन्हों
देखा, एक वृद्धा स्त्री जल का घड़ा लिए आ रही है। उसने युवक
देखकर आश्चर्यचकित होकर कहा—"तुम कौन हो और यहां कैसे च
आए ? क्या तुम नहीं जानते, आर्या मातंगी की आज्ञा से यहां किसी
मनुष्य का आना निषिद्ध है ?"

"जानता हूं, भद्रे, परन्तु मैं आचार्यपाद काश्यप की आज्ञा से आ
हूं, मेरा नाम ···।"

दासी ने अवाक् होकर क्षण-भर युवक को देखा, फिर उसने भ
भीत दृष्टि से युवक को देखकर कहा—"आचार्य काश्यप ने !
ठहरो भद्र, मैं देवी से जाकर निवेदन कर दूं।" वह विना ही उत्तर
प्रतीक्षा किए चली गई।

सोमप्रभ एक शिलाखण्ड पर बैठकर कुछ सोचने लगे। वे स
रहे थे—यह कैसा रहस्य है ?

कुछ क्षणों बाद ही दासी ने आकर कहा—"आर्या तुमसे
करेंगी, मेरे साथ आओ।" सोमप्रभ धीरे-धीरे वृद्धा के पीछे-पीछे च
सामने एक स्वच्छ छोटा-सा कुटीर था, उसीमे एक चटाई पर अ
मातंगी अधोमुखी बैठी थीं। पदशब्द सुनते ही उन्होंने आंख उठ
देखा। उनके होंठ कंपित हुए। उन्होंने दोनों हाथों से आंखों की
पोंछी, फिर अस्फुट स्वर से आप ही आप कहा—"कौन हो तुम,
···वही हो, वही, पहचानती हूं मेरे बच्चे।" और वे उसी प्रकार
की ओर दौड़ीं, जैसे गाय बछड़े की ओर दौड़ती है। उन्होंने युवक
छाती से लगा लिया। उनकी आंखों से अविरल अश्रुधारा बह चलं

सोमप्रभ हतप्रभ होकर विमूढ़ हो गए। एक अचिन्तनीय आ
ने उनके नेत्रों को भी प्लावित कर दिया। उन्होंने प्रकृतिस्थ ह
कहा—"आर्या मातंगी, अकिंचन सोम आपका अभिवादन करता

"नहीं, नहीं, आर्या मातंगी नहीं, मां कहो वत्स !"

सोमप्रभ ने अटकते हुए कहा—"किन्तु आर्ये···"

"मां कहो वत्स, मां कहो।"

"आर्ये, हतभाग्य सोम अज्ञात कुलशील, अज्ञात कुलगोत्र है। कल्याणी मातंगी उसे इतना गौरव क्यों दे रही हैं ?"

"मां कहो, प्रिय, मां कहो। जीवन के इस छोर से उस छोर तक मैं यह शब्द सुनने को तरस रही हूं।" मातंगी के स्वर, भावभंगी और करुण वाणी से विवश हो अनायास ही बरबस सोम के मुंह से निकल गया—"मां···"

'आप्यायित हो गई मैं, मरकर जी गई मैं, वत्स सोम ! अभी और कुछ देर हृदय से लगे रहो। अरे, मैंने चौबीस वर्ष तुम्हारी प्रतीक्षा की है भद्र !"

"किन्तु आर्ये··"

"मैं कौन हूं, यही जानना चाहते हो ? बच्चे, मैं अभागिनी तुम्हारी मां हूं।"

"आप, आर्ये मातंगी ? देवपूजित द्विज गोविन्द स्वामी की महाभागा पुत्री, देवी मातंगी मुझ भाग्यहीन की मां हैं ?"

"निश्चय वत्स, यह ध्रुव सत्य है, क्या आचार्य ने कहा नहीं ?"

"नहीं, उन्होंने केवल इतना ही कहा था कि देवी के दर्शन करना अवश्य।"

"अभी मुहूर्त-भर पहले उन्होंने मुझे संदेश भेजा था कि तुम्हारा पुत्र आया है। वह तुमसे मिलने आ रहा है। सो सोम, तनिक मैं तुम्हें देखूं। मेरे सामने खड़े तो हो जाओ प्रिय !" और मातंगी अबोध बालक के समान सोम के सम्पूर्ण शरीर पर हाथ फेरने लगीं।

सोम ने धीरे-धीरे झुककर मस्तक मां के चरणों में टेककर कहा—"मां, आज मैं सनाथ हुआ। परन्तु मुझे अधिक समय नहीं है, मुझे एक दुरूह यात्रा करनी है। इतना बता दो, मेरे पिता कौन हैं ?"

"पिता ?" मातंगी के होंठ भय से सफेद हो गए और उनका चेहरा पत्थर की भांति भावहीन हो गया। उन्होंने डूबती वाणी से कहा—"पुत्र, उनका नाम लेना निषिद्ध है।"

"क्यों, मां ?"

"क्या तुमने मेरे आजन्म एकांतवास को नहीं सुना ?"

"सुन चुका हूं आर्ये !"

"तो बस, यही यथेष्ट है।"

"मैं क्या उनके विषय में कुछ भी नहीं जान सकता ?"
"क्या जानना चाहते हो, वत्स ?"
"उनकी पद-मर्यादा।"
"वे विश्वविश्रुत विभूति के अधिकारी हैं।"
"जीवित हैं ?"
"हां।"
"तो अभी यही यथेष्ट है, मां, शेष सब मैं अपने कौशल से ज
लूंगा।"
"परन्तु पुत्र, मेरा आदेश मानना। इधर उद्योग मत करना, इ
तुम्हारा अनिष्ट होगा।"
"माता की जैसी आज्ञा, पर अब मैं जाऊंगा, आर्ये !"
"क्या इतनी जल्दी, भद्र ! अभी तो मैंने तुम्हें देखा भी नहीं।"
"शीघ्र ही मैं लौटूंगा, आर्ये !"
"अभी कुछ दिन रहो, पुत्र !"
"नहीं रह सकता, आदेश है।"
"किसका, भद्र ?"
"आर्य दर्षकार का।"
मातंगी चौंककर दो कदम हट गईं। उन्होंने कहा—"अच
अच्छा, समझी। तो तुम वहां तक पहुंच चुके !"
"आर्ये, आज प्रातः ही मुझे उनका दर्शनलाभ हुआ।"
"तो अब कहां जा रहे हो, भद्र ?"
"चम्पा।"
"एकाकी ही ?"
"नहीं, भगिनी भी है मां। आप तो जानती हैं, मेरी एक भ
भी है।"
मातंगी ने कांपकर कहा—"किसने कहा, भद्र ?"
"आचार्यपाद ने।"
"कौन है वह ?"
"कुण्डनी।"
"कुण्डनी ? सर्वनाश ! तुम उसके साथ जा रहे हो पुत्र, ऐसा
हो सकेगा।"
"क्यों मां, क्या बात है ?"
"नहीं, वह मैं नहीं कह सकूंगी, कहते ही शिरच्छेद होगा।

तुझे कुण्डनी के साथ जाने को कहा है ?"

"आर्य वर्षकार ने ।"

"इन्कार कर दो। कह दो, देवी मातंगी की आज्ञा है ।"

"आपकी आज्ञा क्या मगध-महामात्य वर्षकार सुनेंगे ?"

"उन्हें सुननी होगी। नहीं तो मैं स्वयं आज अट्ठाईस वर्ष बाद पुष्करिणी के उस पार…"

"देवी मातंगी !" सामने से किसीने पुकारा। दोनों ने देखा, आचार्य काश्यप हैं । उन्होंने कहा—"कोई भय नहीं है, देवी मातंगी ! उसे जाने दो ।"

"तुमने आचार्य, उसे कुण्डनी के सुपुर्द किया है ?"

"नहीं, मातंगी आर्ये, कुण्डनी राजकार्य से केवल उनकी सुरक्षा में चम्पा जा रही है ।"

"सोम क्या जानता है कि कुण्डनी कौन है ?"

"वह जानता है कि वह उसकी भगिनी है ।"

"यह क्या यथेष्ट है ?"

"है, आप निश्चिन्त रहिए ।" फिर उन्होंने घूमकर कहा—"जाओ सोम, विलम्ब मत करो ।"

आर्या ने आकुल नेत्रों से पुत्र को देखकर कहा :

"एक क्षण ठहरो, क्या तुमने महामात्य से कुछ प्रतिज्ञा भी की है ?"

"की है, आर्ये !"

"कैसी ?"

"एकनिष्ठ रहने की ।"

"किसके प्रति ?"

"साम्राज्य के ।"

"और ?"

"मगध-महामात्य के ।"

"और ?"

"और किसीके प्रति नहीं ।"

"और किसीके प्रति नहीं ?"

"नहीं ।"

"सम्राट के प्रति नहीं ?"

"नहीं ।"

आर्या के नेत्रों में भय की भावना दौड़ गई, उनके होंठ कांपे। आचार्य के रूखे होंठों पर मुस्कान फैल गई। उन्होंने आगे बढ़कर कहा, "बस, अब और अधिक नहीं, देवी मातंगी, किसी अनिष्ट की आशंका न करें। जाओ तुम सोमप्रभ !"

१३. महामिलन

अम्बपाली अपने उपवन के लताकुंज में बैठी गहन चिन्तन में व्यस्त थी। वह सोच रही थी जीवन के तत्त्व को। सप्तभूमि प्रासाद में आकर, वहां की अतुल सम्पदा, कोमल सुख-साधन, सान्ध्यवेला में आनेवाले कामुक तरुणों के गर्मागर्म प्रेम-सम्भाषण, उनके प्रति अपने अनुराग का प्रदर्शन, हर्षदेव का प्रेमोन्माद और अपने पूर्ण जीवन का सम्पूर्ण वैशाली के प्रति विद्रोह। वह प्रत्यक्ष देख रही थी कि प्रारम्भ में जिस सुख-सज्जा को तुच्छ समझा था, वह उसके जीवन की अब अनिवार्य सामग्री हो गई है। उसके रूप की दोपहरी खिली थी और इसी अल्पकाल में उसके तेज, माधुर्य, विलास और अलौकिक बुद्धि-वैचित्र्य की कहानियां देश-देशांतरों में फैल चुकी थीं। उसकी आंखों के सामने अब अपने बाल्य-काल का वह चित्र कभी-कभी आ जाता था, जब वह एक साधारण कंचुक के लिए रोई थी। वह अपने पिता के अकपट स्नेह की याद कर बहुधा आंसू बहाती। परन्तु आज उसके अंग यौवन के अमृत से स्नात होकर ऐसी सुषमा बिखेर रहे थे कि बूढ़े और युवा, नगर के चौकीदार, चाण्डाल और कर्मकर से लेकर परिषद् के सम्भ्रांत सदस्य, तरुण सामन्तपुत्र और सेट्ठिपुत्र, नागरिक, देश-देशान्तर के श्रीमन्त, नरपति और सम्राट जिसे एक आंख देखने-भर के लिए प्राण न्योछावर करने को तैयार थे।

उसके यहां ओझे, सयाने, तांत्रिक बहुधा आते, भविष्य-वर्णन करते। वह स्वयं कभी-कभी प्रसिद्ध सिद्धों से मिलने, भविष्य पूछने जाती। बहुत लोग उससे कहते—जीवन का उद्देश्य सुख-भोग है। आओ जीवन की बहार लूटें। इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होनेवाली ज्ञान-अनुभूति ही सत्य है और सब असत्य है, मिथ्या है। परन्तु इन विचारों से, ऐसे लोगों से वह शीघ्र ही ऊब जाती। उनका तिरस्कार कर बैठती। जीवन के रहस्यों को समझने के लिए उसने दर्शनों और उसके तत्त्वों का अध्ययन किया था, पर उनसे उसे शांति नहीं मिली थी। उसका सब

प्रिय विषय उसकी बाल्यावस्था की स्मृति थी, जो दिन-दिन उससे दूर होती जाती थी और अब सत्य यह था कि उसके अधर धधकती अग्नि के समान दाहक और मधु से मधुर थे। इन्हीं सब बातों पर विचार करते-करते वह कभी-कभी उत्तेजित होकर चिल्लाने लगती—'नहीं, नहीं, मैं किसीसे प्रेम नहीं करती, नहीं कर सकती, किसी व्यक्ति से भी नहीं। मैं उन सबसे घृणा करती हूं जो आनन्दभोगी हैं। यह सप्त-भूमि प्रासाद मेरे जीवन पर बोझ है। ये सांध्यमित्र मेरे हृदय पर रेंगने-वाले घृणित कीट हैं।' वह उनके स्त्रैण चरित्र और स्त्रैण वेशभूषा को स्मरण कर घृणा से होंठ सिकोड़ लेती, आंखें बन्द कर लेती।

एकाएक आंख खुलने पर उसने देखा—उस सुरक्षित लताकुंज में एक प्रभावशाली पुरुष उसके सम्मुख खड़ा है। उसकी अवस्था तरुणाई का उल्लंघन करने लगी है—परन्तु उसका गौर वर्ण, तेजस्वी मुख सूर्य के समान देदीप्यमान है। उसके बड़े-बड़े काले चमकीले नेत्रों और उत्फुल्ल सरस ओष्ठों से आनन्द, विलास और प्रेम की अटूट धारा प्रवाहित हो रही है। उसके एक हाथ में महार्घ अप्रतिम वीणा है। अम्बपाली हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। उसने आश्चर्यचकित होकर उस पुरुषपुंगव की ओर देखा। अनायास ही उसपर उस पुरुष का प्रभाव छा गया। वह अम्बपाली, जो आज तक किसी पुरुष से प्रभावित नहीं हुई थी, इस पुरुष को देखकर क्षण-भर जड़-स्तम्भित रह गई। पुरुष ने ही पहले कहा:

"जनपद कल्याणी देवी अम्बपाली प्रसन्न हों। क्या मैंने तुम्हारे इस एकांत विश्राम में व्याघात करके तुम्हें रुष्ट कर दिया है?"

"नहीं, नहीं। परन्तु आप, भन्ते, यहां इस सुरक्षित कोष्ठ में बिना अनुमति आ कैसे पहुंचे? क्या प्रहरी सो गए हैं? या आपने उन्हें अपनी माया से विमोहित कर दिया है?"

पुरुष ने हंसकर कहा—"नहीं, कल्याणी, मैं अदृश्य होकर आकाश-मार्ग से आया हूं। बेचारे प्रहरी मुझे देख नहीं सके।"

अम्बपाली आश्चर्य-मूढ़ होकर बोली—"किन्तु आप हैं कौन, भन्ते? क्या आप गन्धर्व हैं?"

"नहीं भद्रे, मैं मनुष्य हूं।"

"परन्तु आपका ऐसा आगमन?"

"मुझे सिद्धियां प्राप्त हैं। मैं लोपांजन विद्या और खेचर विद्या जानता हूं।"

अम्बपाली खड़ी हो गई। उसने पूछा—"आप साधारण पुरु नहीं हैं, महानुभाव! आप क्या कोई देव, दानव, यक्ष मुझे ठगने आ हैं ?"

"नहीं जनपद कल्याणी, मैंने तुम्हारे अप्रतिम रूप-लावण्य, असह तेज, दर्प और लोकोत्तर प्रतिभा की चर्चा अपने देश में सुनी थी। इसी से, केवल तुम्हें देखने मैं बहुत दूर से छद्मवेश में आया हूं। अब मैं जाना कि सुनी हुई बातों से भी प्रत्यक्ष बहुत बढ़कर है। तुम-सी रूपसं बाला कदाचित् विश्व में दूसरी नहीं है।" अम्बपाली का कौतूहल कु कम हो गया था और उसका साहस लौट आया था। उसने अपने रू लावण्य की प्रशंसा सुन कहा—"भन्ते, औरों की प्रशंसा करने औ अपना गुप्त प्रेम-प्रदर्शन करने में आप वैसे ही कुशल हैं, जैसे अदृश्य र से आकाश-मार्ग द्वारा किसी स्त्री के एकांत-आवास में पहुंच जाने में किन्तु..."

"किन्तु भद्रे अम्बपाली, मेरे हृदय में तुम्हारा असाधारण प्रेम ब पहले घर कर गया था। तुम मुझे जीवन और आत्मा से भी अधि प्रिय हो।"

"भन्ते, ज़रा संभलकर इस प्रेममार्ग पर कदम रखिए। कदारि वहां आपकी खेचर सिद्धि और लोपांजन माया काम न दे सकेंगी।"

"भद्रे, प्रेम के सत्यमार्ग में सारी ही सिद्धियां तुच्छ हैं। कि मेरा प्रेम वासना की आग में जलता हुआ नहीं है। मैं तुम्हें फूलों सुवासित मदिरा की अपेक्षा अधिक नित्य, अमर और अखण्ड समझ हूं, देवी अम्बपाली!"

"ओह, तो भन्ते! आपका यह प्रेम कुछ अलौकिक-सा प्रतीत हो है।" अम्बपाली ने मुस्कराकर कहा—"आपकी बातें दार्शनिकों जै हैं; किन्तु भन्ते, प्रेम का रहस्य दार्शनिकों की अपेक्षा प्रेमीजन ही अधि जानते हैं।"

"वैशाली की जनपद कल्याणी देवी अम्बपाली से मैं ऐसे ही प्र त्तर की आशा करता था। परन्तु भद्रे, तुम्हें वशीभूत करने की और वस्तु मेरे पास है।"

"वह क्या, भन्ते ?"

भद्रपुरुष ने महार्घ वीणा का आवरण उठाया। उसपर आश्च जनक हाथीदांत का काम हो रहा था और वह दिव्यवीणा साधा वीणाओं से अद्भुत थी। अम्बपाली ने आश्चर्यचकित होकर कहा

"निश्चय यह वीणा अद्‌भुत है। परन्तु भन्ते, आप मेरा मूल्य इससे आंकने का दुस्साहस मत कीजिए।"

"इसका तो अभी फैसला होगा, जब इस वीणावादन के साथ देवी अम्बपाली को अवश नृत्य करना होगा।"

"अवश नृत्य ?"

"निश्चय।"

"असम्भव।"

"निश्चय।"

आगन्तुक रहस्यमय पुरुष वहीं श्वेत मरमर की पीठ पर बैठ गए। उन्होंने वीणा को झंकृत किया। अम्बपाली मूढ़वत्‌ बैठी रही। एक ग्राम, दो ग्राम पर जब उस आश्चर्यपुरुष की उंगलियां नृत्य करने लगीं और वातावरण में वीणा का स्वर भर गया—तो अम्बपाली जैसे मस्त होने लगी। उसे अपने चारों ओर एक मूर्तिमान संगीत, एक प्रिय सुख-स्पर्शी घोष, एक सुषमा से ओतप्रोत वातावरण प्रतीत होने लगा।

वीणा बज रही थी। उसकी गति तीव्र से तीव्रतर होती जा रही थी। अम्बपाली को ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो तन्तुवाद्य के कम्पन से जो स्वरलहरी उत्पन्न हो रही है, वह उसके चर्मकूपों को भेदकर उसके रक्त में प्रविष्ट हो रक्त को उत्तप्त कर रही है। उसका मुंह लाल हो गया, नेत्रों में मद छा गया, गात्र कांपने लगा। वह अपनी सम्पूर्ण सावधानता से उस पुरुषपुंगव के असाधारण वीणावादन को विस्फारित नेत्रों से देखती रही।

एकाएक ही वादक ने उंगलियों की गति में हेरफेर किया और तब अम्बपाली ने मूढ़ होकर देखा—वीणा एक ही काल में तीन ग्रामों में बज रही है। ऐसा तो न देखा, न सुना था। कुछ ही क्षणों में अम्ब-पाली विवश हो गई। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उसके शरीर में रक्त के स्थान पर जलती हुई मदिरा बह रही है और अब वह स्थिर नहीं रह सकती। वह टकटकी बांधकर वीणा पर विद्युत्‌-वेग से थिर-कती उंगलियों को देखते-देखते अचेत-सी हो गई। अब उसे ऐसा प्रतीत हुआ, उसका मृदुल गात्र ही वीणा के रूप में झंकृत हो रहा है। उसी अचेतावस्था में उसने उठकर नृत्य करना आरम्भ कर दिया। पहले मन्द, फिर तीव्र, फिर तीव्रतर और अब उन उंगलियों में और उन चरणों में प्रगति की होड़ बदी थी। नृत्य और वादन एकीभूत हो गया था। वादक की उंगलियां और नर्तकी के चरणचाप एक मूर्त हो

गए थे। कौन नृत्य कर रहा है, कौन वीणावादन और कौन उस अलौकिक दृश्य को देख-सुन रहा है, यह नहीं कहा जा सकता था। धीरे-धीरे अम्बपाली अवश होने लगी और वादक की उंगलियां भी विराम पर आने लगीं। अम्बपाली धीरे से एक लतागुल्म पर झुक गई और महापुरुष ने महार्घ वीणा रखकर उसे हाथों ही में उठाकर श्वेत मरमर की पीठिका पर लिटा दिया।

धीरे-धीरे अम्बपाली ने आंखें खोलीं। आगन्तुक महापुरुष ने मुस्कराकर कहा—"देवी अम्बपाली की जय हो!"

"मैं परास्त हो गई, भन्ते!"

"भद्रे, प्रेम में जय-पराजय नहीं होती। वहां तो दो का भेद नष्ट होकर एकीकरण हो जाता है।"

"किन्तु, भन्ते, जो कुछ अनुभूति मुझे इस समय हुई, वह अभूतपूर्व है। क्या आप स्वयं गन्धर्वराज चित्ररथ अलकापुरी से मुझे कृतकृत्य करने पधारे हैं?"

"भद्रे, मैं उदयन हूं।"

'आप कौशाम्बीपति महाराज उदयन हैं? देव, अज्ञान में हुई मेरी अविनय को क्षमा करें।"

'सत्य प्रेम में अविनय-विनय नहीं होता है, भद्रे!"

"देव, कैसे तीन ग्रामों में एक ही काल में वीणावादन करने में समर्थ हैं? ऐसा त्रिलोकी में कोई पुरुष नहीं कर सकता है।"

"और न त्रिलोकी में कोई जीवधारी वैशाली की जनपद कल्याणी अम्बपाली के समान तीन ग्रामों की ताल पर नृत्य कर सकता है।"

"किन्तु देव, वह नृत्य मैंने अवश अवस्था में किया है। क्या अब मैं फिर वैसा ही नृत्य कर सकती हूं?"

'यदि फिर वैसा ही वीणावादन हो तो।"

"किन्तु, देव, इस वीणा से तो जड़-जंगम सभी अवश हो जाते हैं।"

"तुम्हारे अप्रतिम नृत्य से भी, कल्याणी!"

"तो देव, आपको छोड़कर और भी कोई मनुष्य इस प्रकार वीणावादन कर सकता है?"

"केवल गन्धर्वराज चित्ररथ, जिन्होंने यह वीणा अपनी सम्पूर्ण विद्या-सहित मुझे दी थी।"

"देव कौशाम्बीपति, क्या मैं फिर एक बार आपसे वैसे ही वीणा

वादन की प्रार्थना कर सकती हूं ?"

"नहीं, भद्रे, परन्तु अब तुम दिव्य नृत्य कभी न भूलोगी। जब भी तीन ग्राम में यह वीणा कोई बजाएगा, तुम ऐसा ही अलौकिक नृत्य कर सकोगी।"

"तो देव, आप क्या अपनी शिष्या अम्बपाली का आज आतिथ्य ग्रहण करेंगे ?"

"नहीं, भद्रे, मैं जैसे आया था, वैसे ही गुप्तभाव से चला जाऊंगा।"

"क्या अम्बपाली आपका कोई प्रिय कर सकती है ?"

"वह कर चुकी। मैं अपना प्राप्तव्य पा चुका।"

"किन्तु देव..."

"ओह भद्रे ! क्या मैंने नहीं कहा था कि मेरा प्रेम वासना की अग्नि से जलता हुआ नहीं है ? मैंने तुम्हें देखकर नेत्र सार्थक किए और तुम्हारा वह देवदुर्लभ नृत्य अपनी वीणाध्वनि के साथ अंगीभूत कर लिया।"

"देव कौशाम्बीपति, जब संपूर्ण जनपद मेरे चरणों में आंखें बिछाता है, लाखों प्राणधारी इन चरणों का चुम्बन करने को, प्राण भेंट देने को उत्सुक हैं, मेरी प्राप्ति के लिए जनपद में होड़, ईर्ष्या, निराशा और अभिलाषा का इतना संघर्ष हुआ है कि इसके बोझ से पर्वत भी धसक जाएगा, तब क्या मैं आपका कुछ प्रिय नहीं कर सकती ?"

"क्यों नहीं, भद्रे अम्बपाली ! यदि मेरा प्रिय करना चाहती हो, तो मेरी यह साधारण स्नेह-भेंट स्वीकार करो, जिसे एक बार तुम अस्वीकार कर चुकी हो।"

यह कहकर महाराज उदयन ने अपने कण्ठ से वह अलौकिक मोतियों की माला उतारकर अम्बपाली के गले में डाल दी।

अम्बपाली ने कहा—"अनुगृहीत हुई; किन्तु क्या मैं अपना कौतूहल निवेदन करूं ?"

"कहो, भद्रे !"

"क्या मुझ-सी कोई स्त्री आपने देखी है ?"

"देखी है, पर तुमसे श्रेष्ठ नहीं, कल्याणी !"

"कौन है वह ?"

"गान्धार-कन्या कलिंगसेना।"

"उसमें त्रुटि क्या है ?"

"तीन ग्रामों पर वह नृत्य नहीं कर सकती।"

"क्या वह देव के सान्निध्य में है ?"

"नहीं, भद्रे, मैं उसे प्राप्त करके भी प्राप्त न कर सका।"

"प्राप्त करके भी प्राप्त न कर सके ? देव···!"

"ऐसा ही हुआ, भद्रे।"

"कैसे देव, क्या देवी कलिंगसेना द्वितीय कामदेव के समान सुन्दर महाराज उदयन को प्यार नहीं कर सकी, या तक्षशिला के महाराज ने इन्द्र के मित्र वत्सनरेश सहस्रानीक के पुत्र को ही अयोग्य समझा, जिसके लिए देवराज इन्द्र अपना रथ भेजता था ?"

'ऐसा नहीं हुआ, भद्रे, इसमें कुछ कौतुक हुआ।"

"यदि देव कौतुक वर्णन करें तो अच्छा।"

"कहता हूं, सुनो ! विगलितयौवन कोसल-नरेश प्रसेनजित् ने गान्धारपति कलिंगसेन से उसे मांगा था। गान्धारपति राजतन्त्र के स्वार्थवश प्रसेनजित् को अप्रसन्न नहीं कर सकते थे। उन्होंने कोसलपति को कन्या देना स्वीकार कर लिया था। भाग्यविधि से कलिंगसेना की मित्रता मयासुर की कन्या सोमप्रभा से हो गई थी। उसीने सखी के कल्याण की कामना से उससे कहा था कि हेमन्त ऋतु की कमलिनी के समान तुम, उस चमेली के मुर्झाए हुए पुष्प प्रसेनजित् के योग्य नहीं हो। उसीने उससे मेरा सत्यासत्य वर्णन करके उसे मेरे प्रति आकर्षित कर दिया था। मुझे भी इसकी सूचना मिल चुकी थी। परन्तु देवी अम्बपाली, मैं अवन्तीनरेश चण्डमहासेन को अप्रसन्न नहीं कर सकता था, इसीसे गान्धारपति कलिंगसेन से मैंने उनकी दिव्य पुत्री नहीं मांगी।"

अम्बपाली ने हंसकर कहा—"देव को महादेवी वासवदत्ता का भी तो लिहाज़ करना उचित था, जिन्होंने शकुन्तला और उषा से भी बढ़कर साहस किया है। परन्तु क्या सुश्री कलिंगसेना बहुत सुन्दरी है ?"

"भद्रे अम्बपाली, विश्व की स्त्रियों में तुम्हीं उसकी होड़ ले सकती हो। केवल नृत्य को छोड़कर, जिसमें तुम उससे बढ़ गईं। परन्तु मय असुर की कन्या की मित्रता से वह अक्षय यौवन हो गई है। असुरनन्दिनी ने उसे विन्ध्यगर्भ में स्थित मायापुरी में ले जाकर दिव्यौषध भक्षण कराया है, तथा माया के यन्त्रों से भरा पिटक भी दिया है। इससे वह अद्भुत कर्मिणी हो गई है। एक दिन वह अपनी सखी असुरनन्दिनी की सहायता से इन्हीं यन्त्रों के विमान पर चढ़कर कौशाम्बी में आ गई।"

"तो देव, घर बैठे गंगा आई।"

"हुआ ऐसा ही भद्रे, किन्तु राजसम्पदा भी कैसा दुर्भाग्य है!"

"राजसम्पदा ने बाधा दी, महाराज?"

"ज्योंही मैंने सुना कि गान्धार-कन्या कलिंगसेना स्वयंवर की इच्छा से आई है, मैंने आर्य यौगन्धरायण को उसका सत्कार करने और विवाह का मुहूर्त देखने को कहा। परन्तु आर्य यौगन्धरायण ने सोचा कि त्रैलोक्य सुन्दरी कलिंगसेना पर आसक्त होकर राजा मोह में फंस जाएगा, देवी वासवदत्ता संतप्त हो शोक में प्राण दे देंगी, पद्मावती भी उनके बिना न रह सकेंगी, इससे चण्डमहासेन और महाराज प्रद्योत दोनों ही शत्रु हो जाएंगे। इन सब बातों को विचारकर उन्होंने देवी कलिंगसेना के सत्कार-निवास का तो समुचित प्रबन्ध कर दिया, परन्तु विवाह में टालटूल करते रहे।

"उन्होंने कोसलपति और गान्धारराज दोनों ही को इसकी सूचना दे दी। कोसलपति ने सैन्य भेजकर गान्धारराज को विवश कर दिया। कोशलपति को नाराज़ करने की सामर्थ्य गान्धारपति में नहीं थी। वे न उसकी सैन्य का सामना कर सकते थे और न सुदूरपूर्व के व्यापार-वाणिज्य का मार्ग बन्द होना ही सहन कर सकते थे। उन्होंने पुत्री को अपनी कठिनाइयां बताईं, तो देवी कलिंगसेना ने पिता और जनपद के स्वार्थ-रक्षण के लिए अपनी बलि दे दी और विगलितयौवन प्रसेनजित् से विवाह करना अंगीकार करके वह श्रावस्ती चली गईं।"

"पूजार्ह है देवी कलिंगसेना, देव!"

"पूजार्ह ही है भद्रे, परन्तु जनपद के लिए आत्मबलि देने वाली पूजार्ह अकेली देवी कलिंगसेना ही नहीं है, देवी अम्बपाली भी हैं।"

"देव कौशाम्बीपति के इस अनुग्रह-वचन से आप्यायित हुई।"

"तो भद्रे, अब मैं जाता हूं, तुम्हारा कल्याण हो। मेरा यह अनुरोध याद रखना कि किसी मनुष्य के सम्मुख दिव्यनृत्य न करना, जब तक कि तीन ग्रामों में वीणावादन करनेवाला कोई पुरुष न मिल जाए।"

"ऐसा ही होगा, महाराज!"

उदयन तत्क्षण अन्तर्धान हो गए। अम्बपाली विमूढ़ भाव से आश्चर्यचकित हो उसी श्वेत मरमर की पीठ पर बैठी देखती रही।

१४. कोसलपति प्रसेनजित्

कोसल-नरेश प्रसेनजित् साकेत में ठहरे थे। वे सेठी मृगार के पुत्र पुण्ड्रवर्धन के ब्याह में सदलबल साकेत आए थे। राजधानी श्रावस्ती यहां से छः योजन पर थी। सरयू-तट पर बसा यह नगर उस समय प्राची से उत्तरापथ के सार्थ पथ पर बसा होने के कारण स्थल-व्यापार और नौ-व्यापार दोनों ही का मुख्य केन्द्र था।

महाराज प्रसेनजित् हिमश्वेत कोमल गद्दे पर बैठे थे। दो यवनी दासियां पीछे खड़ी चंवर ढल रही थीं। महाराज का शरीर अत्यन्त गौरवर्ण था। आयु पैंसठ से भी अधिक हो गई थी। उनके खिचड़ी बाल बीच में चीरकर द्विफालबद्ध किए गए थे। बड़ी-बड़ी मूंछें यत्न से संवारी गई थीं, और वे कान तक फैल रही थीं। वे कोमल फूलदार कौशेय पहने थे और कण्ठ, भुजा और मणिबन्ध पर बहुमूल्य रत्नाभरण पहने थे। इस समय उनका मन प्रसन्न नहीं था, वे कुछ उद्विग्न-से बैठे थे। कंचुकी ने राजपुत्र विदूडभ के आने की सूचना दी।

महाराज ने संकेत से आने को कहा।

विदूडभ ने बिना प्रणाम किए, आते ही पूछा—"महाराज ने मुझे स्मरण किया था?"

"किया था।"

"किसलिए?"

"परामर्श के लिए।"

"इसके लिए महाराज के सचिव और आचार्य माण्डव्य क्या यथेष्ट नहीं हैं?"

"किन्तु मैं तुम्हें परामर्श दिया चाहता हूं, विदूडभ!"

"मुझे? महाराज के परामर्श की मुझे आवश्यकता ही नहीं है।" राजपुत्र ने घृणा व्यक्त करते हुए कहा।

महाराज प्रसेनजित् गंभीर बने रहे। उन्होंने कहा—"किन्तु रोगी की इच्छा से औषध नहीं दी जाती, राजपुत्र!"

"तो मैं रोगी और आप वैद्य हैं, महाराज?"

"ऐसा ही है। यौवन, अविकार और अविवेक ने तुम्हें धृष्ट कर दिया है, विदूडभ!"

"परन्तु महाराज को उचित है कि वे धृष्टता का अवसर न दें।"

"तुम कोसलपति से बात कर रहे हो, विदूडभ!"

"आप कोसल के भावी अधिपति से बात कर रहे हैं, महाराज!"

क्षण-भर स्तब्ध रहकर महाराज ने मृदुकण्ठ से कहा—"पुत्र, विचार करके देखो, तुम्हें क्या ऐसा अविवेकी होना चाहिए? मैं कहता हूं—तुमने मेरी आज्ञा बिना शाक्यों पर सैन्य क्यों भेजी है?"

"मैं कपिलवस्तु को निःशाक्य करूंगा, यह मेरा प्रण है।"

"किसलिए? सुनूं तो।"

"आपके पाप के लिए, महाराज!"

"मेरा पाप! धृष्ट लड़के, तू सावधानी से बोल!"

"मुझे सावधान करने की कोई आवश्यकता नहीं है, महाराज, मैं आपके पाप के कलंक को शाक्यों के गर्म रक्त से धोऊंगा।"

"मेरा पाप कह तो।"

"कहता हूं, सुनिए; परन्तु आपके पापों का अन्त नहीं है, एक ही कहता हूं कि आपने मुझे दासी से क्यों उत्पन्न किया? क्या मुझे जीवन नहीं प्राप्त हुआ, क्या मैं समाज में पद-प्रतिष्ठा के योग्य नहीं?"

"किसने तेरा मान भंग किया?"

"आपने शाक्यों के यहां मुझे किसलिए भेजा था?"

"शाक्य अपने करद हैं। पच्छिम में वत्सराज उदयन कोसल पर सेना तैयार कर रहा है, पूर्व में मगध-सम्राट बिम्बसार। वैशाली के लिच्छवि अलग खार खाए बैठे हैं। ऐसी अवस्था में शाक्यों का प्रेम और साहाय्य प्राप्त करना था, इसलिए और किसीको न भेजकर कपिलवस्तु तुझे ही भेजा था। तू मेरा प्रियपुत्र है और शाक्यों का दौहित्र।"

विदूडभ ने अवज्ञा की हंसी हंसकर कहा—"शाक्यों का दौहित्र या दासीपुत्र? आप जानते हैं, वहां क्या हुआ?"

"क्या हुआ?"

"सुनेंगे आप? घमण्डी और नीच शाक्यों ने संथागार में विमन होकर मेरा स्वागत किया, अथवा उन्हें स्वागत करना पड़ा। पर पीछे संथागार को और आसनों को उन्होंने दूध से धोया।"

प्रसेनजित् का मुंह क्रोध से लाल हो गया। उन्होंने चिल्लाकर कहा—"क्षुद्र शाक्यों ने यह किया?"

"मुझे मालूम भी न होता, मेरा एक सामन्त अपना भाला वहां भूल आया था। वह उसे लेने गया, तब जो दास-दासी दूध से संथागार को धो रहे थे, उसमें एक दासी मुझे गालियां दे रही थी, कह रही थी—दासीपुत्र की धृष्टता तो देखो, रज्जुले का वेश धारण करके आया है।

संथागार को अधम ने अपवित्र कर दिया।"

"शाक्यों के वंश का मैं नाश करूंगा।"

"आप क्यों? आपका उन्होंने क्या बिगाड़ा है? आपको शाक्यों की राजकुमारी से ब्याह का शौक चढ़ा था, क्योंकि आप राजमद से अंधे थे। पर आप जैसे बूढ़े, अशक्त और रोगी को शाक्य अपनी पुत्री देना नहीं चाहते थे, खासकर इसलिए कि आपके रनवास में कोई कुलीन स्त्री है ही नहीं। आपने माली की लड़की को पट्टराज-महिषी पद पर अभिषिक्त किया है। शाक्य अपनी ऊंची नाक रखते थे, पर आपकी सेना से डरते भी थे। उन्होंने दासी की लड़की से आपका ब्याह कर दिया।"

"यह शाक्यों का भयानक छल था; किन्तु...।"

"किन्तु पाप तो नहीं, जैसाकि आपने किया। उसी दासी से इन्द्रियवासना के वशीभूत हो आपने मुझे पैदा किया। आपको साहस नहीं कि मुझे आप अपना पुत्र और युवराज घोषित करें। महाराज, मैं यह सह नहीं सकता। मैं शाक्य वंश का नाश करूंगा और इसी तलवार के बल पर कोसल के सिंहासन पर आसीन होऊंगा। फिर कोसल, काशी, शाक्य और मगध राज्य को भी आक्रांत करूं तो हूं असल दासीपुत्र विदूडभ।"

प्रसेनजित् के हाथ की तलवार नीची हो गई। उनकी गर्दन भी झुक गई। उन्होंने धीमे स्वर से कहा—"किन्तु विदूडभ राजपुत्र, यह तो परम्परा है, कुछ मेरे बस की बात नहीं। तुम्हें सभी तो राजोचित भोग प्राप्त हैं।"

"अवश्य हैं, महाराज, केवल सामाजिक सम्मान नहीं प्राप्त है। आपका औरस पुत्र होने पर भी कोसल की गद्दी का अधिकार नहीं प्राप्त है। वही मैं छल, बल और कौशल से प्राप्त करूंगा।"

प्रसेनजित् क्रोध से तनकर गद्दी पर बैठ गए। उन्होंने कहा—"विदूडभ, यह राजद्रोह है।"

"मैं राजद्रोही हूं, महाराज!"

"इसका दण्ड प्राणदण्ड है। जानते हो, राजधर्म कठोर है।"

"आत्मसम्मान उससे भी कठोर है, महाराज!"

"पर वह वैयक्तिक है।"

"हम सब दासीपुत्र, वर्णसंकर बन्धु, जो आप कुलीन किन्तु कदाचारी आर्यों से घृणा करते हैं, उसे सार्वजनिक बनाएंगे। हम आर्यों

समस्त अधिकार, समस्त राज्य, समस्त सत्ताएं
"मैं तुम्हें बन्दी करने की आज्ञा देता हूं, कोई
राजा ने दस्तक दी। दो यवनी प्रहरिकाएं खड़्
हुईं।
विदूडभ ने खड्ग ऊंचा करके कहा—"अ
सिर धड़ से जुदा करता हूं।" और सार्थवाही जनों
विदूडभ की भावभंगी और खड्ग उठाने से वृद्ध प्र बताया है कि मार्ग
हो अपना खड्ग उठा खड़े हो गए। अकस्मात् विदूडभ के साथ मेरा वह
से उसके हाथ से छूटकर दूर जा गिरा। द्ध सेट्ठि धनावह
प्रसेनजित् ने आश्चर्यचकित हो आगन्तुक की ओ ा हूं।"
"यह किसका उपकार मुझपर हुआ?" छ उपकार होता
"कुशीनारा से मल्ल बन्धुल का।" महाक्षत्रप कौश
पीछे से आगे बढ़कर कहा। ी हूं, यदि राज्य-
प्रसेनजित् ने दोनों हाथ फैलाकर कहा—"क्या मे राजकोष में उठा
ल्ल आया है?" र।"
"महाराज की जय हो! मुझे हर्ष है महाराज, मैं ठ
आ पहुंचा।" बन्धुल ने आगे बढ़कर कहा। ा संकल्प पूरा
"निश्चय! नहीं तो यह दासीपुत्र मेरा हनन ही कर
त्रप हिरण्यनाभ, इसे बन्दी कर लो।"
बन्धुल ने कहा—"महाराज, प्रसन्न हों, इस बार राजपु सुन्दरी और
र दिया जाए। मैं समझता हूं, वे अपने अविवेक को समझ क एक-एक
राजा ने कहा—'कोसल में तेरा स्वागत है, मित्र । मैं तुझे
दूडभ के विषय में तेरा ही वचन रहे।"
"कृतार्थ हुआ महाराज! तो राजपुत्र, अब तुम स्वतन्त्र हो। मैं तेरा
विदूडभ चुपचाप चला गया।
बन्धुल ने कहा—"महाराज को याद होगा, तक्षशिला में था। सो
छा की थी कि यदि आप राजा हुए तो मुझे सेनापति बनना हो
"याद क्यों नहीं है, मित्र! मैंने तो तुझे बहुत लेख लिखे
सल को भी ज़रूरत है और मुझे भी। कौशाम्बीपति उदय और से
टता तूने नहीं सुनी! गान्धारराज कलिंगदत्त ने अपनी अ मेरा
री पुत्री कलिंगसेना मुझे दी है, तो उदयन उसी बहाने श्रावस्ति य,
चढ़ने की तैयारी कर रहा है। इधर मगध-सम्राट बिम्बसार पुराने
न्ध की परवाह न करके कोसल को हड़पने के लिए कोसल पर

संथागार को अधम ने अपप्रन्य शत्रु भी कम नहीं हैं। बन्धुल मित्र, को
"शाक्यों के वंश का ्रकता है और मुझे भी, वह तो तूने देख ही ली
"आप क्यों ? आप हूं महाराज, पर मेरी कुछ शर्तें हैं।"
की राजकुमारी से ब्याह वीकार करूंगा।"
अंधे थे। पर आप जैसे ं हूं।"
देना नहीं चाहते थे, खुझे कभी मल्लों पर अभियान न करना होगा
कुलीन स्त्री है ही नहं चाहता। जो है वही रखना चाहता हूं। मित्र,
पद पर अभिषिक्त कि प्रिय कर सकता हूं ?"
आपकी सेना से डरते ाज !"
कर दिया।" । हिरण्यनाभ, मित्र बन्धुल का सब प्रबन्ध कर
"यह शाक्यों कहत में हैं, बन्धुल सुख से रहें।"
"किन्तु पाप होगा, महाराज !"
इन्द्रियवासना के वस्ती जाकर तुझे मैं सेनापति के पद पर अभि
नहीं कि मुझे आप ल्याण हो। जा, अब विश्राम कर।"
यह सह नहीं
लवार के बल

१५. नियुक्त

कोसल, काशी,
असल दासीपुत्र प्तावस्था में देश-विदेश की खाक छानता हुआ वी
प्रसेनजित् पहुंचा। उन दिनों इस नगर में उद्रायण नाम के रा
झुक गई। उन्हें हर्षदेव की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। उसके
तो परम्परा है, फटकर चिथड़े हो गए थे। सिर और दाढ़ी के बाल
भोग प्राप्त हैं। झ गए थे। वैशाली का विध्वंस करके अम्बपाली को
"अवश्य की तीव्र प्रतिहिंसा उसके मन और नेत्रों में व्याप्त थी,
आपका औरर कार्य को करने योग्य उसमें न तो चरित्र-बल ही
प्राप्त है। व। वह योंही अस्तव्यस्त भटक रहा था।
प्रसेनजि और थकान से जर्जर हर्षदेव ने नगर के बाहर एक
"विदूडभ, विश्राम किया। सघन वृक्षों की शीतल छाया में लेटते ही
'मैं र नींद आ गई। उसी समय एक वृद्धा स्त्री ने उसे देखा। व
"इस अनाथ पुरुष की खोज में थी। हर्षदेव को अनाथ जान
"अ प्रसन्न हुई। जब उसने देखा कि वह स्वस्थ, सुन्दर और त
" वह और भी सन्तुष्ट हुई और सन्तोष की दृष्टि से उसे देख
ठ गई।
चा हर्षदेव ने जागकर वृद्धा को अपने सम्मुख बैठे देखा तो बो

"मात, क्या मैं तेरा कुछ प्रिय कर सकता हूं ?"

"कृतपुण्य होकर, जात।"

"कृतपुण्य कौन है ?"

"वह मेरा इकलौता बेटा था।"

"वह कहां है ?"

"वह अपने तीन जहाज़ भरकर ताम्रपर्णी की ओर सार्थवाही जनों के साथ गया था। अब सार्थवाही जनों ने लौटकर बताया है कि मार्ग में उसके जहाज तूफान में फंसकर डूब गए। उन्हींके साथ मेरा वह प्रिय पुत्र भी डूब गया। जात, वह इस नगर के प्रसिद्ध सेट्ठि धनावह का इकलौता बेटा था और मैं भाग्यहीना उसकी माता हूं।"

"दुःख है माता, पर यदि मेरे पुत्र बनने से तेरा कुछ उपकार होता हो, तो मैं तेरा पुत्र हूं।"

"उपकार बहुत हो सकता है, पुत्र। मैं पुत्रहीना स्त्री हूं, यदि राज्य-सेवकों को यह खबर लग जाए, तो वे मेरा सब धन राजकोष में उठा ले जाएंगे। इसलिए, पुत्र, तू मेरा बनकर मुझे कृतार्थ कर।"

"किन्तु माता, मैं कृतसंकल्प हूं।"

"कोई हानि नहीं, तू मेरा मनोरथ पूर्ण करके अपना संकल्प पूरा कर लेना।"

"तेरा मनोरथ क्या है, माता ?"

"मेरे पुत्र की चार वधूटियां हैं। चारों ही कुलीना, सुन्दरी और तरुणी हैं। मैं तुझे नियुक्त करती हूं, तू उन चारों में धर्मपूर्वक एक-एक क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न करने तक मेरा पुत्र बनकर मेरे घर रह। मैं तुझे शुल्क दूंगी।"

हर्षदेव ने कुछ विचारकर कहा, "तो ऐसा ही हो, माता। मैं तेरा प्रिय करूंगा। परन्तु शुल्क इच्छानुसार लूंगा।"

"मेरा पति धनावह सेट्ठि सहस्रभार स्वर्ण का अधिपति था। सो शुल्क की चिन्ता न कर। मैं तुझे यथेच्छ शुल्क दूंगी।"

"तो माता, मैं तेरा पुत्र कृतपुण्य हूं।"

वृद्धा उसे घर ले आई। वीथिका में घुसते ही उसने ज़ोर-ज़ोर से रोना-चिल्लाना आरम्भ किया, "अरे लोगो, मेरा भाग्य देखो, मेरा मरा पुत्र जी उठा है। अरे मेरा पुत्र आया है। मेरा पुत्र कृतपुण्य। हाय, हाय, यह मेरे पुत्र की दुरवस्था देखो रे लोगो, सेट्ठि धनावह के इकलौते पुत्र ने कितना दुःख पाया है !"

बहुत लोगों ने बहुत भांति सांत्वना दी। बहुत कौतुक और आश्च से हर्षदेव के उस जघन्य रूप को देखते रहे। वृद्धा ने सेवकों को ए के बाद दूसरी आज्ञा देना प्रारंभ किया—"नापित को बुलाओ, मेर पुत्र क्षौर करे ! जल गर्म करो, उसे सुवासित करो, अवमर्दक औ पीठ-मर्द को बुलाओ, पुत्र का अंग-संस्कार करो।"

वधुओं में जो ज्येष्ठा थी, उसने एक बार अच्छी तरह झांकक पति को देखा। देखकर उसका मुख सूख गया। उसने सौतों को बुल कर भयपूर्ण स्वर से कहा :

"अब्भुमे, अब्भुमे, यह कौन है रे ? यह तो सेठ का पुत्र नहीं है।"

सबने गवाक्ष में से झांककर देखा। सबने कहा—"अब्भुमे, न है, यह हमारा पति नहीं, यह कोई धूर्त वंचक है।"

"तो चलो, माता से कह दें।"

चारों जनी सास के पास पहुंचीं।

वृद्धा ने उन्हें देखकर कहा—"अरे यह क्या ! तुम लोगों ने अ तक शृंगार नहीं किया ? ..."

"किन्तु माता, यह तुम्हारा पुत्र नहीं है, कोई धूर्त वंचक है ज्येष्ठा ने वृद्धा की बात काटकर कहा। वृद्धा ने भृकुटी में बल डाल कहा—"मेरे पुत्र को तुम क्या मुझसे अधिक जानती हो ? यही मे पुत्र कृतपुण्य है।"

"यह नहीं है माता !" चारों वधूटियों ने दृढ़ वाणी से कहा।

"परन्तु जब मैं कहती हूं, तब तुम्हें भी यही कहना चाहिए।"

"परन्तु हमने उसे भली भांति देख लिया है।"

"चुप, मैंने इसे 'नियुक्त' किया है।"

वधुओं का मुंह सूख गया और उनकी वाणी कण्ठ में अटक ग वे भयभीत होकर सास का मुंह देखने लगीं।

वृद्धा ने कहा—"देखो, तुम समझदार और बुद्धिमती हो, मूर्ख करके बने-बनाए खेल को मत बिगाड़ देना। तुमने देख ही लिया है सुन्दर, स्वस्थ और कुलीन है। तुम और मैं पुत्रहीना स्त्रियां हैं। अवस्था में देश के कानून के आधार पर राजपुरुषों को ज्योंही इस का पता लग जाएगा कि हम पुत्रहीना स्त्रियां हैं, तो राजपुरुष ह सारी सम्पत्ति को हरण करके राजकोष में मिला देंगे। तब हमें सब स्वर्ण, रत्न, घरबार खोकर पथ की भिखारिनी होकर रहना हो परन्तु इस नियुक्त पुरुष के द्वारा तुम चारों एक-एक क्षेत्रज

उत्पन्न कर लोगी तो वे ही हमारी इस अतुल सम्पदा के भोक्ता होंगे और तुम कुलवधू बनकर रहोगी। यह कोई अधर्म की बात नहीं है। प्राचीन आर्यों के धर्म की रीति है। शांतनु के धर्मात्मा पुत्र भीष्म ने इसी धर्म को अपनाकर कुरुवंश की रक्षा की थी। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। इससे मैं तुम्हारे सुख-कल्याण के लिए जैसा कहती हूं, तुम उसी प्रकार आचरण करो। इसीमें तुम्हारा कल्याण होगा।"

बुढ़िया की बातें अन्ततः वधूटियों के मन में घर कर गईं और उन्होंने उसके आदेश के अनुसार इस नियुक्त पुरुष को पतिभाव से स्वीकार कर लिया। इस प्रकार हर्षदेव अपने संकल्प को भूल धन, सम्पदा, ऐश्वर्य और सुन्दरी युवती स्त्रियों के सुख में डूब गया। कृत-पुण्य होकर वह सेट्ठिपुत्र का सम्पूर्ण अभिनय करने लगा। किसीको भी उसपर सन्देह नहीं हुआ; जिन्होंने सन्देह किया, उन्हें बुढ़िया ने साम, दाम, दण्ड, भेद से वश में कर लिया।

१६. नियुक्त का शुल्क

इस प्रकार उस नगर में रहते हुए हर्षदेव को तीन वर्ष बीत गए। इन तीनों वर्षों में उसने सेट्ठिपुत्र की चारों वधूटियों से तीन पुत्र और दो पुत्रियां उत्पन्न कीं। अपने घर को शिशुओं से आह्लादित और प्रसादित देखकर वृद्धा बहुत प्रसन्न रहने लगी। बालक बड़े ही स्वस्थ और सुन्दर थे। वे बुद्धिमान भी थे, जैसाकि संकर रक्त की सन्तान होती ही है। पहले हर्षदेव अपने को मात्र नियुक्त समझकर इन सबसे उदासीन रहता था, बीच-बीच में वह देवी अम्बपाली का भी ध्यान करता था; परन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, उसने सोचा, क्यों न मैं अब सब बातों को भूलकर कृतपुण्य रहकर ही जीवन व्यतीत करूं? चारों बहुएं भी अब उससे प्रेम करने लगी थीं। खास कर तृतीया की उसपर अधिक आसक्ति थी। वह सब वधूटियों में चतुरा, प्रगल्भा, बुद्धिमती और सुन्दरी भी थी। उसका पिता चम्पा का एक धनी सेट्ठि सार्थवाह था।

परन्तु बुढ़िया की योजना विशुद्ध वैधानिक थी। अब वह सोचने लगी थी, मेरा काम हो चुका। जो करना था, कर लिया। मेरे पुत्र के पुत्र हो गए, मेरा वंश चल गया। मेरी सम्पत्ति और मेरे कुल की रक्षा हो गई। अब यह नियुक्त मोघपुरुष जाए। वह उसे घर से निकाल बाहर करने की युक्ति सोचने लगी।

एक दिन उसे अवसर भी मिल गया। कपिशाकाम्पिल्य के कु सार्थवाह नगर में आए थे। उनके साथ कुछ उत्तम अजानीय अश्व थे उनसे हर्षदेव ने अपने लिए एक अश्व सहस्र स्वर्ण में खरीद लिया अश्व खरीदकर और नये अश्व पर सवार होकर वह प्रसन्न होता हुआ घर पहुंचा और उपास्था को पुकारकर कहा कि वह सार्थवाहक के सहस्र स्वर्ण दे दे, जो उसके साथ-साथ ही आया था। इसपर वृद्धा क्रुद्ध होकर बाहर आई। उसने कहा—"कैसा सहस्र स्वर्ण ?"

"मैंने अश्व खरीदा है, मातः।"

"परन्तु किसलिए ?"

"मैं कभी-कभी वन-विहार को जाया करूंगा।"

"तो तू निरंतर वन-विहार कर, मेरी तरफ से तुझे छुट्टी है।"

"इसका क्या मतलब है ?"

"अरे मोघपुरुष, तू मतलब पूछता है ? क्या तू नहीं जानता कि तू नियुक्त है ? जा, तेरी नियुक्ति समाप्त हुई। मेरा कार्य पूरा हुआ। तूने कहा था कि तू कृतसंकल्प है, जा, अपना संकल्प पूर्ण कर।"

"तो क्या मैं अब तेरा कृतपुण्य पुत्र नहीं ?"

"नहीं रे, मोघपुरुष, नहीं !"

"तो मैं राजद्वार में अभियोग उपस्थित करता हूं कि तू मुझ पु को वंचित करती है। मैं कृतपुण्य हूं, यह सभी जानते हैं।"

"तो तू अभियोग उपस्थित कर, मैं कहूंगी—इस वंचक ने मेरा पुत्र बनकर मुझे ठगा है, मेरा कुल कलंकित किया है। तुझे शूल मिलेगी। अरे मोघपुरुष, तू कब मेरा पुत्र कृतपुण्य था ?"

मध्यमा ने आकर यहा—"मातः, यह विवाद ठीक नहीं है। इससे कुल कलंकित होगा तथा तेरे पौत्र अवैधानिक प्रमाणित होंगे और सम्पत्ति उन्हें नहीं मिलेगी।"

"तो तू क्या कहती है कि मैं इस धूर्त को जीवन-भर सिर पर ला फिरूं, और यह मेरे पुत्र और पति की सम्पत्ति और मेरी वधुओं का आजीवन भोक्ता बना रहे ?"

"तो उसे शुल्क देकर विदा कर दो।"

"कैसा शुल्क ?"

हर्षदेव ने क्रुद्ध होकर कहा :

"क्या तूने शुल्क देने का वचन नहीं दिया था ?"

"पर तूने खाया-पीया भी तो है। अरे भिक्षक मोघपुरुष ! स्मर

कर उस दिन को, जब तू चीथड़े पहने जंगल में भटक रहा था। तीन वर्षों में कितना खाया है रे पेटू, तनिक हिसाब तो लगा !"

"अरी कृत्या, तू अब मेरा पेट नापती है ! नहीं जानती, मैं सामंत हूं। अभी खड्ग से तेरा शिरच्छेद करूंगा।" हर्षदेव क्रुद्ध होकर खड्ग निकालने लगा।

बुढ़िया डर गई। वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। मध्यमा ने कहा—"मातः, अभी सब वीथिवासी आ जाएंगे, भेद खुल जाएगा, तेरा कुल दूषित होगा।"

"तो यह मोघपुरुष अभी मेरे घर से चला जाए।"

हर्षदेव ने कहा—"अभी जाता हूं, परन्तु तुझ कुट्टनी की प्रतिष्ठा के लिए नहीं, अपनी प्रतिष्ठा के लिए।"

इसके बाद हर्षदेव सब बहुमूल्य वस्त्रालंकार उतार-उतारकर फेंकने लगा। केवल एक प्रावार अंग से लपेटकर चलने के लिए उठ खड़ा हुआ।

चारों वधूटियां आंखों में आंसू भरे खड़ी देखती रहीं। मध्यमा ने आगे बढ़कर कहा—"भद्र, यों नहीं; यह कुल-मर्यादा के विपरीत है। एक मुहूर्त-भर ठहरो, मैं पाथेय तैयार करती हूं। पाथेय साथ लेकर जाना।"

बुढ़िया ने बाधा नहीं दी और हर्षदेव ने भी मौन स्वीकृति दी। मध्यमा ने बहुत-सा घी-चीनी डालकर दो बड़े-बड़े मधुगोलक बनाए। उनमें से एक में मुट्ठी-भर रत्नमणि भर दिए। पाथेय हर्षदेव के हाथ में देकर हौले से कहा—"भद्र, चम्पा जाना, वहां मेरे पिता के यहां रहकर मेरी प्रतीक्षा करना।"

इतना कह वह हर्म्य में चली गई और हर्षदेव डाल से टूटे पत्ते की भांति फिर निराश्रय हो पथ पर आगे बढ़ा।

१७. चम्पा में

मगध-सेनापति चण्डभद्रिक ने पटमण्डप में प्रवेश करके कहा—"मित्रो, अब वैशाखी के केवल पांच ही दिन बाकी रह गए हैं। इन्हीं पांच दिनों में मागधी सेना का और चम्पा के प्राचीन राज्य के भाग्य का निपटारा होना है। यदि हम वैशाखी के दिन चम्पा के दुर्ग में प्रवेश कर पाते हैं तो मगध-साम्राज्य का विस्तार सुदूर पूर्व के द्वीपसमूह पर हो

जाएगा। परन्तु यदि हम ऐसा नहीं कर पाते, तो निश्चय मागधी से
का यहीं क्षय होगा और हममें से एक भी चम्पा महारण्य को पार क
जीवित मगध नहीं लौट सकेगा।"

मण्डप में बहुत-से सेनानायक, उपनायक आदि उपस्थित थे। सेना
पति के ये वाक्य सुनकर एक ने कहा—"परन्तु भन्ते सेनापति, ह
बहुत ही विपन्नावस्था में हैं। आर्य वर्षकार ने हमें सहायता नहीं भेजी
मगध की इस पराजय का उत्तरदायित्व हमपर नहीं, आर्य वर्षकार प
है।"

"नहीं भन्ते, ऐसा नहीं, जय-पराजय का दायित्व तो हमींपर है
हमें अपने बलबूते पर, जो करने योग्य है, करना चाहिए।"

"हमने तीन मास से दुर्ग को घेर रखा है। यह कोई साधारण बा
नहीं, भन्ते सेनापति।"

"चाहे जो भी हो, परन्तु यदि वैशाखी के दिन हम दुर्ग में प्रविष्ट
हो सके, तो साम्राज्य की ऐसी क्षति होगी जिसका प्रतिकार शताब्दिय
तक न हो सकेगा। यों कहना चाहिए कि सुदूर पूर्व की सारी आशाए
सदा के लिए लुप्त हो जाएंगी।...व्रज, क्या रसद की कुछ आशा है?"

"खेद है कि नहीं।"

"तब तो हम जो कुछ कर सकते थे, कर चुके।"

"फिर भी भन्ते सेनापति, हमें कुछ समय निकालना चाहिए।
सम्भव है, राजगृह से सहायता मिल जाए।"

"परन्तु हमारे सभी सैनिक घायल हैं। एक भी अश्व युद्ध के का
का नहीं। हम भूख-प्यास और घावों से जर्जरित हैं। यदि हम युद्ध जारी
रखते हैं तो इसका अर्थ आत्मघात करना होगा। क्या इससे अच्छा यह
न होगा कि हम चम्पानरेश महाराज दधिवाहन की सन्धि-शर्तें स्वीकार
कर लें? मैं समझता हूं, निश्चित पराजय की अपेक्षा यह अच्छा है।"

किसीने उच्च स्वर से कहा—"क्या यह आर्य भद्रिक की वाणी है
सुन रहा हूं, जिनके शौर्य की यशोगाथा पर्शुपुरी के शासानुशास गाते
नहीं अघाते?"

भद्रिक ने सिर ऊंचा करके कहा—"कौन है यह आयुष्मान्?"

एक कोने से सोमप्रभ उठकर सेनापति के सम्मुख आया। वह
साधारण किसान के वस्त्र पहने था। सेनापति ने उसे सिर से पैर तक
घूरकर कहा—"कौन हो तुम, आयुष्मान्, ऐसे कठिन समय में ऐसे
तेजस्वी वचन कहने वाले?"

"भन्ते सेनापति, मेरा नाम सोमप्रभ है। मैं राजगृह से सहायता लेकर आया हूं। यह आर्य वर्षकार का पत्र है।"

युवक के वचन सुनकर सभी उत्सुकता से उसकी ओर देखने लगे। सेनापति ने पत्र लेकर मुहर तोड़ी और शीघ्रता से उसे पढ़ा। फिर कुछ चिन्तित होकर कहा—"परन्तु सहायता कहां है, सौम्य ? आर्य वर्षकार का आदेश है कि वैशाखी के दिन चम्पा में प्रवेश करना होगा।"

"वह प्रच्छिन्न है, भन्ते सेनापति !"

"परन्तु हमारा कार्यक्रम ?"

"क्या मैं निवेदन करूं, आर्य ?"

"अवश्य, आर्य वर्षकार ने तुम्हारे विषय में मुझे कुछ आदेश दिए हैं।"

"तब ठीक है। वैशाखी के दिन सूर्योदय होने पर चम्पावासी जो दृश्य देखेंगे, वह चम्पा दुर्ग पर फहराता हुआ मागधी झण्डा होगा।"

"परन्तु यह तो असाध्य साधन है, आयुष्मान् ! यह कैसे होगा ?"

"यह मुझपर छोड़ दीजिए, भन्ते सेनापति !"

सेनापति ने अब अचानक कुछ स्मरण करके कहा—"परन्तु तुम शिविर में कैसे चले आए, सौम्य ?"

"किसी भांति आज का संकेत-शब्द जान गया था, भन्ते !"

"यह तो साधारण बात नहीं है, आयुष्मान् !"

"भन्ते, सोमप्रभ साधारण तरुण नहीं है।"

"सो तो देखूंगा, पर तुम करना क्या चाहते हो ?"

"अभी हमारे पास चार दिन हैं। इस बीच में बहुत काम हो जाएगा।"

"पर चार दिन हम खाएंगे क्या ?"

"आज रात को रसद मिल जाएगी।"

"परन्तु प्रतिरोध कैसे पूरा होगा ? हमारे पास तो युद्ध के योग्य···"

"एक सौ सशस्त्र योद्धा आज रात को आपके पास पहुंच जाएंगे।"

"केवल एक सौ ?"

"आपको करना ही क्या है, भन्ते, केवल प्रतिरोध ही न ?"

"परन्तु शत्रु के बाण जो हमें वेधे डालते हैं। हमारे पास रक्षा का कोई साधन नहीं है।"

"यह तो बहुत सरल है, भन्ते ! उधर बहुत-सी टूटी नौकाएं पड़ी

हैं, उनमें रेत भरकर उनकी आड़ में मज़े में प्रतिरोध किया जा सकता है। मैंने सिन्धु नदी के युद्ध में गान्धारों का यह कौशल देखा है।"

"तुम क्या गांधार हो, वत्स ?"

"नहीं, मागध हूं। मैंने तक्षशिला में आचार्यपाद बहुलाश्व से शिक्षा पाई है।"

"अरे, आयुष्मान् ! तुम वयस्य बहुलाश्व के अन्तेवासी हो ! साधु, साधु ! तुम्हारी युक्ति बहुत अच्छी है।"

"बस, कुछ नावों को आज रात के अंधेरे में यहां खींचकर लाया जाए और उनमें रेत भर दिया जाए।"

"यह हो जाएगा। परन्तु तुम्हारे सौ सैनिक ?"

"रात को तीसरे पहर तक पहुंच जाएंगे।"

"ठीक है, तब तक तुम ?"

"मैं एक चक्कर नगर का लगाकर उसका मानचित्र तैयार करता हूं।"

"तुम्हें कुछ चाहिए, आयुष्मान् ?"

"कुछ नहीं, भन्ते ! परन्तु अब मैं चला।" सोमप्रभ सेनापति का अभिनन्दन करके चल दिया। मागध योद्धाओं की सूखी आशालता पल्लवित हो उठी। घायल योद्धा भी वीर-दर्प से हुंकार भरने लगे।

१८. शत्रुपुरी में मित्र

सोम बहुत-से गली-कूचों का चक्कर लगाते, बीथी और राजपथ को पार करते हुए एक तंग गली में छोटे-से मकान पर पहुंचे। वहां उन्होंने द्वार पर आघात किया। एक अधेड़ वय के बलिष्ठ पुरुष ने द्वार खोला। सोम भीतर गए। वह पुरुष भी द्वार बन्द कर भीतर गया।

भीतर आंगन में एक भारी भट्ठी जल रही थी। वहां बहुत-से शास्त्रास्त्र बन रहे थे। अनेक कारीगर अपने-अपने काम में जुटे थे। जिसने द्वार खोला था, वह कोई चालीस वर्ष की आयु का पुरुष था। उसने कहा—"कहो मित्र, सेनापति का क्या विचार रहा ?"

"वे सब निराशा में डूब रहे थे, पर अब उत्साहित हैं। किन्तु मित्र अश्वजित्, अब सब कुछ तुम्हारी ही सहायता पर निर्भर है। कहो, क्या करना होगा ?"

"बहुत सीधी बात है। दक्षिण बुर्ज पर वैशाखी के दिन तीन पहर

रात गए मेरे भाई का पहरा है।"

"अच्छा, फिर ?"

"अब यह आपका काम है कि आप चुने हुए भटों को लेकर ठीक समय पर बुर्ज पर चढ़ जाएं।"

"ठीक है, परन्तु तुम कितने आदमी चाहते हो ?"

"बीस से अधिक नहीं। परन्तु मित्र, दक्षिण बुर्ज नदी के मुहाने पर है और चट्टान अत्यन्त ढालू है। उधर से बुर्ज पर चढ़ना मृत्यु से खेलना है।"

"हम मृत्यु से तो खेल ही रहे हैं, मित्र ! यही ठीक रहा। हम ठीक समय पर पहुंच जाएंगे।"

"इसके बाद की योजना वहीं बन जाएगी।"

"ठीक है। और कुछ ?"

"अजी, बहुत कुछ मित्र। हमारे पास यथेष्ट शस्त्र तैयार हैं। मैंने मागध नागरिकों को बहुत-से शस्त्र बांट दिए हैं। वैशाखी के प्रातः ज्योंही दुर्ग-द्वार पर आक्रमण होगा, नगर में विद्रोह हो जाएगा।"

"अच्छी बात है, परन्तु मुझे अभी आवश्यकता है।"

"किस चीज़ की ?"

"सौ सशस्त्र सैनिकों की, जिनके पास पांच दिन के लिए भोजन भी हो।"

"वे मिल जाएंगे।"

"थोड़ी रसद और। सेनापति भूखों मर रहे हैं।"

"रसद और सैनिक आज रात को पहुंच जाएंगे।"

"परन्तु किस प्रकार, मित्र ?"

"उसी दक्षिण बुर्ज के नीचे से। उधर पहरा नहीं है और एक मछुआ मेरा मित्र है। मेरे आदमी शिविर में तीन पहर रात गए तक पहुंच जाएंगे। कोई कानोंकान न जान पाएगा।"

"वाह मित्र, यह व्यवस्था बहुत अच्छी रहेगी। परन्तु तुम्हारे उस मछुआ मित्र की मुझे भी आवश्यकता होगी।"

"कब ?"

"उस वैशाखी की रात को।"

"ओह, समझ गया। सैनिकों को पहुंचाकर वह अपनी डोंगीसहित वहीं कहीं कछार में चार दिन छिपा रहेगा। फिर समय पर आप उससे काम ले सकते हैं।"

"धन्यवाद, मित्र ! तो अब मैं आर्य को यह सुसम्वाद दे दूं ?"
"और मेरा अभिवादन भी, मित्र !"
सोमप्रभ ने लुहार का आलिंगन किया और वहां से चल दिए।

१९. पर्शुपुरी का रत्नविक्रेता

चम्पा के पान्थागार में पर्शुपुरी के एक विख्यात रत्नविक्रेता कई दिन से ठहरे थे। उनके ठाट-बाट और वैभव को देखकर सभी चम्पानिवासी चमत्कृत थे। पान्थागार के सर्वोत्तम भवन में उन्होंने डेरा किया था और राज्य की ओर से उनकी रक्षा के लिए बहुत-से सैनिक नियुक्त कर दिए गए थे। रत्नविक्रेता के पास सेवकों की एक अच्छी-खासी सेना थी। रत्नविक्रेता को अभी तक किसीने नहीं देखा था। लोग उनके सम्बन्ध में भांति-भांति की बातें करते औरभांति-भांति के अनुमान लगा रहे थे। इसका कारण यह था कि उनके सेवकों में अदना से आला तक सभी शाहखर्च थे। वे कार्षापण का सौदा खरीदते और स्वर्णदम्म देकर फिरती लेना भूल जाते। ऐसा प्रतीत होता था कि स्वर्ण को वे मिट्टी समझते हैं। परन्तु सबसे अधिक चर्चा की वस्तु रत्नविक्रेता की पुत्री थी, जो प्रतिदिन प्रातः और संध्याकाल में अश्व पर सवार हो दासियों और शरीर-रक्षकों के साथ नित्य नियमित रीति से वायु-सेवन को जाती तथा मार्ग में स्वर्ण-रत्न दरिद्र नागरिकों को हंसती हुई लुटाती थी। उसके अद्भुत अनोखे रूप, असाधारण अश्व-संचालन और अविरल दान से इन चार-पांच ही दिनों में पर्शुपुरी के रत्नविक्रेता के वैभव और उसके व्यक्तित्व के संबंध में भांति-भांति की झूठी-सच्ची चर्चा नगर में फैल गई थी। अभी दो दिन पूर्व उनसे मिलने नगर के महासेट्ठि धनिय आए थे, और रत्नविक्रेता तथा उसकी पुत्री को उन्होंने कल निमन्त्रण दिया था। आज स्वयं चम्पा के अधीश्वर परमपरमेश्वर महाभट्टारक श्री दधिवाहनदेव पान्थागार में पधार रहे थे।

रात्रि का प्रथम पहर बीतने पर चम्पाधिपति ने पान्थागार में राजकुमारी चन्द्रप्रभा के साथ प्रवेश किया। पर्शुपुरी के उस रत्नविक्रेता ने द्वारपर आकर महाराज और राजकुमारी का स्वागत किया और सादर एक उच्चासन पर बैठाकर अपनी पुत्री से महाराज का अर्घ्यपाद्य से सत्कार कराया। रत्नविक्रेता के विनय और उससे अधिक उसकी पुत्री के रूप-लावण्य को देखकर महाराज दधिवाहन मुग्ध हो

गए। कुमारी चन्द्रप्रभा ने हाथ पकड़कर हंसते हुए रत्नविक्रेता की पुत्री को अपने निकट बैठा लिया। महाराज ने कहा—"चम्पा में आपका स्वागत है, सेट्ठि ! हमें आपको देखकर प्रसन्नता हुई है। मैंने सुना है, आप बहुत-से अमूल्य रत्न लाए हैं। राजकुमारी उन्हें देखना चाहती है।"

रत्नविक्रेता ने अत्यधिक झुककर महाराज का अभिवादन किया। फिर एक दास को रत्नमंजूषा लाने का संकेत किया। दास कौशेयमण्डित पट्ट पर मंजूषा रख गया। उसमें से बड़े-बड़े तेजस्वी मुक्ताओं की एक माला लेकर रत्नविक्रेता ने कहा—"देव चम्पाधिपति प्रसन्न हों, यह मुक्ता मोल लेकर बेचने योग्य नहीं है। पृथ्वी पर इसका मूल्य कोई चुका नहीं सकता। यदि देव की अनुमति हो तो मैं यह मुक्ताहार राजकुमारी को अर्पण करने की प्रतिष्ठा प्राप्त करूं।"

उन बड़े-बड़े उज्ज्वल असाधारण मोतियों को महाराज दधिवाहन आंखें फाड़-फाड़कर देखते रह गए। रत्नविक्रेता ने आगे बढ़कर वह अमूल्य मुक्तामाला राजकुमारी के कण्ठ में डाल दी।

राजकुमारी ने आनन्द से विह्वल होकर दोनों हाथों में वह माला थाम ली।

इसके बाद रत्नविक्रेता ने कहा—"अब यदि अनुमति पाऊं तो विक्री योग्य कुछ रत्न सेवा में लाऊं। कदाचित् कोई राजकुमारी को पसन्द आ जाए।"

उसने संकेत किया और दास ने दो बड़ी-बड़ी रत्नमंजूषा कौशेय-पट्ट पर रख दीं। उनमें एक से एक बढ़कर रत्नाभरण भरे पड़े थे। राजकुमारी ने कुछ आभरणों को छांट लिया। किन्तु महाराज दधि-वाहन उन सब असाधारण रत्नों से अधिक रत्नविक्रेता की कन्या-रत्न की ओर आकर्षित हो रहे थे, जो रह-रहकर बंकिम कटाक्ष से उन्हें पागल बना रही थी।

चम्पाधिपति ने बहुत-से रत्नाभरण खरीदे। अन्त में उन्होंने उठते हुए कहा—"हम आपसे बहुत प्रसन्न हैं। इस समय मागध सैन्य ने चम्पा को घेर रखा है, इससे आपको और आपकी सुकुमारी कन्या को असुविधा हुई होगी।"

"मेरी पुत्री का देव को इतना ध्यान है, इसके लिए अनुगृहीत हूं। यह बिना माता की पुत्री है। महाराज, राजकुमारी ने इसे सखी की भांति अपनाकर जो प्रतिष्ठित किया है, उससे इसे अत्यन्त आनन्द हुआ

"घ जकुमारी चाहती है, आप जब तक यहां हैं, आपकी पुत्री राज-
"अं में उसीके सान्निध्य में रहे। आपको इसमें कुछ आपत्ति है ?"
सो ने छिपी दृष्टि से रत्नविक्रेता की पुत्री को देखकर कहा, जो
ान से राजा के वचन का स्वागत कर रही थी।
विक्रेता ने कहा—"यह तो उसका परम सौभाग्य है। राज-
से अपने साथ ले जा सकती हैं। यहां परदेश में, देव, यह
बहुत अनुभव करती है।"
ुमारी ने हंसकर रत्नविक्रेता की कन्या का हाथ पकड़कर
लो सखी, हम लोग बहुत आनन्द से रहेंगे।"
विनय से मस्तक झुकाया। प्रधान दास ने उत्तरी वासक
धों पर डालते हुए अवसर पाकर धीरे से उसके कान में
ैशाखी की रात को चार दण्ड रात्रि व्यतीत होने पर।"
वह विनय से झुकता हुआ पीछे हट गया। रत्नविक्रेता की
जो वास्तव में कुण्डनी थी) पिता के चरणों में प्रणाम किया।
ष्टि-विनिमय किया।
ाज राजकुमारी और रत्नविक्रेता की कन्या को लेकर चले
जाने पर रत्नविक्रेता ने द्वार बंद करने का आदेश दिया।
त पाकर अपने नकली केश और परिच्छेद को उतार फेंका।
कट आ खड़ा हुआ।
ठीक हुआ न, सोम ?"
ार्य !"
ति भद्रिक को सहायता मिल जाएगी न ?"
ीक हो गया है, आर्य !"
मान् अश्वजित अपना कार्य कर रहा है ?"
ं, वह लुहार बना हुआ है। चम्पा के सम्पूर्ण मागध नाग-
सने सशस्त्र कर दिया है।"
अच्छा हुआ। वे कितने हैं ?"
सौ से भी अधिक।"
है। सेट्ठि धनिय ने चम्पा के बहुत-से सार्थवाहों की हुंडियां
से खरीद ली हैं। वैशाखी के दिन प्रभात ही वे भुगतान
जानता हूं, राजकोष में स्वर्ण नहीं है। महाराज दधिवाहन
मूल्य में जो स्वर्ण देंगे, वह चम्पा के स्वर्णवणिकों से लेकर।

चम्पा के
से ठहरे थे
चमत्कृत थे
और राज्य
दिए गए
थी। रत्न
सम्बन्ध में
रहे थे। इ
सभी शाह
फिरती ले
समझते हैं
थी, जो प्रति
और शरीर
जाती तथा
थी। उसके
रत्न दान
वैभव और
चर्चा नगर
महासेट्ठि
कल निमन्त्र
महाभट्टार
रात्रि
राजकुमारी
विक्रेता ने
और सादर
अर्घ्यपाद्य से
उसकी पुत्री

बस, वे खाली हो जाएंगे और वे नगरसेट्ठि की हुंडियां नहीं भुगता सकेंगे।"

"इसी बीच मागध नागरिक नगर में विद्रोह कर देंगे और यह हुंडियावन ही उसका कारण हो जाएगा। किन्तु कुण्डनी ?"

"वह अपना मार्ग खोज लेगी। वैशाखी की रात्रि के चौथे दण्ड के प्रारम्भ होते ही दधिवाहन मर जाएगा।"

"तो ठीक उसी समय चम्पा दुर्ग के पश्चिमी बुर्ज पर मागध तुरही बजेगी और उस समय तक तमाम प्रहरी वश में किए जा चुके होंगे। इसके बाद दो ही घड़ी में उन्मुक्त द्वार से मगध सेनापति प्रविष्ट हो दुर्ग अधिकृत कर लेंगे।"

"उत्तम योजना है। अब मैं इसी क्षण प्रस्थान करूंगा। तुम मेरे रोगी होने का प्रचार करना तथा वैशाखी-पर्व तक सब कुछ इसी भांति रखना; परन्तु किसीसे भेंट करने में असमर्थ बता देना।"

"जैसी आज्ञा..."

"और वैशाखी के दिन चार दण्ड रात्रि रहते ही श्रावस्ती की ओर प्रस्थान करना। चम्पा दुर्ग पर मागधी पताका देखने के लिए प्रभात तक रुकना नहीं। वहां सम्राट विपन्नावस्था में हैं।" इतना कहकर मगध-महामात्य ने आसन त्याग दिया।

२०. गुप्त पत्र

सेनापति भद्रिक बड़ी देर तक शून्य अर्धरात्रि में अकेले चिन्तित भाव से पट-द्वार में इधर-उधर टहलते रहे। उस समय उनके मस्तिष्क में कुछ परस्पर-विरोधी ऐसे विचार चक्कर लगा रहे थे, जिनका उन्हें निराकरण नहीं मिल रहा था। उन्होंने बहुत देर तक कुछ सोचकर दीपक ठीक किया और आसन पर आ, भोजपत्र निकाल, लेखनी हाथ में ली। इसी समय किसीके पदशब्द से चौंककर उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। सोम को देखकर उन्होंने आश्वस्त होकर कहा :

"तुम सोम, इस असमय में !"

"आर्य, एक चर है, राजगृह से पत्र लाया है।"

"पत्र क्या सम्राट का है ?"

"नहीं आर्य, सेनापति उदायि का पत्र है।"

"तो तुम पत्र ले आओ, और चर की व्यवस्था कर दो।"

इतना कहकर सेनापति लिखने में लीन हो गए। सोम पत्र हाथ में लेकर चुपचाप मंडप में खड़े हो गए।

लेख समाप्त होने पर सेनापति ने कहा—"भद्र, मुहर तोड़कर पत्र निकालो।"

सोम ने ऐसा ही किया।

सेनापति ने स्निग्ध कोमल स्वर में कहा—"पत्र पढ़ो, भद्र!"

पत्र पर दृष्टि डालकर सोम ने कहा—"आर्य, पढ़ नहीं सकता, यह सांकेतिक भाषा में है।"

"अच्छा, तो कोई गुप्त पत्र है! वह संकेत-तालिका ले लो, भद्र, और तब सावधानी से पढ़ो।"

सोम ने पढ़ा :

"...मैं आशा करता हूं कि शीघ्र ही आपको महाराज कहकर सम्बोधित करूंगा।" सोम ने झिझककर सेनापति की ओर देखा।

सेनापति ने मुस्कराकर कहा :

"पढ़ो भद्र, यह राजविद्रोह नहीं, राजनीति है। मगध-सम्राट ही अकेले महाराज नहीं हैं, और भी हैं। फिर अब, सोमभद्र, जब तुमने आशा ही आशा हमें दी है तो फिर चम्पा के सिंहासन पर दधिवाहन के स्थान पर भद्रिक कुछ अनुपयुक्त भी नहीं है। कासियों का गण मगध-साम्राज्य में मिल ही चुका है और अंग, बंग, कलिंग के महाराज मेरे अधीन हैं। मल्ल लड़खड़ा रहे हैं। मेरे अधीन भी पचास सहस्र सेना सुरक्षित है, जो इच्छानुसार उपयोग में लाई जा सकती है। फिर कलिंग महाराज ने बीस सहस्र सैन्य और सौ जलतरी देने का वचन दिया है..."

"परन्तु, भन्ते सेनापति..."

"भद्र, पहले पत्र पढ़ लो।"

सोम ने फिर पढ़ना प्रारंभ किया :

"आपका ध्यान मैं तीन बातों की ओर आकर्षित किया चाहता हूं। प्रथम यह कि सम्राट ने श्रावस्ती पर चढ़ाई कर दी है। श्रावस्ती के महाराज प्रसेनजित् कौशाम्बीपति उदयन से उलझ रहे हैं। सम्राट इसी अभिसन्धि से लाभ उठाना चाहते हैं। उधर अवन्तिराज चण्डमहासेन ने भी उन्हें उकसाया है। परन्तु मुझे विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि सम्राट के कोसल पर अभियान करने का छिद्र पाकर चण्डमहासेन मगध की ओर आ रहा है। आर्य वर्षकार इस ओर सावधान अवश्य हैं,

परन्तु आपके चम्पा में फंस जाने तथा सम्राट के अवध पर अभियान करने से मगध की रक्षा चिन्तनीय हो गई है। तिसपर महामात्य कहीं गुप्त यात्रा पर गए हैं, तथा नगर मेरे अधीन है। इससे इस समय चण्डमहासेन का मगध पर अभियान हमें बहुत भारी पड़ सकता है, यद्यपि चाणाक्ष आर्य वर्षकार एक युक्ति कर गए हैं।"

इतना पत्र सुन चुकने पर सेनापति आसन से उठकर टहलने और बड़बड़ाने लगे। वे कह रहे थे—"सम्राट की मति मारी गई है अथवा यह वर्षकार की अभिसन्धि है? वे क्या बन्धुल मल्ल के शौर्य को नहीं जानते? अस्तु, पढ़ो पत्र, सोम!"

"देवी अम्बपाली को सम्राट ने उपहार भेजा था। वह उसने लौटा दिया। सम्राट इसपर बहुत उद्विग्न हुए हैं। आर्य वर्षकार उन्हें इस कार्य के लिए उकसा रहे हैं। वे चाहते हैं कि जल्द से जल्द किसी बहाने वैशाली पर आक्रमण हो जाए। असल बात यह है कि वे अम्बपाली से किसी प्रकार सम्राट की घनिष्ठता बढ़ाकर काश्यप की विषकन्या का अम्बपाली के आवास में प्रवेश करना चाहते हैं। परन्तु सम्राट ने स्पष्ट रूप में मगध छोड़ते समय आदेश दिया था कि उसका प्रयोग चम्पाधिपति पर किया जाए। आश्चर्य नहीं कि वह इस पत्र से प्रथम ही चम्पा पहुंच चुकी हो।"

सोम के माथे से पसीना चूने लगा। सेनापति क्रुद्धभाव से धम्म से आसन पर आ बैठे। बैठकर उन्होंने कहा—"समझा, वह कुटिल ब्राह्मण इसीलिए सेना नहीं भेज रहा था। अच्छा, और क्या लिखा है?"

सोम ने पढ़ा: "मथुरा का अवन्तिवर्मन, सुना है, मगध पर आक्रमण की तैयारी कर रहा है। इसीसे सम्राट ने मुझे उसका अवरोध करने को सीमाप्रान्त पर जाने का आदेश दिया था। परन्तु आर्य वर्षकार ने वह आदेश रद्द कर दिया और राजधानी का कार्यभार मुझे सौंपकर स्वयं अन्तर्धान हो गए हैं।"

"ठहरो सोम, सोचने दो—वह कुटिल गया कहां?"

सोम चुपचाप खड़ा रहा। सेनापति ने एकाएक उद्विग्न होकर कहा: "सोम, यह क्या सम्भव नहीं कि वर्षकार चम्पा ही में आया हो?"

"यदि ऐसा है तो, आर्य, हमें बहुत सहायता मिलेगी।"

"परन्तु श्रेय?" सेनापति भद्रिक की भृकुटी टेढ़ी हुई। मगध के ख्यातनामा वीर सेनानायक की यह कुटिल राज्य-वासना देखकर सोम विचार में पड़ गया।

सेनापति ने बड़ी देर चुप रहकर दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"सोमभद्र, चाहे जो हो, श्रावस्ती में सम्राट को अवश्य मुंह की खानी पड़ेगी। हां, वैशाली का गणतन्त्र मगध साम्राज्य की गहरी बाधा है। क्यों न फिर अम्बपाली ही हमारी सम्पूर्ण कूटनीति और विग्रह का केन्द्र रहे ! होने दो सम्राट की उसपर आसक्ति। हमारे लिए लाभ ही लाभ है। तो भद्र सोम, मैं तुम्हें दो गुरुतर संदेश देता हूं। कदाचित् अब हम लोग न मिल सकें। यदि तुम्हारी योजना सफल हो तब भी और न हो तब भी, जितना सम्भव हो, द्रुतगति से चम्पा से प्रस्थान करना और सेनापति उदायि से मिलकर मेरा मौखिक संदेश कहना कि जल्द न करें। सर्वथा नष्ट कर देने की अपेक्षा अपनी कल्पनाओं को कुछ काल के लिए स्थगित कर देना अधिक अच्छा है।"

इतना कहकर सेनापति चुपचाप एकटक युवक के मुख की भाव-भंगी को देखते रहे। युवक लौह-स्तम्भ के समान स्थिर खड़ा रहा। उसने कहा—"भन्ते सेनापति का सन्देश अक्षरशः आर्य उदायि की सेवा में पहुंच जाएगा।"

"तब दूसरी बात भी सुनो, सौम्य !" सेनापति ने और भी निकट मुंह करके और भी धीरे से कहा :

"मेरे महान प्रतिद्वन्द्वी इस ब्राह्मण वर्षकार को अपना विश्वास-पात्र बनाना। केवल वैशाली का पतन ही ऐसा है, जिसपर मैं, सम्राट और यह कुटिल ब्राह्मण तीनों का त्रिकूट सहमत है, यद्यपि तीनों की भावनाएं पृथक् हैं। सम्राट अम्बपाली को प्राप्त किया चाहते हैं और यह ब्राह्मण उत्तर भारत से संपूर्ण गणराज्यों का उन्मूलन किया चाहता है। किन्तु मेरा उद्देश्य कुछ और ही है।" कुछ देर ठहरकर सेनापति ने कहा—"भद्र सोम, उदायि से कहना कि ऐसा करें, जिससे यह कुटिल ब्राह्मण स्वयं वैशाली जाए और सूनी राजधानी में अकेले सम्राट ही रह जाएं।"

सेनापति की आंखों से एक चमक निकलने लगी। उनका स्वर उद्विग्न हो गया। पर उन्होंने शान्त ही रहकर कहा—"सोमभद्र, थोड़ी बातें और शेष हैं। मेरी पचास सहस्र रक्षित सन्य है, उसका मैं तुम्हें अधिनायक नियत करता हूं। आवश्यकता होने पर उसका उपयोग मगध के लिए करना।"

युवक ने मौनभाव से सेनापति का आदेश ग्रहण किया। सेनापति ने कहा—"तो भद्र सोम, अब दो दण्ड रात्रि व्यतीत हो रही है।

तुमने जिस कठिन असाध्य साधन का संकल्प किया है, उसकी वेला निकट है। अपना अद्‌भुत काम करो। मैं अनिमेष भाव से उसके फलाफल का निरीक्षण करूंगा।"

सोम अभिवादन करके जाने लगे तो सेनापति ने लपककर उन्हें खींचकर छाती से लगा लिया और कहा—"ऐसे नहीं सोमभद्र, आज के अभियान के सेनानायक मैं नहीं, तुम हो। अभिलाषा करता हूं कि सफल हो।"

२१. आक्रमण

चन्दन नद में ज्वार आ रहा था। अपने बीस आरोहियों को लेकर एक नौका जल के प्रवल थपेड़ों पर नाचती हुई आकर निःशब्द दक्षिण बुर्ज के नीचे रुक गई। साहसी मांझी ने यत्न करके पत्थर की चट्टानों से टकराती लहरों से नौका को बचाकर ठीक बुर्ज के नीचे उसी चट्टान के निकट लगा दिया। सोम सबसे पहले चुपचाप नीचे उतरा। उसके पीछे अश्वजित् था। अश्वजित् ने बुर्ज के तल में जाकर देखा, एक मजबूत रस्सी लटक रही है और सोम का वह असुर साथी, जिसे सब शव कहकर पुकारने लगे थे, उसकी यत्न से रक्षा कर रहा है। सोम का संकेत पाकर बीस योद्धा अपने-अपने खड्ग कोष से खींच और दांतों में दवाकर रस्सी के सहारे बुर्ज पर चढ़ने लगे। तीन सौ हाथ ऊंची सीधी ढालू चट्टान पर स्थित उस बुर्ज पर चढ़ना कोई हंसी-खेल न था। परन्तु वीरों की यह टोली भी कोई साधारण टोली न थी। सबसे पहले शव, फिर अश्वजित् और उसके बाद एक के बाद दूसरा, कुल बीस योद्धा और सबके अन्त में सोम बुर्ज पर पहुंच गए। प्रत्येक आदमी बुर्ज पर पेट के बल लेट गया। अश्वजित् का भाई पहरे पर नियुक्त था। उसने धीरे से सोम के निकट आकर कहा—"पहरा बदलने का समय हो गया है। सबसे पहले नये प्रहरियों को काबू में करना होगा। वे चार हैं और आधे ही दण्ड में आनेवाले हैं।" सोम ने अपने योद्धाओं को आवश्यक आदेश दिए। प्रत्येक व्यक्ति चुपचाप प्राचीर पर लेटा हुआ था और प्रत्येक के हाथ में नग्न खड्ग था।

चारों नये प्रहरी वेसुध चले आए और अनायास ही काबू कर लिए गए। एक शब्द भी नहीं हुआ।

सोम ने कहा—"अब ?"

"अब हमें सिंहद्वार के रक्षकों पर अधिकार करना होगा। कुल सोलह हैं। परन्तु निकट ही दो सौ सशस्त्र योद्धा सन्नद्ध हैं। खटका होते ही वे आ जाएंगे।"

"देखा जाएगा। समय क्या है?"

अश्वजित् ने आकाश की ओर देखकर कहा—"तीन दण्ड रात्रि जा चुकी है।"

"तो अभी हमें एक दण्ड समय है।"

इसके बाद अश्वजित् के भाई बाहुक की ओर देखकर उसने कहा—"मित्र, तुम्हें अभी और भी हमारी सहायता करनी होगी।"

"मैं मगध का सेवक हूं।"

"तो मित्र, यह मद्यभाण्ड लो और झूमते हुए सिंहद्वार तक चले जाओ। जितना संभव हो, प्रहरियों को मद्य पिलाओ और तुम उन्मत्त का अभिनय करके वहीं पड़े रहो, जब तक कि हम लोग न पहुंच जाएं। ठीक चार दण्ड रात बीतने पर सेनापति दुर्गद्वार पर बाहर से आक्रमण करेंगे।"

अश्वजित् के भाई ने हंसकर कहा—"और तब तक यह क्वासित मद्य उनके पेट में अपना काम कर चुका होगा तथा सेनापति को द्वार उन्मुक्त मिलेगा। मैं अब चला। आपका कल्याण हो।"

सोम आवश्यक व्यवस्था में जुट गए और उनके आदेश को लेकर उनके साहसी भट दांतों में खड्ग दबाए सिंहद्वार के चारों ओर को पेट के बल खिसकने लगे। सब कुछ निःशब्द हो रहा था।

२२. चम्पा का पतन

महाराज दधिवाहन कुण्डली के उज्ज्वल उन्मादक रूप पर मोहित हो गए। कुण्डली के यौवनमत्त नयन और उद्वेगजनक ओष्ठ, स्वर्ण देह-यष्टि, इन सबने महाराज दधिवाहन को कामान्ध कर दिया। वे उस पर मोहित होकर ही उसे अपनी कन्या चन्द्रभद्रा की सखी बनाकर रंग-महल में लाए थे। पर जब उन्होंने जाना कि वह कुमारी है और प[illegible]पुरी का वह रत्नविक्रेता कोई ऐसा-वैसा व्यक्ति नहीं, सम्राटों के समकक्ष सम्पत्तिशाली है, तो महाराज के मन में रत्नविक्रेता की कन्या से विवाह करने की अभिलाषा जाग्रत् हो गई।

आज वैशाखी-पर्व का दिन था। इस दिन महाराज की आज्ञा से

कुमारी चन्द्रभद्रा ने अपनी सखी कुण्डनी के आतिथ्य में नृत्य-पान-गोष्ठी का आयोजन किया था। उसमें महाराज दधिवाहन ने भी भाग लिया था। अर्द्धरात्रि व्यतीत होने तक नृत्य-पान-गोष्ठी होती रही। कुमारी अस्वस्थ होने के कारण जल्दी ही शयनागार में चली गई। कुण्डनी महाराज दधिवाहन का मनोरंजन करती रही। वह चषक पर चषक सुवासित मद्य महाराज को देती जा रही थी।

अवसर पाते ही महाराज ने दासियों और अनुचरों को वहां से चले जाने का संकेत किया। एकांत होने पर महाराज ने कहा—"सुभगे कुण्डनी, तुम्हारा अनुग्रह अनमोल है।"

"देव इतना शिष्टाचार एक साधारण रत्नविक्रेता की कन्या के प्रति प्रकट करके उसे लज्जित कर रहे हैं।"

"नहीं, नहीं, कुण्डनी, तुम्हारे पिता के पास अलौकिक रत्न हैं, पर तुम-सा एक भी नहीं।"

"किन्तु, देव, आपके महल में एक से एक बढ़कर रत्न हैं।"

"नहीं, प्रिये कुण्डनी, मुझे कहने दो। मैं तुम्हारा अधिक अनुग्रह चाहता हूं।"

"देव की क्या आज्ञा है ?"

"कुण्डनी प्रिये, मैं जानता हूं—तुम अभी अदत्ता हो। क्या तुम चम्पा की अधीश्वरी बनना पसंद करोगी ?"

कुण्डनी ने हंसकर कहा—"तो देव मुझे पट्टराजमहिषी का कोप-भाजन बनाना चाहते हैं ! लीजिए एक पात्र।"

"परन्तु अनुग्रह-सहित।"

"कैसा अनुग्रह, देव ?"

"इसे उच्छिष्ट कर दो, प्रिये, अपने मृदुल अधरों का एक अणु रस इसमें मिला दो। प्रिये कुण्डनी, एक अणु रस।"

"यह चम्पाधिपति की मर्यादा के विपरीत है देव, चषक लीजिए।"

"नहीं, नहीं, कुण्डनी," कहते हुए महाराज दधिवाहन ने अधीरतापूर्वक कुण्डनी को आलिंगनपाश में कस लिया और कुण्डनी फूलों के एक ढेर की भांति महाराज दधिवाहन के ऊपर झुक गई। महाराज दधिवाहन ने ज्योंही कुण्डनी का अधरोष्ठ चुंबन किया, त्योंही वे तत्काल मृत होकर पृथ्वी पर गिर गए। कुण्डनी हांफते-हांफते एक ओर खड़ी होकर उनके निष्प्राण शरीर को देखने लगी।

इसी समय एक अग्निबाण वहां आकर गिरा। उसमें से अति

तीव्र लाल रंग का अग्नि-स्फुलिंग निकल रहा था। उससे क्षणभर ही में उस सुसज्जित कक्ष में आग लग गई। बहुमूल्य कौशेय, उपाधान, पट्टवासक और मणिजटित साज-सज्जाएं जलने लगीं। देखते-देखते एक, दो, तीन, फिर अनेक अग्निबाण रंगमहल के विविध स्थलों पर गिर-गिरकर आग लगाने लगे। महल धांय-धांय जलने लगा। अन्तःपुर में भीषण कोलाहल उठ खड़ा हुआ। मार-काट, शस्त्रों की झनकार, स्त्रियों के चीत्कार और योद्धाओं की हुंकार से दिशाएं भर गईं। बहुत-से सैनिक इधर-उधर दौड़ने लगे।

कुण्डनी ने महाराज दधिवाहन के पार्श्व में पड़ा खड्ग उठा लिया और एक कौशेय से कसकर अंग लपेट लिया। इसी समय रक्त से भरा खड्ग हाथ में लिए सोम ने आकर कहा—"कुण्डनी, शीघ्रता करो, एक क्षण विलम्ब किए बिना तुम गुप्त द्वार से अश्वशाला के पार्श्व भाग में जाओ। वहां अश्व-सहित शंब है। तुम सीधे श्रावस्ती का मार्ग पकड़ना। मेरी प्रतीक्षा में रुकना नहीं, अपना कार्य पूर्ण कर मैं कहीं भी मार्ग में मिल जाऊंगा।"

२३. वादरायण व्यास

वैशाली के ठीक ईशान कोण पर लगभग वैशाली और राजगृह के अग्र मार्ग में, पाटलिपुत्र से थोड़ा पूर्व की ओर हटकर, गंगा के उपकूल पर एक बहुत प्राचीन मठ था। वह मठ वादरायण मठ के नाम से प्रसिद्ध था। उस मठ की बड़ी भारी प्रतिष्ठा थी। देश-देशान्तर के सम्राटों और सामंतों से समय-समय पर अर्पित ग्राम, सुवर्ण और गौ तथा सम्पत्ति से मठ बहुत सम्पन्न था।

मठ की ख्याति और उसकी प्रतिष्ठा जो दिग्दिगंत में फैल रही थी, उसका कारण भगवान वादरायण व्यास थे, जो इस मठ के गुरुपद थे। उनके चरणों में बैठकर देश-देशान्तर के बटुक विविध विद्याओं का अध्ययन करते और ज्ञान-सम्पदा से परिपूर्ण होकर अपने देशों को लौटते थे।

भादों का संध्याकाल था। आकाश पर काली घटाएं छा रही थीं। गंगा का विस्तार सागर के जैसा हो रहा था। उस पार दूर तक जल ही जल दीख पड़ता था। वृक्ष आधे जल में डूबे दूर से लतागुल्म जैसे प्रतीत होते थे। भगवान वादरायण मठ के पश्चिम ओर के

भाग में एक ऊंचे शिलाखण्ड पर खड़े भागीरथी गंगा का यह विस्तार देख रहे थे। उन्हींके निकट एक ब्रह्मचारी युवा विनम्रभाव से खड़ा था। भगवान वादरायण बोले—"सौम्य मधु, गंगा का विस्तार तो बढ़ता जाता है। उस ओर के जो ग्राम डूब गए थे, वहां उपयुक्त सहायता भेज दी गई है न ?"

ब्रह्मचारी ने विनयावनत होकर कहा—"भगवन् के आदेश के अनुसार दो सौ नावें कल ही भेज दी गई थीं। वे अपना कार्य कर रही हैं।"

"यह अच्छा है, परन्तु खाद्य-सामग्री क्या प्रचुर मात्रा में है ?"

"जी हां, भगवन्, परन्तु चिकित्सकों की कमी है। फिर भी रक्षण-क्षेत्र में सर्वोत्तम चिकित्सा की व्यवस्था है।"

"व्यवस्था तो विपद-क्षेत्रों में भी होनी चाहिए, मधु ! क्या गणपति को तुमने सहायता के लिए नहीं लिखा ? ये ग्राम तो वज्जीगण ही के हैं ?"

"जी हां, भगवन्, लिख दिया है। आशा है, उपयुक्त सहायता शीघ्र मिल जाएगी।"

भगवान वादरायण हर-हर करती गंगा की अपरिसीम धारा को देखते रहे। फिर कुछ देर बाद स्निग्ध स्वर में कहा—"ठीक है, मधु, सांध्यकृत्य का समय हो गया। चलो, अब भीतर चलें। परन्तु मधु, आज एक संभ्रांत अतिथि आनेवाले हैं। वे गंगा की राह आएंगे या राजमार्ग से, यह नहीं कहा जा सकता। दोनों ही मार्ग अगम्य हैं, परन्तु वे आएंगे अवश्य। तुम उनकी प्रतीक्षा करना और उनके विश्राम आदि की यत्न से सम्यक् व्यवस्था कर देना, तथा उषाकाल में उन्हें मेरे पास गर्भगृह में ले आना।"

बटुक ने मस्तक नवाकर आदेश ग्रहण किया।

२४. सम्मान्य अतिथि

आकाश में वादल घिर रहे थे। उनके बीच कभी-कभी चतुर्थी का क्षीण-काय चन्द्र दीख पड़ता था, जिससे रात्रि का अंधकार थोड़ा प्रति-भासित हो उठता था। ब्रह्मचारी कभी आंखें बन्द किए और कभी खोलकर देख लेता था। उसका ध्यान गुरुपद की आज्ञा पर था। कौन वह सम्मान्य अतिथि आज रात को आनेवाले हैं, जिसके लिए गुरुपद

ने इतने यत्न से आदेश दिया है ? उसीकी अभ्यर्थना के लिए उसने हृ
पूर्वक रात्रि-जागरण करने का निश्चय कर लिया।

दो दण्ड रात्रि व्यतीत होने पर उस नीरव रात्रि में उसे प्रती
हुआ, जैसे सुदूर पर्वत-उपत्यका से कुछ अस्फुट शब्द रुक-रुककर
रहा है। वह समझ गया कि अश्व-पद की ध्वनि है। अश्व एक नहीं
अधिक हैं। कुछ ही देर में मठ के पीछे के प्रान्त द्वार पर प्राचीर
निकट कुछ आहट प्रतीत हुई। वह झटपट अपने उत्तरवासक को कम
में लपेटकर मठ के प्रान्त द्वार पर गया। देखा, कोई दस हाथ के अन्त
पर एक मनुष्य की छाया है, पार्श्व में दो अश्व हैं।

उसने दोनों हाथ ऊंचे करके कहा—"भन्ते अतिथि, आपका म
में स्वागत है। मैं भगवान वादरायण के आदेश से आपके स्वागता
प्रतीक्षा कर रहा था।"

ब्रह्मचारी के वचन सुनकर छायामूर्ति अन्धकार में आगे बढ़ी
मन्दिर के क्षीण आलोक में ब्रह्मचारी ने देखा, वह एक वृद्ध भट है
वृद्ध ने मस्तक झुकाकर ब्रह्मचारी को अभिवादन करके कहा :

"हमें क्षमा करें भन्ते, मार्ग में बहुत वर्षा होने से हमें अति विलं
हो गया और असमय में आपको कष्ट देना पड़ा।"

इससे पूर्व कि ब्रह्मचारी इसका कुछ उत्तर दे, एक अन्य छायामू
आगे बढ़ी। ब्रह्मचारी उसे उस धूमिल प्रकाश में देखकर स्तंभित
गया। वह स्वप्न में भी नहीं सोच सका था कि जिस सम्मान्य अति
की वह प्रतीक्षा कर रहा था, वह कोई महिला है। उसने एक ही दृ
से देखा, महिला असाधारण सुन्दरी और गौरवशालिनी है। उस
आगे बढ़कर युवा ब्रह्मचारी से मधुर शब्दों में कहा—"भन्ते ब्रह्मचा
हम लोग बहुत थक गए हैं। कष्ट करके अभी हमारे विश्राम
व्यवस्था कर दीजिए, प्रभात में हम भगवान वादरायण की पाद-वन्द
करेंगे।"

तरुण ब्रह्मचारी को जब गुरुपद ने आग्रहपूर्वक एक संभ्रा
अतिथि के आने का संकेत किया है, तब वह अवश्य ही कोई महामहि
अतिथि होगा, ऐसा समझकर युवक विनय से बोला—"देवी, इधर
पधारें।"

आगे-आगे ब्रह्मचारी और उसके पीछे अतिथि पेचीदे मार्गों
घूमते हुए मठ के भीतर प्रांगण में आए।

फिर ब्रह्मचारी ने एक सुसज्जित कक्ष में अतिथियों को ला खड़

किया। कक्ष में विश्राम और सुख के सब राजसी साधनों को देखकर अतिथि स्तंभित रह गए। महिला ने मृदु-मन्द हास्य से कहा :

"भगवान वादरायण का ऐसा वैभव है !"

ब्रह्मचारी ने संकुचित होकर कहा—"समुचित व्यवस्था नहीं कर सका। गुरुपद ने सन्ध्या-समय ही आदेश दिया था। आपको कोई आवश्यकता हो तो कहिए।"

"नहीं, नहीं, कुछ नहीं, हमें केवल विश्राम ही की आवश्यकता है।"

ब्रह्मचारी विनय से मस्तक झुकाकर मठ के बाहरी प्रांगण की ओर धीरे-धीरे अग्रसर हुआ। अभी केवल दो स्थल दीप बाहरी दीपाधारों में जल रहे थे, उन्हींके प्रकाश में उसने देखा—उत्तर द्वार के सम्मुख बड़ी पौर के निकट एक मनुष्य-मूर्ति दीप-स्तंभ के नीचे खड़ी है। प्रथम उसे भ्रम हुआ, फिर निश्चय होने पर उसने उसके तनिक निकट जाकर पुकारा—"कौन है ?"

उत्तर संक्षिप्त मिला :

"अतिथि।"

ब्रह्मचारी ने बिलकुल निकट जाकर देखा। अतिथि असाधारण है। वह एक दीर्घकाय, बलिष्ठ एवं गौरवर्ण पुरुष है। उसकी मुखाकृति अति गंभीर, आकर्षक और प्रभावशाली है। उसकी बड़ी-बड़ी आंखों से शक्ति का स्रोत बह रहा है। उसके वस्त्र बहुमूल्य हैं। उष्णीष की मणि उस अन्धकार में भी शुक्र नक्षत्र की भांति चमक रही है। कमर में एक विशाल खड्ग है और हाथ में एक भारी बर्छा। खड्ग पर मणि-माणिक्य जड़े हैं जो उस अन्धकार में भी चमक रहे हैं। वह थकित भाव से अपने बर्छे का सहारा लिए खड़ा है।

देखकर ब्रह्मचारी दो कदम पीछे हट गया। फिर ससम्भ्रम आगे बढ़कर उसने कहा—"भन्ते, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं ?"

"मुझे रात्रि व्यतीत करने को थोड़ा स्थान चाहिए और यदि थोड़ा गर्म दूध मिल जाए तो अत्युत्तम है।"

ब्रह्मचारी कुछ असमंजस में पड़कर बोला—"किन्तु इस समय उपयुक्त···"

"नहीं, नहीं, आयुष्मन्, शिष्टाचार की आवश्यकता नहीं; भगवान वादरायण के पुनीत स्थान में सब उपयुक्त है।"

"तब आप आइए मेरी कुटी में।"

और बातचीत नहीं हुई। कुटी में आकर ब्रह्मचारी ने दीप जलाया। इस बार उसने फिर अतिथि की ओर देखा। अपनी क्षुद्र एवं दरिद्र कुटिया में इस अतिथि को लाने के कारण वह संकुचित हो गया।

कुटिया छोटी ही थी। उसमें बीच में एक काष्ठफलक पर कृष्णाजिन बिछा था। एक भद्रपीठ पर जल का पात्र, थोड़ी पुस्तकें और एक-दो आवश्यक वस्तुएं ही वहां थीं।

"अच्छा, तो यह तुम्हारी ही कुटी है, आयुष्मन् ?"

"जी हां, भन्ते।"

"और ये शस्त्रास्त्र ?" उन्होंने हठात् एक धनुष को दीवार से खींचकर क्षण-भर ही में उसकी प्रत्यंचा चढ़ा दी।

तरुण ने अतिथि के असाधारण सामर्थ्य और हस्तलाघव से चमत्कृत होकर कहा—"कभी-कभी गुरुपद मुझे अभ्यास कराते हैं।"

"साधु आयुष्मन् ! इसकी कभी आवश्यकता पड़ सकती है।" उन्होंने रहस्यपूर्ण हास्य होंठों में लाकर धनुष को दीवार पर टांग दिया। "तो मैं इस कृष्णाजिन पर विश्राम करूंगा, किन्तु तुम ?"

"मेरे लिए बहुत व्यवस्था है, भन्ते ! इस पात्र में दूध है और सूखा हुआ कौशेय प्रावार और कौजव खूंटी पर है।"

"ठीक है, आयुष्मन्, अब मैं विश्राम करूंगा।"

२५. गर्भगृह में

गर्भग्रह में माधव ब्रह्मचारी के साथ हठात् अम्बपाली को आते देख भगवान वादरायण व्यास ने आश्चर्य मुद्रा से कहा :

"अरे, देवी अम्बपाली !"

माधव ब्रह्मचारी ने ज्योंही वह अतिश्रुत नाम सुना, वह अकचकाकर अम्बपाली की ओर ताकता रह गया।

अम्बपाली ने पृथ्वी पर गिरकर प्रणिपात किया। भगवान वादरायण ने स्वस्ति कहकर कहा—"तुम्हारा कल्याण हो, जनपद कल्याणी अम्बपाली। कहो, तुम्हारा यह अकस्मात् आगमन क्यों ?"

"अविनय क्षमा हो, मैं प्रथम से आदेश पाए बिना ही चली आई। किन्तु सर्वदर्शी भगवत्पाद ने इस अकिंचन के विश्राम-आतिथ्य की जो असाधारण व्यवस्था की, उससे मैं अति कृतार्थ हुई।"

"किन्तु, किन्तु !..." भगवान वादरायण ने तरुण बटुक की ओर

प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

ब्रह्मचारी ने अटकते हुए कहा—"भगवत्पाद का आदेश यथाशक्ति पालन किया गया।"

"क्या रात्रि में और कोई अतिथि नहीं आए?"

माधव ने सावधान मुद्रा से कहा—"एक राजवर्गी सामन्त भी हैं।" उसी समय एक छाया ने गर्भगृह में प्रवेश किया। उसे देखकर भगवान वादरायण कुछ असंयत हुए। उन्होंने दोनों हाथ उठाकर कहा:

"मगध-सम्राट की जय हो!"

तब तक मगध-सम्राट का मस्तक भगवान वादरायण के चरणों में झुक गया।

सम्राट का नाम सुनते ही माधव स्तंभित हो गया। वह अपनी अविनय पर विचार करने लगा। भगवत्पाद के संकेत से उसने आसन की व्यवस्था की।

स्वस्थ होकर बैठने के बाद सम्राट ने हंसकर कहा—"भगवत्पाद का आशीर्वाद विलम्ब से मिला। प्रसेनजित् ने मुझे करारी हार दी है। अभियान के समय मैं भगवत्पाद के दर्शन नहीं कर सका। वार्षभि विदूडभ ने मुझे डुबोया। उसीने लिखा था कि श्रावस्ती पर अभियान का यही समय है, बूढ़े कामुक महाराज प्रसेनजित् अब कुछ न कर सकेंगे, वे कौशाम्बीपति उदयन से उलझे हुए हैं और सेनापति कारायण से मिलकर मैं संपूर्ण सेना में विद्रोह कर दूंगा।"

"और सम्राट उसीके बल पर श्रावस्ती पर चढ़ दौड़े!" भगवान वादरायण ने मन्दस्मित करके कहा। सम्राट ने लज्जा से सिर झुका लिया। भगवान वादरायण फिर बोले:

"बन्धुल मल्ल और उसके बारह परिजनों के विक्रम का विचार नहीं किया?"

"आर्य वर्षकार ने आपत्ति की थी। वे पूरी शक्ति चम्पा-विजय में लगाकर तब इधर ध्यान देने के पक्ष में थे।"

अम्बपाली की ओर अभी तक सम्राट की दृष्टि नहीं गई थी। अब उन्होंने भी इधर देखा। घृत-दीप के मन्द-पीत प्रकाश में अम्बपाली उन्हें एक सजीव चम्पक पुष्पगुच्छ-सी दीख पड़ी।

इसी समय भगवान वादरायण खिलखिलाकर हंस पड़े। दोनों ने चकित होकर उनकी ओर देखा। उन्होंने कहा:

"खूब हुआ! सम्राट के लिए जो व्यवस्था की गई थी, उसका

देवी अम्बपाली ने उपयोग किया। फलतः सम्राट को माधव की कुटिया के काष्ठफलक पर रात्रि व्यतीत करनी पड़ी।"

अम्बपाली ने आगे बढ़ और करबद्ध हो सम्राट का अभिवादन किया। फिर मधुर कण्ठ से कहा—"सम्राट की जय हो! मुझसे अनजाने ही यह अपराध हो गया।"

सम्राट ने हंसकर कहा—"आप्यायित हुआ। यह जानकर कि जनपद कल्याणी देवी अम्बपाली ने मेरे लिए नियोजित कक्ष में शयन-सुख उठाया, हर्षित हुआ।"

"अनुगृहीत हुई।"

"भला एक अनुग्रह तो स्वीकार किया देवी अम्बपाली ने। अब मुझे प्रसेनजित् से पराजित होने का क्षोभ नहीं है।" सम्राट ने हंसकर दोनों हाथ फैलाए।

भगवान वादरायण ने हंसकर कहा :

"लाभ है, लाभ है। सुश्री अम्बपाली, तो मैं आज रात्रि में तुमसे वार्तालाप करूंगा।"

"जैसी आज्ञा भगवन्!" उसने प्रथम भगवान वादरायण को और फिर मगध-सम्राट को सिर झुकाकर अभिवादन किया और कक्ष से चली गई।

एकान्त होने पर भगवान वादरायण ने कहा :

"तो आपकी महत्त्वाकांक्षा ने वर्षकार की बात पर विचार नहीं करने दिया?"

"इसीसे तो भगवन्, करारी हार खाई, परन्तु…"

"वैशाली में ऐसा अवसर न आने पाएगा, क्यों?"

"भगवत्पाद जब हृद्गत भाव से अवगत है तो मैं आशीर्वाद की आशा करता हूं।"

"सम्राट को उसकी क्या आवश्यकता है? विजय के लिए उनकी सेना और कूटनीति यथेष्ट है।"

"किन्तु यह तो भगवत्पाद का कोप-वाक्य है। भगवान प्रसन्न हों।"

भगवान वादरायण ने मन्द हास करके कहा :

"नहीं, नहीं, सम्राट, कोप नहीं। परन्तु सम्राटों और विरक्तों का दृष्टिकोण सदा ही पृथक् रहता है।"

"परन्तु भगवन्, जहां जनपद-हित और व्यवस्था का प्रश्न है, वहां

सम्राट और विरक्त एक ही मत पर रहेंगे।"

"फिर भी सम्राट, विरक्त सदैव कर्तव्य पर विचार करेगा और सम्राट अधिकारों पर। ये ही अधिकार युद्ध, रक्तपात और अशांति की जड़ हैं, यद्यपि वे सदैव जनपद-हित और व्यवस्था के लिए किए जाते हैं।"

"अविनय क्षमा हो, भगवन् ! इस युद्ध, रक्तपात और अशांति में भी एक लोकोत्तर कल्याण-भावना है। भगवान् भली भांति जानते हैं कि छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य छोटे-छोटे स्वार्थों के कारण परस्पर लड़ते रहते हैं। साम्राज्य ही उन्हें शांत और समृद्ध बनाता है। साम्राज्य में राष्ट्र का बल है, साम्राज्य जनपद की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था है।"

भगवत्पाद हंस दिए। उन्होंने कहा—"इसीसे सम्राट छोटे-से वैशाली के गणतन्त्र को मगध साम्राज्य में मिलाना चाहते हैं?"

सम्राट ने कुछ लज्जित होकर कहा—"भगवन्, स्वाधीनता सर्वत्र ही अच्छी वस्तु नहीं है। यह दासता की ध्वनि है और इसके मूल में आपाद अशांति, अव्यवस्था और उत्क्रान्ति है।"

भगवत् ने किंचित् हास्य कर कहा—"तो कौशाम्बीपति उदयन ने श्रावस्ती-अभियान में आपको सहायता नहीं दी?"

"यही तो हुआ भगवन् ! विदूडभ ने यही तो कहा था कि कौशाम्बीपति ससैन्य सीमाप्रांत पर सन्नद्ध हैं; ज्योंही मगध सैन्य का आक्रमण होगा, वे उस ओर से घुस पड़ेंगे।"

"यह अभिसन्धि कदाचित् बन्धुल मल्ल ने नहीं पूरी होने दी?"

"नहीं भगवन्, आर्य यौगन्धरायण ने उदयन को आक्रमण न करके हमारे युद्ध का परिणाम देखने की सम्मति दी। कौशाम्बीपति यौगन्धरायण की सम्मति अमान्य कर सकते थे, पर गन्धारनन्दिनी कलिंगसेना का अनुरोध न टाल सके। देवी कलिंगसेना ही के लिए उदयन ने कोसल पर आक्रमण किया था; परन्तु कलिंगसेना ने ही जब यह सन्देश भेजा कि मैंने कोसलेश को आत्मसमर्पण कर दिया है, कौशाम्बीपति को मेरे लिए अभियान धर्मसम्मत नहीं है, तब कौशाम्बीपति निरुपाय हो युद्ध-विरत हो गए।"

भगवान वादरायण ने कहा—"तो सम्राट अब नित्यकर्म से निवृत्त हो विश्राम करें। और बातें फिर होंगी।" कहकर वे उठ खड़े हुए।

२६. भारी सौदा

अम्बपाली ने अपने कक्ष में सम्राट को आमन्त्रित किया। सम्राट के आने पर उनका अर्घ्य-पाद्य से सत्कार करके अम्बपाली ने उन्हें उन्नत पीठ पर बिठाकर कहा—"तो क्या मैं आशा करूं कि सम्राट ने मेरा अपराध क्षमा कर दिया ?"

"कौन-सा अपराध ? पहले अभियोग उपस्थित होना चाहिए।"

अम्बपाली ने मन्दस्मित करके कहा :

"गुरुतर अपराध सम्राट ! मैंने सम्राट के लिए व्यवस्थित कक्ष और अभ्यर्थना का अपहरण जो किया।"

"यह अपराध तो बहुत ही प्रिय और सुखद है, देवी अम्बपाली! मैं चाहता हूं, मेरे जीवन के पल-पल में देवी यह अपराध करें।"

"देव, यह तो मगध-सम्राट की वाणी नहीं है।"

"सत्य है, देवी अम्बपाली, यह एक आतुर प्रणयी का आत्म-निवेदन है।"

"सम्राट की जय हो, देव राजमहिषी के प्रति अन्याय कर रहे हैं।"

"देवी अम्बपाली प्रसन्न हों, वे सम्राट के साथ अत्याचार कर रही हैं।"

"किस प्रकार, देव ?"

"वहां खड़ी रहकर। यहां पास आकर बैठो, एक तथ्य सुनो प्रिये!"

अम्बपाली ने एक पीठ पर बैठकर हंसते हुए कहा :

"देव की क्या आज्ञा होती है ?"

"सुनो प्रिये, सम्राट पर करुणा करो, इसे प्रसेनजित् से ही पराजित नहीं होना पड़ा।"

"शांतं पापं, क्या देव कोई दूसरी दुर्भाग्य-कथा सुनाना चाहते हैं?"

"कथा नहीं, तथ्य प्रिये। इस भाग्यहीन बिम्बसार को प्रणयक्षेत्र में जीवन के आरम्भ ही में हार खानी पड़ी है।"

"देव, यह क्या कह रहे हैं ?"

"वही, जो केवल देवी अम्बपाली से ही कह सकता था। प्यार की वह निधि तो, प्रिये अम्बपाली, अभी तक वहीं उस पुराण-हृदय में धरी है, किसीकी धरोहर की भांति और मैं आजीवन उसके धनी को ही खोजता रहा हूं।"

"हाय, हाय, और देव उसे अभी तक पाने में समर्थ नहीं हुए ?"

"आज हुआ प्रिये, संभाल लो वह सब अपनी पूंजी और इस शुष्क, निस्संग बिम्बसार के जलते हुए सूने जीवन में प्यार की एक बूंद टपका दो। देवी अम्बपाली, प्रिये, मैं आज से नहीं, कब से तुम्हारी बाट जोह रहा हूं। तुमने सदैव मेरी भेंट अस्वीकार करके लौटा दीं, मुझे दर्शन देना भी नहीं स्वीकार किया। किन्तु आज प्रिये, मैंने अनायास ही तुम्हें पा लिया। ओह, प्रसेनजित् का ही यह प्रसाद मुझे मिला! आज हारकर ही मैं भाग्यशाली बना, प्रिये अम्बपाली!"

सम्राट उठ खड़े हुए और दोनों हाथ पसारकर अम्बपाली की ओर बढ़े।

अम्बपाली खड़ी हो गई। उसका हास्य उड़ गया। उसने सूखे कंठ से कहा—"देव, संयत हों। मैं देव से ही सुविचार की अभिलाषा रखती हूं।"

"मैं अन्ततः सुविचार करूंगा, प्रिये!"

"तो देव, मेरा निवेदन है कि सम्राट की यह प्रणय-याचना निष्फल है।"

"ओह, प्रिये, तुमने तो एकबारगी ही आशाकुसुम दलित कर दिया!"

"सुनिए महाराज, आप सम्राट हैं, और मैं वेश्या। हम दोनों ही ने प्रणय के अधिकार खो दिए हैं।"

"किन्तु प्रिये, हम मानव तो हैं; मानव के अधिकार?"

"वे भी हमने खो दिए।"

"तो जाने दो। कृमि, कीट, पतंग, पशु जितने प्राणी हैं, क्या उनकी भांति भी हम प्रेम का आनन्द नहीं ले सकते? दो निरीह पक्षियों की भांति भी नहीं रहे?"

"नहीं, देव, नहीं। जैसे वेश्या होना मेरे लिए अभिशाप है, वैसे ही सम्राट होना आपके लिए। प्रेम के राज्य में प्रवेश करना हम दोनों ही के लिए निषिद्ध है। हम लोग प्रेम का पुनीत प्रसाद पाने के अधिकारी ही नहीं रहे।"

"तब आओ, प्रिये, हम इस अभिशाप को त्याग दें। मैं इस दूषित-अभिशापित सम्राट-पद को त्याग दूं और तुम…तुम…"

"इस…गर्हित वेश्या-जीवन को? सम्राट यही कहा चाहते हैं? परन्तु यह संभव नहीं है, देव! जैसे मैं अपनी इच्छा से वेश्या नहीं बनी हूं, उसी प्रकार आप भी अपनी इच्छा से सम्राट नहीं बने। हम समाज

के बधन्नों और कर्तव्यों के भार से दबे हैं, बचकर निकलने का कोई मार्ग ही नहीं है।"

"कोई मार्ग ही नहीं है ? ओह, बड़ी भयानक बात है यह ! प्रिये अम्बपाली, सखी, तो फिर क्या कोई आशा नहीं ?"

सम्राट ने वेदनापूर्ण दृष्टि से अम्बपाली को देखा। वे धम से आसन पर बैठ गए।

अम्बपाली ने खोखले स्वर से नीची दृष्टि करके कहा :

"आशा क्यों नहीं है सम्राट, बहुत आशा है।"

"ओह, तो प्रिये, फिर झटपट मेरे सौभाग्य का विस्तार करो।" वे फिर उठकर और दोनों हाथ फैलाकर अम्बपाली की ओर चले।

अम्बपाली ने पत्थर की मूर्ति की भांति स्थिर बैठकर कहा— "देव ! आप आसन पर विराजमान हों। मैं निवेदन करती हूं। हमारी आशा यही है देव कि मैं वेश्या हूं और आप सम्राट हैं।"

"यह कैसी बात, प्रिये ? यही तो हमारा परम दुर्भाग्य है !"

"और यही सौभाग्य भी, देव।"

"सौभाग्य कैसे ?"

"दुर्भाग्य निवेदन कर चुकी कि हम प्रणय के अधिकारी नहीं हो सकते।"

"वह तो सुन चुका।"

"परन्तु हम सौदा कर सकते हैं।"

"सौदा ?"

"जी हां, सम्राट। मैं वेश्या हूं, अपना शरीर बेच सकती हूं, और आप सम्राट हैं, उसे मुंहमांगे दाम पर खरीद सकते हैं।"

सम्राट ने उन्मत्त की भांति अपना खड्ग कोष से खींचकर उसे अम्बपाली के पैरों के पास पृथ्वी पर रखकर कहा—"यह मैं अपना सम्पूर्ण साम्राज्य तुम्हारे चरणों में अर्पित करता हूं, प्रिये !"

अम्बपाली ने एक सूखी हंसी हंसी। उसने उठकर आदरपूर्वक खड्ग दोनों हाथों में उठा लिया, फिर उसे आंखों और मस्तक से लगाकर कहा—"सम्राट की जय हो ! यह अधम लांछित नारी मगध साम्राज्य को लेकर क्या करेगी ?" उसने एक ठण्डी सांस लेकर खड्ग सम्राट की कमर में बांध दिया।

सम्राट ने कातर वाणी से कहा :

"अब और तो कुछ मेरे पास बचा नहीं, प्रिये ! यह अधम शरीर

है। पर इसे क्या कहकर तुम्हारी भेंट करूं ? यौवन और रूप सभी कुछ तो पुराना पड़ गया !"

"सम्राट का पुण्य शरीर दैवी वरदान है, देव ! इसीमें सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को एक करने की सामर्थ्य केन्द्रित है।"

"तब ?"

"देव, मेरी एक अभिलाषा है।"

"कहो प्रिये, कहो।"

"आपके औरस से मेरे गर्भ में जो सन्तान हो, वही मगध का भावी सम्राट हो।"

सम्राट ने फिर खड्ग कोष से खींचकर ऊपर उठाया और उच्च स्वर से कहा—"मैं शिशुनागवंशी मगधपति बिम्बसार अपने साम्राज्य की शपथ लेकर यह प्रतिज्ञा करता हूं कि देवी अम्बपाली के गर्भ में मेरे औरस से जो पुत्र होगा, वही मगध का भावी सम्राट होगा।"

"हुआ, महाराज !" अम्बपाली आंखों में आंसू भरकर उठी और एक सौरभमय पुष्पहार उसने सम्राट के गले में डाल दिया और झुककर सम्राट के चरण छुए।

सम्राट ने हर्षित होकर उसे उठाया और अपने कण्ठ से बहुमूल्य मुक्तामाला निकालकर उसके गले में डाल दी और कहा—"प्रसेनजित् के लुटेरों से केवल यही बच पाई, प्रिये।"

"सो वह यहां लुट गई !" अम्बपाली ने हंसकर स्निग्ध स्वर में कहा।

"न, न, खूब अच्छी तरह सुरक्षित ठोर पर पहुंच गई। अब लुटने-पिटने का भय ही नहीं रहा।" यह कहकर उन्होंने अम्बपाली का हाथ पकड़ लिया। उसे आहिस्ता से छुड़ाकर अम्बपाली ने कहा—"देव प्रसन्न हों, सम्राट की एक मर्यादा है और मगध के भावी सम्राट की माता की भी।"

"इतनी निष्ठुर न बनो, प्रिये !"

"सुनिए देव, सम्राट को मगध के भावी सम्राट की माता के हृदय का एक कांटा दूर करना होगा, नहीं तो आपके पुत्र को लजाना पड़ेगा।"

"कहो अम्बपाली, अपना अभिप्राय कहो।" सम्राट ने आसन पर बैठकर जलद गंभीर स्वर में कहा।

"दुहाई सम्राट की ! लिच्छवि गणतन्त्र ने मुझे बलपूर्वक अपने

धिक्कृत कानून के अनुसार वेश्या बनाया है।"

सम्राट का मुंह लाल हो आया।

अम्बपाली ने आंखों में आंसू भरकर कहा—"देव, मेरा अपराध केवल यही था कि मैं असाधारण सुन्दरी थी। मेरा यह अभियोग है कि वैशाली गण को इसका दण्ड मिलना चाहिए।"

सम्राट ने हाथ उठाकर कहा—"मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं अष्ट-कुल के लिच्छवि गणतन्त्र का समूल नाश करूंगा।"

"...और सप्तभूमि प्रासाद के कलुषित वातावरण में..." अम्ब-पाली के होंठ कांप गए।

सम्राट ने कहा—"नहीं, नहीं, प्रिये! देवी अम्बपाली को मैं राज-गृह के राजमहालय में ले जाकर पट्टराजमहिषी के पद पर अभिषिक्त करूंगा। प्रतिज्ञा करता हूं।"

"अनुगृहीत हुई देव, आज मेरा स्त्री-जन्म सार्थक हुआ। अब मुझे एक निवेदन करना है।"

"कहो प्रिये, अब मैं तुम्हारा क्या प्रिय कर सकता हूं?"

"देव, आपकी चिरकिंकरी अम्बपाली इस समय तक विशुद्ध कुमारी है और वह आपकी आमरण प्रतीक्षा करेगी।"

"मैं कृतार्थ हुआ, प्रिये, आह्लादित हुआ।"

सम्राट उठ खड़े हुए। अम्बपाली ने उनके चरण छुए। सम्राट ने उसके मस्तक पर हाथ रखा और कक्ष के बाहर हो गए। अम्बपाली आंखों में आंसू भरे वैसी ही खड़ी रह गई। उसके होंठ कांप रहे थे।

२७. भविष्य-कथन

भगवान वादरायण दीपाधार के निकट बैठे एक भूर्जपत्र पर कुछ लिख रहे थे। माधव ने भू-प्रणिपात करके देवी अम्बपाली के आगमन का संदेश दिया। दूसरे ही क्षण अम्बपाली ने साष्टांग दण्डवत् किया।

भगवान ने हंसकर कहा—"अब कहो, शुभे अम्बपाली, मैं तुम्हारा क्या प्रिय कर सकता हूं?"

अम्बपाली मौन रही। संकेत पाकर माधव चले गए। उनके जाने पर अम्बपाली ने कहा—"भगवान, इस समय क्या किसी गुरुतर कार्य में संलग्न हैं?"

"नहीं, नहीं, मैं तुम्हारी ही गणना कर रहा था।"

"इस भाग्यहीन के भाग्य में अब और क्या है ?"

"बहुत कुछ, कल्याणी ! तुम्हारा सौदा सफल है, तुम मगध के सम्राट की माता होगी। किन्तु···"

अम्बपाली ने स्मित होकर कहा :

"भगवान सर्वदर्शी हैं, पर 'किन्तु' क्या ?"

"किन्तु सम्राज्ञी नहीं।"

अम्बपाली के होंठ कांपे, पर वह बोली नहीं। भगवान ने फिर कहा :

"और एक बात है, शुभे !"

"वह क्या, भगवन् ?"

"तुम वैशाली गणतन्त्र की जन हो, वैशाली का अनिष्ट न करना।"

अम्बपाली के भ्रू कुंचित हुए। यह देख भगवान वादरायण हंस दिए। उन्होंने कहा—"गणतन्त्र पर तुम्हारा रोष स्वाभाविक है। उसी कानून के सम्बन्ध में न ?"

"भगवन्, उसी धिक्कृत कानून के सम्बन्ध में।"

"पर वह बात तो अब पुरानी हुई। फिर तुमने उसका मुंहमांगा शुल्क भी पाया। अब भी तुम्हारा रोष नहीं गया ?"

"नहीं भगवन्, नहीं।"

"फिर यह सौभाग्य ?"

"मगध-सम्राज्ञी न होते हुए मगध-साम्राज्य की राजमाता का लांछित हास्यास्पद पद !" अम्बपाली ने घृणा से होंठ सिकोड़े और क्रोध से उसके नथुने फूल गए।

भगवान वादरायण विचलित नहीं हुए। वे मन्द स्मित करते अचल बैठे रहे। अम्बपाली एकटक उनकी भृकुटी में चिन्ताप्रवाह देखती रही। भगवान ने मृदु-मन्द स्वर में कहा—"केवल यही नहीं।"

"क्या और भी कुछ ?"

"बहुत कुछ।"

"वह क्या ?"

भगवत्पाद क्षण-भर गहन चिन्ता में डूबे रहे, फिर जलद गंभीर वाणी में बोले—"शुभे अम्बपाली, तुम विश्वविश्रुत साध्वी प्रसिद्ध होगी।"

"भगवन्, मैं अधम वेश्या ?"

"शुभे, जिसके चरणतल की अपेक्षा मगध साम्राज्य का चक्र भी

लघु है, उसे यह आत्मप्रतारणा शोभा नहीं देती।" फिर उन्होंने भाव-गंभीर हो दोनों हाथ उठाकर कहा—"तुम्हारा कल्याण हो, परन्तु तुम वैशाली की जनपद कल्याणी हो। एक बार तुमने आत्मदान करके वैशाली को गृहयुद्ध से बचा लिया था, अब अपने तामसिक रोष में जन-पद का अनिष्ट न करना। व्यक्ति से समष्टि की प्रतिष्ठा भी बड़ी है, स्वार्थ भी बड़ा है। व्यक्ति का स्वार्थ हेय है, परन्तु समष्टि का स्वार्थ उपादेय।" भगवत्पाद यह कहकर कुछ देर मौन रहे। फिर बोले—"त्याग संसार में महाश्रेष्ठ है। त्याग से अरिष्ट, अनिष्ट सब टल जाते हैं। तुम जब देखो कि तुम्हारे द्वारा वैशाली का, उत्तराखण्ड के उस एकमात्र गणतन्त्र का अनिष्ट हो रहा है, तब कोई महान त्याग करना, अनिष्ट टल जाएगा। मेरा यह वचन भूलना नहीं, शुभे, नहीं तो वह महासौभाग्य तुम्हें प्राप्त नहीं होगा।"

"मैं याद रखूंगी, भगवन्!"

"तुम्हारा कल्याण हो, भद्रे, अब तुम अपने आवास को जाओ।"

अम्बपाली बड़ी देर तक भगवान वादरायण व्यास के चरणों में चुप-चाप पृथ्वी पर पड़ी रही। फिर आंखों से आंसू बहाती उठकर चल दी।

२८. वर्षकार का यन्त्र

सम्राट बिम्बसार ने राजधानी में लौटकर देखा, अवन्तिपति चण्ड महासेन प्रद्योत ने राजगृह को चारों ओर से घेर लिया था। नगर का वाता-वरण अत्यन्त क्षुब्ध था। सम्राट थकित और अस्त-व्यस्त थे। राजधानी में महामात्य उपस्थित नहीं थे, न सेनापति चण्डभद्रिक ही थे। सेना की व्यवस्था भी ठीक नहीं थी। चम्पा में फैली हुई सैन्य लौटी न थी और सेना का श्रेष्ठ भाग श्रावस्ती में बिखर गया था। सम्राट ने तुरन्त उपसेनापति उदायि को बुलाकर परामर्श किया।

सम्राट ने कहा :

"भणे सेनापति, यह तो विपत्ति ही विपत्ति चारों ओर दीख रही है। मालवपति ने राजगृह को घेरा है, हम विपन्नावस्था में हैं ही। अब तुम कहते हो कि मथुरापति अवन्तिवर्मन प्रद्योत की सहायता करने आ रहा है।"

"ऐसा ही है, देव!"

"तो भणे सेनापति, ये दोनों ग्रह परस्पर मिलने न पाएं, ऐसा

करो।"

"किन्तु देव, आर्य महामात्य का कड़ा आदेश है कि युद्ध किसी भी दशा में न किया जाए।"

"उन्होंने यह आदेश किस आधार पर दिया है?"

"अपने यन्त्र के आधार पर।"

"वह यन्त्र क्या है?"

"उसे गुप्त रखा गया है।"

"कौन उसके सूत्रधार हैं?"

"आचार्य शाम्बव्य काश्यप।"

"तो भणे सेनापति, काश्यप को देखना चाहता हूं।"

"परन्तु काश्यप राजधानी में नहीं हैं।"

"कहां हैं?"

"अमात्य ने उन्हें छद्म रूप में कहीं भेजा है।"

"आर्य अमात्य यह सब क्या कर रहे हैं, भणे सेनापति, करणीय या अकरणीय?"

"करणीय, देव!"

"तो फिर हमें सम्प्रति क्या करणीय है?"

"अमात्य की प्रतीक्षा।"

"जैसे हम लोग कुछ हैं ही नहीं, सब कुछ अमात्य ही हैं!"

"देव, क्या युद्ध करना चाहते हैं?"

"भणे सेनापति, युद्ध हम दो सम्मिलित सैन्यों से कैसे कर पाएंगे? हमारे पास सेना कहां है?"

"देव, मैं किसी असंभाव्य की प्रतीक्षा में हूं।"

"कब?"

"किसी भी क्षण।"

इसी समय एक चर ने आकर सूचना दी—"देव, शत्रु रातोंरात नगर का घेरा छोड़ भाग गया। उसकी सेना अत्यन्त विपन्नावस्था में भाग रही है।"

"यह कैसा चमत्कार है, सेनापति?…चर, क्या कुछ और भी कहना है?"

"देव, आचार्य ने कहा है कि प्रद्योत को अपने ही सेनानायकों पर अविश्वास हो गया है। इसीसे वे रातोंरात अपने नीलगिरि हाथी पर चढ़कर एकाकी ही भाग खड़े हुए हैं। उन्हें पकड़ने का यह अच्छा समय

है।"

"तो भणे सेनापति, उसे पकड़ो और उसकी भागती हुई सैन्य अव्यवस्थित और छिन्न-भिन्न कर दो।"

"देव की जैसी आज्ञा। अब देव आज्ञा दें तो निवेदन करूं— अमात्य का यन्त्र मुझे विदित है।"

"पहले तो कहा था, गुप्त है?"

"गुप्त था, चण्ड के पलायन तक।"

"तो कहो, भणे, अमात्य ने कैसा यन्त्र किया कि प्रद्योत को प्रकार भागना पड़ा?"

"अमात्य ने प्रद्योत के अभियान की सूचना पाकर जहां-ज स्कन्धावार योग्य स्थान थे, वहां-वहां बहुत-सी मागधी स्वर्ण-मुद्र प्रथम ही धरती में गड़वा दी थीं।"

"अरे, इसका अभिप्राय क्या था?"

"उन्हीं स्थानों पर प्रद्योत के सहायक राजाओं और सेनानायक ने डेरे डाले। तब प्रद्योत को भरमा दिया गया कि ये सब सेनानायक और राजा मगध के अमात्य से मिल गए हैं और बहुत-सा हिरण्य चुके हैं। खोजने पर मगध-मुद्रांकित बहुत-सा हिरण्य उनकी छावनी पृथ्वी में से खोद निकाला गया।"

"और इस भ्रम में प्रद्योत को किसने डाला?"

"आचार्य काश्यप ने। वे मगध से विश्वासघात करके मालव में चले गए थे। चण्डप्रद्योत उनका मित्र है।"

सम्राट ने हंसकर कहा—"भणे सेनापति, मगध को जैसे अप्रतिम सेनापति प्राप्त हैं, वैसे ही दो कूटनीतिज्ञ ये ब्राह्मण भी।"

२९. मागध विग्रह

चाहे जिस कारण से भी हो, अमात्य और सम्राट में विवाद बढ़ता गया और राजवर्गी जनों में भी वह अपवाद फैल गया कि आर्य कार और सम्राट में तीव्र मतभेद हो गया है। इसी समय उन्होंने म की राजपरिषद् को बुलाया।

राजपरिषद् का वातावरण बहुत क्षुब्ध था। महामात्य आर्य कार पत्थर की निश्चल मूर्ति के समान बैठे थे। सम्राट क्रोध से हो रहे थे। सम्राट ने कहा:

"मैं पूछता हूं, किसकी आज्ञा से अवन्ती में दूत भेजा गया ?"
"मेरी आज्ञा से, देव !"
"मेरी आज्ञा से क्यों नहीं ?"
"देव को राजनीति का ज्ञान नहीं है।"
"मैंने आज्ञा दी थी कि वैशाली पर अभियान की तुरन्त तैयारी की जाए।"
"मैंने उस आज्ञापालन की आवश्यकता नहीं समझी।"
"आपने कैसे यह साहस किया ?"
"साम्राज्य की भलाई के लिए, देव !"
"परन्तु सम्राट मैं हूं।"
"परन्तु आप साम्राज्य की हानि भी कर सकते हैं।"
"वह मेरी हानि है।"
"नहीं, वह साम्राज्य की हानि है।"
"मैं सुनना चाहता हूं, मैंने साम्राज्य की क्या हानि की है ?"
"तो देव, सुनें—कोसल की अपमानजनक पराजय का पूरा दायित्व आप ही पर है।"
"आपपर क्यों नहीं ? आपने समय पर सहायता नहीं भेजी।"
"मैं साम्राज्य के अधिक गुरुतर कार्यों में व्यस्त था।"
"सम्राट की रक्षा से बढ़कर गुरुतर कार्य कौन है ?"
"साम्राज्य की रक्षा।"
"सम्राट के बिना ?"
"सम्राट नित्य मरते और पैदा होते हैं, देव ! वे क्षणभंगुर हैं, साम्राज्य अमर है।"
"आर्य सम्राट का अपमान कर रहे हैं।"
"सम्राट स्वयं ही अपना अपमान कर रहे हैं।"
"साम्राज्य का संचालक मैं हूं।"
"देव का यह भ्रम है। आप उसके एक शीर्ष स्थानीय रत्न-मात्र हैं।"
"मगध-साम्राज्य का संचालन कौन करता है ?"
"यह ब्राह्मण।"
"अब से यह अधिकार मैं ग्रहण करता हूं।"
"मेरे रहते नहीं।"
"मैं आर्य को पदच्युत करता हूं।"

"सम्राट की केवल एक यही आज्ञा मानने को मैं बाध्य हूं।"

"किन्तु मेरी और भी आज्ञाएं हैं।"

"देव कह सकते हैं।"

"आपने राजविद्रोह किया है। किन्तु आप ब्राह्मण हैं, इसलिए अवध्य हैं। परन्तु मैं आपका सर्वस्व हरण करने की आज्ञा देता हूं।"

"मैं ब्राह्मण हूं, इसलिए सम्राट का यह आदेश भी मानता हूं। परन्तु मेरी एक घोषणा है।"

"आर्य कह सकते हैं, परन्तु अनुग्रह नहीं पा सकते।"

"मैं अनार्य श्रेणिक सम्राट बिम्बिसार की अब प्रजा नहीं हूं। सम्राट, यह आपका खड्ग है।"

महामात्य ने खड्ग पृथ्वी पर रखकर आसन त्याग दिया। सम्राट ने कहा :

"अप्रजा को मेरे राज्य में रहने का अधिकार नहीं है।"

"मैं मगध को त्यागकर ही अन्न-जल ग्रहण करूंगा।" इतना कहकर महामात्य ने सभाभवन त्याग दिया और पांव-प्यादे ही अज्ञात दिशा की ओर चल दिए। राजगृह में सन्नाटा छा गया। सम्राट ने विज्ञप्ति प्रज्ञापित की : "जो कोई आर्य वर्षकार को साम्राज्य में आश्रय देगा, उसका सर्वस्व हरण करके उसे सूली दी जाएगी।" इसके बाद उन्होंने सेनापतियों को वैशाली पर आक्रमण करने की तैयारी करने की आज्ञा देकर सभा भंग की।

३०. युग्म युगपुरुष

नगर के बाहर एक यक्ष-निकेतन था। निकेतन बहुत पुराना था। उसमें विराटकाय यक्ष की प्रतिमा थी। निकेतन का अधिकांश पृथ्वी-गर्भ में था और उसमें प्रवेश एक गुफाद्वार से होता था। यक्ष-प्रतिमा काले पत्थर की थी, जो उस अंधकारपूर्ण निकेतन में प्रभावशाली प्रतीत होती थी। नगर के इस प्रान्त भाग में लोगों का आना-जाना बहुत ही कम होता था। साधारणतया यह प्रसिद्ध था कि यक्ष के प्रकोप से मनुष्य का मस्तक कट गिरता है। इसीसे इस यक्ष-निकेतन के प्रति लोगों में बड़ी भीति थी। रात्रि को इधर भूलकर भी कोई नहीं आता था।

कुण्डनी सोम को टेढ़े-मेढ़े मार्गों से होकर इसी यक्ष-निकेतन में ले

आई। उसने दृढ़ता से सोम का हाथ पकड़कर उस अन्धकारपूर्ण भयावनी गुहा में प्रवेश किया। सोम टटोल-टटोलकर उसके पीछे-पीछे चलने लगे। गुहा के बिलकुल अन्त में यक्ष-प्रतिमा की पीठ पर ढासना लगाए, दीपक के क्षीण प्रकाश में आर्य वर्षकार गम्भीर मुद्रा में बैठे ताड़पत्र पर कुछ लेख लिखने में व्यस्त थे। कुण्डनी और सोम ने निकट जाकर अभिवादन किया। आर्य वर्षकार ने सिर उठाकर देखा, फिर संकेत से बैठने को कह अपना लेख पूरा किया। लेख पूरा करके उसपर उन्होंने गीली मिट्टी की अपनी मुद्रिका से मुहर लगा दी। फिर सोमप्रभ की ओर देखकर कहा—"आयुष्मान् सोम, समय क्या होगा?"

"एक दण्ड रात्रि व्यतीत हुई है, आर्य!"

"तो आयुष्मान् सोम, यह पत्र तुम यत्न से रखो और सेनापति उदायि को ढूंढ़-ढांढ़कर उन्हें दे दो। वे बिखरी हुई मागध सैन्य का संगठन कर रहे हैं। तुम उन्हें सहायता दो—अत्यन्त गोपनीय भाव से सेना को संगठित करो और अवसर पाते ही यज्ञ विध्वंस कर दो।"

"क्या कोसलपति के प्रति आर्य कोई विशेष आदेश देंगे?"

"नहीं, परन्तु राजकुमार विदूडभ के लिए है।" और यह कहकर उन्होंने एक और पत्र सोम को देते हुए कहा—"इसे राजकुमार को दे देना। उसके जीवन की रक्षा होनी चाहिए। पिता-पुत्र के विवाद से तो तुम लाभान्वित हो ही रहे हो।"

"जी हां, आर्य!"

"पुत्री कुण्डनी, तुझे भी सारी योजना स्मरण है न कि यहां से निवटकर तुम दोनों को कहां जाना है और क्या करना है?"

"स्मरण है, आर्य।"

"तो जाओ अब, तुम्हारा कल्याण हो।"

दोनों ने अभिवादन कर प्रस्थान किया। वर्षकार फिर कुछ लिखने लगे। इतने ही में पदशब्द सुनकर उन्होंने खड्ग उठाया और खड़े हुए।

किसीने मृदु-मन्द स्वर से कहा—"वहां कौन है?"

"यदि वयस्य यौगन्धरायण हैं, तो वर्षकार स्वागत करता है।"

"स्वस्ति मित्र, स्वस्ति।"

दोनों ने अपने-अपने स्थान से आगे बढ़कर परस्पर आलिंगन किया। उस अन्धकारपूर्ण गुफा में विश्व के दो अप्रतिम राजनीतिज्ञ एकत्र थे।

यौगन्धरायण ने कहा, "मगध-सम्राट की पराजय का दायित्व

मुझीपर है, मित्र !"

"जानता हूं, परन्तु मैं आपको दोष नहीं दे सकता।"

"सुनकर सुखी हुआ। कौशाम्बीपति ने केवल कलिंगसेना के कारण अभियान किया था।"

"किन्तु सुश्री कलिंगसेना ने प्रियदर्शी महाराज उदयन को छोड़कर विगलित-यौवन प्रसेन को कैसे स्वीकार किया ?"

"मेरे ही कौशल से, मित्र।"

"तो क्या वह नहीं जानती थी कि प्रसेनजित् बूढ़े हैं ?"

"क्यों नहीं !"

"तो फिर महाराज उदयन ने उसका त्याग किया ?"

"नहीं, मैंने ही यह विवाह नहीं होने दिया।"

"क्यों, मित्र ?"

"कौशाम्बी की कल्याण-कामना से।"

"तो क्या वयस्य यौगन्धरायण यह समझते हैं कि गान्धारराज की मैत्री इतनी हीन है ? उससे तो सम्पूर्ण उत्तर कुरु तक महाराज उदयन का प्रभाव हो जाता।"

"वह तो है ही मित्र, कौशाम्बीपति ने जब से देवासुर-संग्राम में क्रियात्मक भाग लिया है, तबसे देवराज इन्द्र उन्हें परममित्र मानता है।"

"सुनकर सुखी हुआ; किन्तु कलिंगसेना के ब्याह में क्या राजनीतिक बाधा थी ?"

"मैं अवन्तीनरेश महाराज चण्डमहासेन को क्रुद्ध नहीं करना चाहता था। आप तो जानते ही हैं कि कन्याहरण के बाद वे बड़ी कठिनाई से प्रसन्न हुए थे; और मालव-मित्रता की कौशाम्बी राज्य को बड़ी आवश्यकता है, मित्र !"

"किन्तु कदाचित् कौशाम्बी के महामात्य यौगन्धरायण मगध-सम्राट की प्रसन्नता की उतनी चिन्ता नहीं करते ?"

"क्यों नहीं ! मगध के महामहिम अमात्य वर्षकार भली भांति जानते हैं कि मगध-मित्रता की प्राप्ति के लिए ही मैंने युक्तिपूर्वक देवी वासवदत्ता को छल से मृतक घोषित करके मगधनन्दिनी पद्मावती का विवाह कौशाम्बीपति से कराया था। मगध-सम्राट की प्रसन्नता की कौशाम्बीपति को उतनी ही आवश्यकता है, मित्र, जितनी मगध-सम्राट को कौशाम्बीपति की मित्रता की।"

"मगध-सम्राट इसी प्रकार कौशाम्बीपति के बने रहेंगे।"

"महाराज यह सुनकर सुखी होंगे। तो मित्र, अब स्वस्ति।"
"स्वस्ति मित्र, स्वस्ति।"
आर्य यौगन्धरायण चले गए और उसके कुछ ही देर बाद आर्य वर्षकार गुहाद्वार से निकले। बाहर आकर उन्होंने कुछ संकेत किया। एक चर ने आकर उनके कान में धीरे-धीरे कुछ कहा। आर्य वर्षकार ने नेत्रों में सन्तोष प्रकट कर कहा :
"अब तुम अपने कार्य में लगो, सौम्य ! मेरा अश्व तैयार है ?"
'जी हां, आर्य !"
"ठीक है।" वे उत्तरीय से शरीर को अच्छी तरह लपेट एक ओर को चल दिए।

३१. विदूडभ का कूट-यन्त्र

महाराज प्रसेनजित् अशान्त मुद्रा में बैठे वन्धुल मल्ल से कोई गुप्त परामर्श कर रहे थे। विदूडभ ने वहां प्रवेश किया। महाराज ने कहा—"बैठो राजपुत्र ! तुम श्रावस्ती अकस्मात् ही चले गए, मुझे सूचना भी नहीं दी ?"
"जाना पड़ा, महाराज !"
"किसलिए, पुत्र ?"
"एक महत्त्वपूर्ण संदेश पाकर।"
"कैसा ?"
"कौशाम्बीपति ठीक यज्ञ के समय कोसल पर आक्रमण करेगा।"
"कहां ? सेनापति कारायण ने तो नहीं लिखा। यह उसका पत्र है। वह लिखता है, चिन्ता का कोई कारण नहीं है।"
"मेरे पास भी सेनापति कारायण का एक पत्र है, महाराज !"
"किसके नाम ?"
"किसी गुप्त मित्र के नाम।"
विदूडभ ने एक पत्र वस्त्र से निकालकर महाराज के हाथ में दे दिया। महाराज ने मल्ल बन्धुल को देकर कहा—"पढ़ो, बन्धुल !"
बन्धुल ने पढ़ा। उसका मुंह सूख गया। उलट-पुलटकर पत्र को देखने लगा।
महाराज ने कहा—"पत्र में क्या लिखा है ?"
"लिखा है, ठीक···दिन कौशाम्बीपति श्रावस्ती पर आक्रमण

करेंगे। मैं प्रकट में विरोध करूंगा, परन्तु भीतर से अनुकूल हूं। तुम नगर-रक्षक सैन्य को ठीक रखना। तुम्हारा प्राप्तव्य जा रहा है।"

"पत्र पर क्या कारायण के हस्ताक्षर हैं ?"

"हां, महाराज !" बन्धुल ने क्रुद्ध स्वर में कहा।

"पत्र किसे लिखा गया है ?"

"कोटपाल को।"

"तुमपर यह अभिसन्धि कैसे प्रकट हुई, पुत्र ?"

"मेरे चर द्वारा।"

"श्रावस्ती क्यों गए ?"

"नगर का प्रबन्ध देखने तथा पत्रवाहक मिल जाए तो विशेष समाचार जानने।"

"तो पुत्र, अब करना क्या है ?"

"यह सेनापति बन्धुल कहेंगे। वे महाराज के विश्वासपात्र और वीर हैं।"

"तुम भी कहो, पुत्र !"

"महाराज जानते हैं कि मेरा मत महाराज से नहीं मिलता।"

"किन्तु यह कोसल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है, पुत्र !"

"इसीसे मैं श्रावस्ती गया था, महाराज !"

"तो बन्धुल, तुम सीमान्त को अभी प्रयाण करो और कारायण को बन्दी करके यहां भेज दो।"

"मैं विरोध करता हूं, महाराज !"

"क्यों, पुत्र ?"

"सेनापति की यहां अधिक आवश्यकता है।"

"परन्तु सीमान्त पर और भी अधिक।"

"वहां सेनापति के बारहों पुत्र-परिजन जा सकते हैं। वे वीर और योद्धा हैं और विश्वस्त भी हैं। आगा-पीछा सोचने योग्य भी हैं।"

"पर वे सब राज-काज में नियुक्त हैं, पुत्र !"

"राजधानी का कार्यभार मैं ग्रहण करता हूं, महाराज !"

"तो बन्धुल, यही ठीक है। वे सीमान्त को तुरन्त बीस सहस्र नई सेना लेकर जाएं।"

'नहीं महाराज, मेरी एक योजना है।" विदूडभ ने कहा।

"वह क्या ?"

"यदि सब एकत्र सैन्य लेकर जाएंगे, तो शत्रु सावधान हो जाएगा।

उसे भय उपस्थित हो सकता है।"

"तुम्हारी योजना क्या है?"

"वे बारहों बन्धुल-परिजन सैन्य बिना लिए महाराज के दूत के रूप में उपायन लेकर कौशाम्बीपति के पास जाएं और यज्ञ का उन्हें निमन्त्रण देकर उनकी रुचि देखें। सैन्य प्रच्छन्न रूप में पीछे-पीछे जाए। कोई योग्य सामन्त या सेनापति उसका संचालन करे।"

"युक्ति बुरी नहीं है; पर सैन्य-संचालन कौन करेगा?"

"यह भन्ते सेनापति ठीक करें।"

अब मल्ल बन्धुल ने मुंह खोला। उसने कहा—"सैन्य की व्यवस्था हो जाएगी। राजकुमार की योजना उत्तम है। किन्तु कारायण?"

"उसे तुरन्त राजधानी में बुला लिया जाए। यहां आने पर महाराज जैसा उचित समझें, उसपर अभियोग करें।"

महाराज एकदम असंयत हो उठे। उन्होंने कहा—"सेनापति, तुम आज ही बारहों मल्ल-पुत्र-परिजन को सीमान्त पर भेज दो और सेना का भी प्रबन्ध करो और पुत्र, तुम श्रावस्ती जाकर नगर-व्यवस्था अपने अधीन कर लो।"

राजपुत्र विदूडभ कृतकृत्य होकर उसी समय श्रावस्ती को चल दिए।

३२. वज्रपात

नगर आनन्दोत्सव में व्यस्त था। राजमहालय और वीथी, हर्म्य-अट्टालिकाएं सम्मान्य आगतों से परिपूर्ण थीं। यज्ञ में भेंटस्वरूप आई वस्तुओं के ढेर लगे हुए थे। परन्तु महाराज प्रसेनजित् अपने अन्तःकक्ष में अर्द्ध-विक्षिप्त अवस्था में बकझक कर रहे थे। सीमान्त से बड़ी भयानक सूचना आई थी। बारहों मल्ल-पुत्र-परिजनों को राह में दस्युओं ने मार-कर सब उपायन-सामग्री लूट ली थी। बन्धुल मल्ल काष्ठ के कुन्दे की भांति शोक-संतप्त भूमि पर पड़े थे। राजकुमार विदूडभ तीखी दृष्टि से दोनों आहत प्रतिद्वन्द्वियों को चुपचाप खड़े देख रहे थे।

महाराज ने बड़ी देर तक बकझक करने के बाद कहा—"राज-कुमार, क्या कारायण आया है?"

"हां, महाराज!"

"तो पुत्र, उसे अभी उपस्थित कर।"

"महाराज, यह अनुपयुक्त होगा। इस समय यह गृहविवाद प्रकट नहीं होना चाहिए। कारायण कोई उपद्रव खड़ा कर सकता है।"

"तो क्या उसे दण्ड नहीं दिया जाए ?"

"क्यों नहीं, महाराज ! अभी उसे बन्दीगृह में रखा जाए; पीछे यज्ञ-समारोह की समाप्ति पर न्याय-विचार से जैसा उसका अपराध हो, उसे दण्ड दिया जाएगा, जिससे महाराज का न्याय दूषित न हो।"

"तो पुत्र, तुम जैसा ठीक समझो, व्यवस्था करो।"

"नहीं महाराज, वह साधारण जन नहीं, सेनापति है। उसकी कारा-व्यवस्था भन्ते सेनापति कर सकते हैं।"

"तो बन्धुल, ऐसा ही हो।"

युवराज ने कहा—"महाराज, इससे भी गुरुतर एक कार्य है।"

"कैसा कार्य, पुत्र ?"

"सीमान्त का प्रबन्ध। वहां सेना गई है, परन्तु सेनानी विश्वस्त और योग्य नहीं हैं। सर्वत्र छिद्र ही छिद्र हैं। इस समय यदि कौशाम्बी-नरेश श्रावस्ती पर आक्रमण करें तो भयानक परिणाम हो सकता है। मेरी सम्मति है कि सेनापति स्वयं सीमान्त पर जाएं।"

राजा और बन्धुल चुप रहे। कुमार ने फिर कहा—"मुझे सन्देह है, महाराज !"

"कैसा सन्देह ?"

"बारह मल्ल-बन्धुओं की हत्या केवल दस्युओं का साधारण कार्य नहीं प्रतीत होता। इसमें षड्यन्त्र भी हो सकता है।"

बन्धुल ने सिर उठाकर कहा :

"यदि ऐसा है, तो मैं कौशाम्बी को जलाकर क्षार न करूं तो बन्धुल नहीं।"

"भन्ते सेनापति, इसीसे मेरी सम्मति में आपका ही सीमान्त पर जाना ठीक है। रक्षा भी होगी, यथार्थ का पता भी लगेगा।"

"तो महाराज, मुझे सीमान्त पर जाने दीजिए।"

"जा मित्र ! परन्तु यहां तेरे बिना मैं अकेला हूं।"

"महाराज इस समय यज्ञ-अनुष्ठान में व्यस्त हैं। पुर, पौरजन तथा राजपुरुषों से परिवृत हैं। चिन्ता की बात नहीं। मैं सीमान्त जाता हूं।"

बन्धुल ने उसी समय सीमान्त को प्रयाण किया। तब तक कारायण को बन्दीगृह में भेज दिया गया।

३३. यज्ञ

पहले दिन सहस्र दक्षिण चार दीक्षावाला सोमयाग प्रारम्भ हुआ और पुरोडाश चढ़ाया गया।

गवालम्भन और पशुयाग को लेकर नगर में एक क्षोभ का वातावरण भी उठ खड़ा हुआ था। श्रमण महावीर और शाक्य गौतम दोनों ही महापुरुष इस समय श्रावस्ती ही में थे। वे निरन्तर अपने प्रवचनों में यज्ञविरोधी भावना प्रकट करते रहते थे और इसके कारण अनेक सेट्ठि, गृहपति, सामन्त, राजपुत्र और विश यज्ञ के गवालम्भन को लेकर भीतर ही भीतर महाराज के प्रति विद्रोही होते जा रहे थे। प्रच्छन्न रूप में राजकुमार विदूडभ और आचार्य अजित केसकम्बली ऐसे लोगों को प्रोत्साहन दे रहे थे। राजधानी में सेनापति मल्ल बन्धुल नहीं थे। उनके बारहों बन्धु-परिजन भी मारे जा चुके थे। इससे राजा बहुत चिन्तित और व्यग्र हो रहे थे। एक ओर जहां समारोह हो रहा था, वहां दूसरी ओर भय, आशंका और विद्रोह की भावना ने राजा को अशान्त कर रखा था।

राजकुमार विदूडभ ने इस सुयोग से बहुत लाभ उठाया था। उन्होंने समागत अनेक राजाओं को अपना मित्र बना लिया था। वे उनके सहायक और समर्थक हो गए थे। नगर के जो गृहपति, सेट्ठि, पौरजन और निगम राजा पर आक्षेप लेकर आते, उनसे युवराज विदूडभ अपनी गहरी सहानुभूति दिखाते और राजा की मनमानी पर अपनी बेवसी और रोष भी प्रकट करते थे। इस प्रकार घर-बाहर उनके मित्रों, समर्थकों और सहायकों का एक दल और अनुकूल वातावरण बन गया था।

३४. सेनापति कारायण

बन्दीगृह में जाकर राजकुमार विदूडभ ने कहा—"सेनापति, तुम स्वतन्त्र हो, बाहर जाओ।"

बन्दीगृह के अन्धकार में कारायण ने विदूडभ को नहीं पहचाना। उसने कहा :

"यह किसने मुझे उपकृत किया, भन्ते?"

"मैं विदूडभ हूं, मित्र!"

"राजकुमार, मैं आपका किस प्रकार आभार मानूं ?"

"पहले इस कलुषित स्थान से बाहर आओ, मित्र, और बातें पीछे होंगी।"

कारायण ने मुक्त होकर राजकुमार को अभिवादन करके कहा—"मैं राजकुमार का अनुगत सेवक हूं।"

"तो यह तलवार ग्रहण करो, मित्र ! मैं तुम्हें कोसल-सैन्य का प्रधान सेनापति नियत करता हूं।"

"क्या मैं आपको देव कोसलपति कहकर हर्षित होऊं ?"

"यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो यही सही, मित्र !"

"तो देव कोसलपति, आपकी क्या आज्ञा है ?"

"सेनापति, तुम अभी नगर को अधिकृत करके अपने प्रहरी और चौकी बैठा दो।"

"जो आज्ञा, देव ! और भी कुछ ?"

"हां, दो सौ अश्वारोही लेकर आज सूर्यास्त के समय नगर-द्वार पर स्वयं उपस्थित रहो। महाराज प्रसेनजित् आज जेतवन में श्रमण गौतम के दर्शन को जाएंगे। उन्हें जाने में बाधा देने की कोई आवश्यकता नहीं है, परन्तु जब वे लौटें तो दक्षिण द्वार पर उनका अवरोध करो। उन्हें बन्दी कर लो और एकाकी पूर्वी सीमान्त पर छोड़ आओ। उनके अंगरक्षक विरोध करें तो उन्हें काट डालो। सहायक सेना निकट ही रखो। परन्तु सब काम अत्यन्त चुपचाप होना चाहिए।"

"बहुत अच्छा, महाराज, ऐसा ही होगा।"

"एक बात और। महिषी मल्लिका भी महाराज के साथ होंगी। उनसे राजमहालय में आने का अनुरोध करना, तथा महाराज को सीमान्त पर पाथेय देना।"

"ऐसा ही होगा, महाराज ! और कुछ ?"

"हां, सेनापति, गुप्तचरों से पता लगा है, बन्धुल मल्ल सीमान्त से आ रहा है। उसे प्रत्येक मूल्य पर रोको। मारना भी पड़े तो मार डालो।"

"बन्धुल मेरा आत्मीय है, परन्तु मेरे सम्पूर्ण उत्पीड़न का मूल है। मैं उसका शिरच्छेद करूंगा, आप निश्चिन्त रहें, महाराज !"

"तो जाओ, सेनापति बन्धुल का आवास तुम्हारे लिए प्रस्तुत है। वहां तुम्हारे परिजन भी पहुंच गए हैं। विश्राम करो। अभी तुम्हारे पास यथेष्ट समय है। सावधान रहो और प्रत्येक प्रगति से मुझे सूचित करो।"

८५. प्रसेनजित् का निष्कासन

जेतवन से महाराज प्रसेनजित् ने लौटकर देखा, नगर-द्वार पर भारी अवरोध-उपरोध उपस्थित है। सेनापति कारायण नग्न खड्ग लेकर राजा के सम्मुख आए। राजा ने उन्हें देखकर कहा—"यह क्या बात है, कारायण! मैंने तो तुम्हें बन्दी किया था, परन्तु तुम्हें मुक्त किसने किया?"

"कोसल के अधिपति ने।"

"कोसल का अधिपति मैं हूं। मैंने तुझे मुक्त नहीं किया।" राजा ने क्रोध से लाल-लाल आंख करके कहा।

"आप जैसा समझें।"

"तेरी यहां उपस्थिति का क्या कारण है?"

"मैं आपको बन्दी करने के निमित्त यहां उपस्थित हूं।"

"किसकी आज्ञा से?"

"कोसल के अधिपति महाराज विदूडभ की आज्ञा से।"

"तेरा इतना साहस? वंचक, कुटिल, मैं अभी तेरा शिरच्छेद करूंगा।" राजा ने खड्ग कोष से खींच लिया।

"तो महाराज प्रसेनजित्, आप यदि इस समय मृत्यु को वरण किया चाहते हैं, तो आपकी इच्छा। आइए इधर।" कारायण ने मैदान की ओर खड्ग से संकेत किया।

राजा ने क्रोध से कांपते हुए सनिकों को आज्ञा दी—"सैनिको, इस वंचक को बन्दी करो।"

किन्तु सब सैनिक चुपचाप सिर झुकाकर खड़े हो गए। यह देखकर राजा का हृदय भय से दहल उठा। वे कांपते हुए हाथों में खड्ग लिए हुए काष्ठ-प्रतिमा के समान खड़े रह गए।

कारायण ने हंसकर कहा—"महाराज प्रसेनजित्! विरोध-प्रदर्शन से कोई लाभ नहीं, चुपचाप महाराज विदूडभ की आज्ञा शिरोधार्य कीजिए।"

"कैसी भाग्य-विडम्बना है! क्या मैं नगर में नहीं जा सकता?"

"नहीं।"

"तेरे महाराज—उस दासीपुत्र की क्या आज्ञा है रे?"

"यही कि यदि आप चुपचाप बन्दी होना स्वीकार कर लें, तो आपको प्राणदान दे दिया जाए।"

"और यदि मैं न स्वीकार करूं ?"

"तो महाराज की आज्ञा है कि आपका वध करके, आपके शरीर के चार टुकड़े करके नगर की चारों दिशाओं में बलिपिण्ड की भांति फेंक दिया जाए।"

राजा की आंखों से आंसू ढलकने लगे। उन्होंने हाथ का खड्ग पृथ्वी पर फेंक दिया।

३६. सहभोग्यमिदं राज्यम्

मध्याह्नोत्तर चतुरंगला छायाकाल में राजसभा का आयोजन हुआ। कोसलपति महाराज विदूडभ छत्र-चंवर धारण किए सभा-भवन में पधारे। उनके आगे-आगे सोमप्रभ नग्न खड्ग लिए और पीछे सेनापति कारायण खड्ग लिए चल रहे थे। सिंहासन पर बैठते ही महालय से शंखध्वनि हुई। वेदपाठी ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन पाठ और कुल-कुमारियों ने अक्षतलाजा विसर्जन किया। इसके बाद महाराज विदूडभ ने सिंहासन से खड़े होकर आचार्य अजित केसकम्बली को महामात्य का खड्ग देकर कहा—"आर्य, मैं आपको कोसल के महामात्य-पद पर नियुक्त करता हूं। यह खड्ग ग्रहण कीजिए।"

आचार्य ने खड्ग ग्रहण करके उच्चासन के निकट आकर उच्चस्वर से कहा—" 'सहभोग्यमिदं राज्यम्' : साथ-साथ भोगने योग्य राज्य को कोई अकेला नहीं भोग सकता, इसलिए मैं घोषणा करता हूं कि जो अमात्य और राजकर्मचारी निष्ठापूर्वक अपने अधिकारों पर रहना चाहते हैं, वे शान्तपूर्वक रहें। महाराज विदूडभ अपने राज्यकाल में उन्हें द्विगुणित भक्त-वेतन देंगे। जिस अमात्य और राजकर्मचारी ने राजविद्रोह किया हो, उसका वह कार्य पूर्वमहाराज प्रसेनजित् के प्रति आदर-भावना का द्योतक समझकर महाराज विदूडभ उसे क्षमा करते हैं। अब वह यदि राजनिष्ठा से राजसेवा करे तो उसकी नियुक्ति यथापूर्व रहेगी। ऐसे लोग सेवा न करें तो पुत्र, परिजन, धन-सहित स्वेच्छा से जहां चाहें, चले जाएं, कोई प्रतिबन्ध नहीं है; परन्तु जो कोई राज्य में विद्रोह करेगा या किसी प्रकार मन-वचन-कर्म से शांति भंग करेगा, उसे कठोरतम दण्ड दिया जाएगा।"

इस घोषणा के होने पर सभा में हर्षध्वनि और महाराज विदूडभ का जयजयकार हुआ। महामात्य ने फिर कहा—"महाराज की आज्ञा

से मैं सर्वप्रथम महाराज और कोसल राज्य की ओर से मागध राज-मित्र और कोसल के मान्य राज-अतिथि श्री सोमप्रभदेव का अभिनन्दन करता हूं, जिनके शौर्य, गुप्त विक्रम और मैत्री के फलस्वरूप हमें आज का शुभ दिन देखना नसीब हुआ। महाराज विदूडभ घोषित करते हैं कि आज से कोसल सदैव मगध का मित्र है। मगध का शत्रु कोसल का शत्रु और मगध का मित्र कोसल का मित्र है। कोसल के परममित्र मागध श्री सोमप्रभदेव के अनुरोध पर कोसलपति महाराज विदूडभ यह घोषणा करते हैं कि वत्सराज उदयन की मैत्री चाहे भी जिस मूल्य पर कोसल प्राप्त करेगा और मैत्री का संदेश लेकर शीघ्र ही कोई राजपुरुष वत्स-राज महाराज उदयन की सेवा में जाएगा। अपनी मैत्री, सद्भावना और कृतज्ञता के प्रकाशनस्वरूप महाराज विदूडभ मगध-सम्राट को काशी का राज्य भेंट करते हैं।"

इसपर सब ओर हर्षध्वनि हुई।

३७. मधुपर्व

वीणा के तारों में औडव सम्पूर्ण के स्वर तैर रहे थे। सुनहरी धूप प्रासाद के मरकतमणिजटित झरोखों और गवाक्षों से छन-छनकर नेत्रों को आह्लादित कर रही थी। अम्बपाली के आवास के बाहरी प्रांगण में रथ, हाथी, अश्व और विविध वाहनों का तांता लगा था। संभ्रान्त नागरिक और सामन्तपुत्र अपनी नई-निराली सज-धज से अपने-अपने वाहनों पर देवी अम्बपाली की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रांगण के भीतरी मार्ग में अम्बपाली का स्वर्णकलश वाला श्वेत कौशेय का महाघोष रथ आचूड़ विविध पुष्पों से सजा खड़ा था।

ज्योंही अम्बपाली अपने पुष्पसज्जित रथ पर सवार हुईं, वेग से मृदंग, मुरज और दुन्दुभी बज उठे।

सेनानायक सबसे आगे एक पंचकल्याणी अश्व पर सवार स्वर्ण-तार के वस्त्र पहने चांदी का तूर्य बजा-बजाकर बारम्बार पुकारता जाता था—"नागरिको, एक ओर हो जाओ, मधुपर्व की रानी जनपद कल्याणी देवी अम्बपाली की सवारी आ रही है। देवी मधुवन को जा रही हैं, उन्हें असुविधा न हो, सावधान!" घोषणा करके ज्योंही वह आगे बढ़ता, मार्ग नरमुण्डों से भर जाता। कोलाहल के मारे कान नहीं दिया जाता था।

सूर्य तपने लगा। मध्याह्न हो गया। तब सब कोई मधुवन में पहुंचे।

एक विशाल सघन आम्रकुंज में अम्बपाली का डेरा पड़ा। उनका मृदु गात्र इतनी देर की यात्रा से थक गया था। ललाट पर स्वेदबिन्दु हीरों की कनी के समान चमक रहे थे।

आम्रकुंज के मध्य में एक सघन वृक्ष के नीचे दुग्ध-फेन सम श्वेत कोमल गद्दी के ऊपर रत्नजटित डण्डों पर स्वर्णिम वितान तना था। अम्बपाली वहां आसक्तिकोपाधान पर अलस भाव से उठंग गईं। उन्होंने अर्धनिमीलित नेत्रों से मदलेखा की ओर देखते हुए कहा—"हला, एक पात्र माध्वीक दे।"

३८. आखेट

दिन का जब तीसरा दण्ड व्यतीत हुआ और सूर्य की तीखी लाल किरणें तिरछी होकर पीली पड़ीं और सामन्त युवक जब मैरेय छककर पी चुके, तब अम्बपाली से आखेट का प्रस्ताव किया गया। अम्बपाली प्रस्तुत हुईं। यह भी निश्चित हुआ कि अम्बपाली पुरुष-वेश धारण कर, अश्व पर सवार हो, गहन वन में प्रवेश करेंगी। अम्बपाली ने हंसते-हंसते पुरुष-वेश धारण किया।

युवराज स्वर्णसेन ने अपने चपल अश्व को हठपूर्वक निवारण किया और अम्बपाली के निकट आकर अभिनव के ढंग पर कहा :

"क्या मैं श्रीमान से अनुरोध कर सकता हूं कि वे मेरे साथ मृगया को चलकर मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाएं ?"

अम्बपाली ने मोहक स्मिति करके कहा, "अवश्य, यदि प्रियदर्शी युवराज मेरा अश्व और धनुष मंगा देने का अनुग्रह करें।"

"सेवक अपना यह अश्व और धनुष श्रीमान को समर्पण करता है।" इतना कहकर युवराज अश्व से कूद पड़े और घुटने टेककर देवी अम्बपाली के सम्मुख बैठ अपना धनुष उन्हें निवेदन करने लगे।

अम्बपाली ने बनावटी पौरुष का अभिनय करके आडम्बर-सहित धनुष लेकर अपने कंधे पर खोंस लिया और तीरों से भरा हुआ तूणीर कमर में बांध, वृद्ध दण्डधर के हाथ से बर्छा लेकर कहा—"मैं प्रस्तुत हूं, भन्ते !"

स्वर्णसेन ने अनायास ही अम्बपाली को अश्व पर सवार करा दिया और एक दूसरे अश्व पर स्वयं सवार हो विजन-गहन वन की ओर द्रुतगति से प्रस्थान किया।

थोड़ी ही देर में गहन वन आ गया। स्वर्णसेन ने अश्व को धीमा करते हुए कहा, "कैसा शान्त-स्निग्ध वातावरण है!"

"ऐसा ही यदि मनुष्य का हृदय होता।"

"तब तो विश्व के साहसिक जीवन की इति हो जाती।"

"यह क्यों?"

"अशान्त हृदय ही साहस करता है, देवी!"

दोनों अश्व धीरे-धीरे पर्वत की उस गहन उपत्यका में ठोकरों से बचते हुए आगे गहनतम वन में बढ़ने लगे। दोनों ओर के पर्वतशृंग ऊंचे होते जाते थे और वन का सन्नाटा बढ़ता जाता था। सघन वृक्ष की छाया में छनकर सूर्य की स्वर्ण-किरणें दोनों अश्वारोहियों की मुखश्री की वृद्धि कर रही थीं।

अम्बपाली ने कहा, "क्या सोचने लगे, युवराज?"

"क्या सत्य कह दूं, देवी?"

"यदि अप्रिय न हो।"

"साहस नहीं होता।"

"अरे, ऐसे वीर युवराज होकर साहस नहीं कर सके? मैं समझती थी, युवराज स्वर्णसेन परम साहसिक हैं।"

"आप उपहास कर सकती हैं देवी, पर मैं आपको प्यार करता हूं, प्राणों से भी बढ़कर।"

"केवल प्राणों से ही?" अम्बपाली ने हंस की सी गर्दन ऊंची करके कहा।

"विश्व की सारी सम्पदाएं भी प्राणों के मूल्य की नहीं, देवी! क्या मेरा यह प्यार नगण्य है?"

"नगण्य क्यों होने लगा, प्रिय?"

"तो आप इस नगण्य प्यार को स्वीकार करती हैं?"

अम्बपाली ने वक्र मुस्कान करके कहा:

"इसके लिए तो मैं बाध्य हूं, भन्ते युवराज! वैशाली के प्रत्येक व्यक्ति को मुझे अपना प्यार अर्पण करने का अधिकार है। वैशाली के ही क्यों, जनपद के प्रत्येक व्यक्ति को।"

"परन्तु मेरा प्यार औरों जैसा नहीं है, देवी।"

"तो उसमें कुछ विशेषता है?"

"वह पवित्र है, वह हृदय के गम्भीर प्रदेश की निधि है, देवी अम्बपाली! जिस दिन मैं समझूंगा कि आपने मेरे प्यार को स्वीकार किया,

उस दिन मैं अपने जीवन को धन्य मानूंगा।"

हठात् अम्बपाली का मुंह सफेद हो गया और स्वर्णसेन जड़ हो गए। इसी समय एक भयानक गर्जना से वन-पर्वत कम्पायमान हो गए। हरी-हरी घास चरते हुए अश्व उछलने और हिनहिनाने लगे, पक्षियों का कलरव तुरन्त बन्द हो गया।

परन्तु एक ही क्षण में स्वर्णसेन का साहस लौट आया। उन्होंने कहा—"देवी, सावधान, सिंह कहीं पास ही है।" और धनुष पर शर सन्धानकर वे—सिंह किस दिशा में है—यही देखने लगे।

अम्बपाली अभी भी भयभीत थीं। अश्व चंचल हो रहे थे। अम्बपाली ने स्वर्णसेन के निकट अश्व लगाकर भीत मुद्रा से कहा—"सिंह क्या बहुत निकट है?"

और तत्काल ही एक भारी वस्तु अम्बपाली के अश्व पर आ पड़ी तथा अश्व अपने आरोही को ले लड़खड़ाता हुआ खड्ड में जा गिरा। इससे स्वर्णसेन का अश्व भड़ककर अपने आरोही को ले तीर की भांति भाग चला। स्वर्णसेन उसे वश में नहीं रख सके।

३९. रंग में भंग

युवराज स्वर्णसेन को लेकर उनका अश्व जो बिगड़कर भागा तो युवराज के बहुत प्रयत्न करने पर भी बीच में रुका नहीं। स्वर्णसेन पर भी सिंह के आक्रमण का आतंक तो था ही, देवी अम्बपाली के सिंह द्वारा आक्रान्त होने का भारी विषाद छा गया। सूर्यास्त के समय जब अत्यन्त अस्तव्यस्त दशा में अकेले स्वर्णसेन मधुवन पहुंचे तो वहां बड़ा कोलाहल हो रहा था। जगह-जगह लकड़ी के बड़े-बड़े ढेर जल रहे थे और उनपर लोग शशक, वराह, महिष और तित्तिर भून रहे थे। ढेर की ढेर मैरेय, द्राक्षा, माध्वीक पात्रों में भरी धरी जा रही थी और उसे पी-पीकर सब लोग उन्मत्त हो रहे थे।

स्वर्णसेन अपने अश्व पर लटक गए थे। अश्व पसीने से तर था और मुख से फेन उगल रहा था। ज्योंही लोगों की दृष्टि उनपर पड़ी वे स्तम्भित-से आमोद-प्रमोद को छोड़कर उनकी ओर दौड़े। देखते-देखते सामन्तपुत्रों, सेट्ठिपुत्रों और राजकुमारों ने उन्हें घेर लिया। वे विविध भांति प्रश्न करने लगे।

देवी अम्बपाली को न देखकर प्रत्येक व्यक्ति विचलित हो रहा

था। सहारा देकर सूर्यमल्ल ने युवराज को अश्व से उतारा। थोड़ी गौड़ीय एक पात्र में भरकर उनके मुख से लगाई। उसे एक ही सांस में पीकर युवराज ने वेदनापूर्ण स्वर में कहा—"मित्रो, अनर्थ हो गया! देवी अम्बपाली को सिंह आक्रान्त कर गया!"

वज्रपात की भांति यह समाचार सम्पूर्ण शिविर में फैल गया। सभी आमोद-प्रमोद रुक गए और सर्वत्र सन्नाटा छा गया। धीरे-धीरे स्वर्णसेन ने सम्पूर्ण घटना कह सुनाई। वे कहने लगे—"ज्योंही हिंस्र सिंह गर्जन करके देवी अम्बपाली के ऊपर झपटा—मैंने बाण-संधान किया; परन्तु शोक, सिंह के धक्के से विचलित होकर मेरा अश्व बेकाबू होकर भाग निकला। मैंने देवी अम्बपाली को सिंह की भारी देह के साथ अश्व से खड्ड में गिरते देखा है। हाय मित्रो, अब मैं जनपद में मुंह दिखाने योग्य नहीं रह गया!"

महाअट्टवी रक्खक सूर्यमल्ल ने तत्काल पुकारकर दीपशलाकाएं जलाने और अपना अश्व लाने की आज्ञा दी। उन्होंने घटनास्थल पूछ-पाछकर बाणों से भरा तूणीर अपने कन्धे पर डाला और नग्न खड्ग हाथ में लेकर गहन वन में प्रवेश किया। पचासों प्यादे मशालें ले-लेकर उनके आगे-पीछे चले। अनेक सामन्तपुत्र अश्वों पर सवार हो हाथों में खड्ग, शक्ति, धनुष-बाण लिए साथ हो लिए।

परन्तु सम्पूर्ण रात्रि खोज करने पर भी वे देवी अम्बपाली का शरीर न पा सके। उन्होंने उनके अश्व का मृत शरीर देखा। सिंह ने अपनी थाप से उसकी दो पसलियां उखाड़ ली थीं। परन्तु देवी का पता न था। वन का कोना-कोना छान डाला गया। सिंह का शरीर भी वहां न था। सभीने यही समझ लिया कि सिंह अम्बपाली के शरीर को किसी कन्दरा में उठा ले गया और महामहिमामयी वैशाली की जनपद कल्याणी देवी अम्बपाली को खा गया।

तत्काल ही जैसे जो था, उसी स्थिति में मधुवन से चल दिया और एक दण्ड सूर्य चढ़ते-चढ़ते वैशाली की गली-गली में देवी अम्बपाली के सिंह द्वारा खा लिए जाने की कथा फैल गई। श्रेष्ठिचत्वर की सभी हाट तुरन्त बन्द हो गईं। संथागार का गण-सन्निपात तुरन्त स्थगित कर दिया गया। समस्त वैशाली का गण देवी अम्बपाली के सिंह द्वारा खा लिए जाने पर शोकसन्तापमग्न हो गया।

४०. साहसी चित्रकार

अम्बपाली ने आंखें खोलीं। उनकी स्मृति काम नहीं दे रही थी। उन्होंने आंखें फाड़-फाड़कर इधर-उधर देखा। सामने उनका अश्व मरा पड़ा था। उनके निकट ही वह भीमाकार सिंह भी। उसे देखते ही अम्बपाली के मुख से चीख निकल पड़ी। इसी समय किसीने हंसकर कहा—"डरो मत मित्र, सिंह मर चुका है।"

अम्बपाली ने देखा—एक छरहरे गात का लम्बा-सा युवक सामने एक शिलाखण्ड पर खड़ा मुस्करा रहा है। अम्बपाली से आंखें चार होते हुए उसने कहा :

"सिंह मर चुका, मित्र ! क्या तुम्हें अधिक चोट आई है ? मैं उठने में सहायता दूं ?"

अम्बपाली अपने पुरुष-वेश को स्मरण कर संकट में पड़ीं। उन्होंने घबराकर कहा—"नहीं, नहीं, धन्यवाद ! मुझे चोट नहीं आई है, मैं ठीक हूं।" यह कहकर वे व्याकुलता से अपने अस्तव्यस्त वस्त्रों को ठीक करने लगीं।

युवक ने तनिक निकट आकर हंसते हुए कहा—"वाह मित्र, तुम्हारा तो कण्ठस्वर भी स्त्रियों जैसा है ! तुम कदाचित् कोई सेट्ठिपुत्र हो ? किसी सामन्तपुत्र के संगदोष से मृगया को निकल पड़े ?"

अम्बपाली ने सिर हिलाकर सहमति प्रकट की।

"ठीक है, और कदाचित् आखेट में आने का यह प्रथम ही अवसर है ?"

"हां मित्र, पहला।" अम्बपाली ने झेंप मिटाने को मुस्कराकर कहा।

युवक एक बार खूब ठठाकर हंस पड़ा। उसने कहा—"और तुम्हें पहले-पहल सिंह के आखेट में आने के लिए तुम्हारे उसी मित्र ने सम्मति दी होगी जो तुम्हारे साथ था ?"

"जी हां, परन्तु वे हैं कहां ?"

"संभवतः वे सुरक्षित अपने डेरे में पहुंच गए होंगे। सिंह की गर्जना सुनकर उनका घोड़ा ऐसा भागा कि मैं समझता हूं कि वह बिना वासस्थल पर गए रुकेगा नहीं।"

इतना कहकर युवक फिर ही-ही करके हंसने लगा। उसने कहा—"बड़ा कौतुक हुआ, मित्र ! मैं पुष्करिणी के उस छोर पर बैठा अस्तं-

गत सूर्य का एक चित्र बना रहा था। कोई आखेट करने इधर आए हैं, यह मैं तुम लोगों की बातचीत तथा अश्वों की भनक सुनकर समझ गया था। हठात् सिंह-गर्जन सुन मैंने इधर-उधर देखा, तो तुम लोगों से दस हाथ दूरी पर सिंह को आक्रमण के लिए समुद्यत तथा तुम लोगों को असावधान देखकर मैं बर्छा लिए इधर को लपका। सो अच्छा हुआ—ज्योंही सिंह विकट गर्जन करके तुम्हारे अश्व पर उछ... वह-बरछा उसकी पसलियों को चीरकर हृदय में जा अड़ा। ... अपना गिर पड़े। सिंह तुम्हारे अश्व को लेकर इधर गिरा, उधर ... और आदेश को लेकर उनका अश्व एकदम हवा हो गया। खेद है, ... वह सुन्दर काम्बोजी अश्व मर गया।" ... रत्न उसके

अम्बपाली अवाक् रहकर मृत अश्व को देखने लगीं ... उन्होंने कहा—"धन्यवाद मित्र, तुमने प्राणरक्षा कर ली। परन्तु ... मैं मधुवन तक कैसे पहुंचूं भला? सूर्य तो अस्त हो रहा है।"

"असम्भव है। एक मुहूर्त में अन्धकार घाटी में फैल जाएगा। दुर्भाग्य से तुम्हारा अश्व मर गया है और इस समय दूसरा अश्व मिलना सम्भव नहीं; तथा मधुवन यहां से दस कोस है, जा नहीं सकते, मित्र! पर चिन्ता न करो, आओ, आज रात मेरी कुटिया में विश्राम करो मेरे साथ।"

अम्बपाली ने कुछ सोचकर कहा—"मित्र, तुम क्या यहीं कहीं निकट रहते हो?"

"कुछ दिन से, उस सामने की टेकरी पर। उस कुटिया को देख रहे हो न?"

"देख रहा हूं, पर तुम इस विजन वन में करते क्या हो?"

युवक ने हंसकर यहा—"चित्र बनाता हूं। यहां का सूर्यास्त उन पर्वतों की उपत्यकाओं में ऐसा मनोरम है कि मैं मोहित हो गया हूं।"

"तो तुम चित्रकार हो, मित्र?"

"देख नहीं रहे हो, यह रंग की कूर्च और यह चित्रपट?"

"हूं, और यह बर्छा? यह अमोघ हस्तलाघव? यह अभय पौरुष? यह सब भी चित्रकला में काम आने की वस्तुएं हैं?"

युवक फिर हंस पड़ा। उसने कहा—"मित्र, केवल कण्ठस्वर ही नहीं, बात कहने का, प्रशंसा करने का ढंग भी तुम्हारा स्त्रैण है। कुपित मत होना। इस हिंस्र अगम वन में एकाकी बैठकर चित्र बनाना, बिना इन सब साधनों के तो बन सकता नहीं। परन्तु बातों ही बातों में सूर्य

अस्त हो जाएगा तो फिर तुम्हें कुटी तक पहुंचने में कठिनाई होगी। आश्रो चलें, मित्र ! क्या मैं तुम्हें हाथ का सहारा दूं ? कहीं चोट तो नहीं आई है ?"

"नहीं, नहीं, धन्यवाद ! मैं चल सकने योग्य हूं, तुम आगे-आगे चलो, मित्र !"

पाली ने कुछ न कहकर अपनी रंग की तूलिका, कूर्च और चित्रपट
"डरो मत । था बर्छा कन्धे पर डाल, आड़ी-टेढ़ी पार्वत्य पगडण्डियों
अम्बपा निर्भय लम्बी-लम्बी डग भरता चल खड़ा हुआ और उसके
क शिलाखण-पछताती देवी अम्बपाली पुरुष-वेश के असह्य भार को
ढोते उसने कह

कुटिया में पहुंचते-पहुंचते सूर्यास्त हो गया । अम्बपाली को इससे बड़ी ढाढ़स हुई। उनकी कृत्रिम पुरुष-वेश की त्रुटियां उस धूमिल प्रकाश में प्रकट नहीं हुईं; परन्तु इस नितान्त एकान्त निर्जन वन में एकाकी अपरिचित युवक के साथ रात काटना एक ऐसी कठिन समस्या थी, जिसने देवी अम्बपाली को बहुत चल-विचलित कर दिया।

कुटी पर पहुंचकर युवक ने देवी को प्रांगण में एक शिला दिखाकर कहा—"इस शिला पर क्षण-भर बैठो, मित्र, मैं प्रकाश की व्यवस्था कर दूं।"

इतना कहकर और विना ही उत्तर की प्रतीक्षा किए वह कुटी में घुस गया। पत्थर घिसकर उसने आग लगाई। फिर उसने बाहर आकर कहा—"उस मंजूषा में आवश्यक वस्त्र हैं और उस घड़े में जल है। सामने के ताक पर कुछ सूखा हरिण का मांस और फल रखे हैं, अपनी आवश्यकतानुसार ले लो। संकोच न करना। मैं थोड़ा इंधन लेकर अभी आता हूं।"

इतना कहकर कुटी-द्वार से एक भारी कुल्हाड़ी उठा कन्धे पर रखकर लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ वह अन्धकार में विलीन हो गया।

४१. मंजुघोषा का प्रभाव

कुटिया में सामग्री बहुत संक्षिप्त थी। परन्तु कुटी में घुसते ही जिस वस्तु पर अम्बपाली की दृष्टि पड़ी, उसे देखते ही वह आश्चर्यचकित हो गई। वह जड़वत् खड़ी उस वस्तु को देखती रह गई। वह वस्तु एक महार्घ वीणा थी, जो चन्दन की चौकी पर रखी थी। वीणा का विस्तार

तो अद्भुत था कृ ही, उसका निर्माण भी असाधारण था। वह साधारण
मनुष्य के कौश क ल से बनी प्रतीत नहीं होती थी। उसपर अति अलौकिक
हाथीदांत की व चीकारी का काम हो रहा था और उसमें जो तुम्बे
काम में लाए हुआ थे, उनके विस्तार तथा सुडौलता का वर्णन ही नहीं
हो सकता था। तिष्ठाने अम्बपाली बड़ी देर तक उसी वीणा को आं
फाड़-फाड़कर दे इसमें आंधीं, उन्होंने उसे पहचान लिया था। वे वह-
से बड़ी विस्मित अभियान में असाधारण वीणा को लाया न अपना
इस कुटी के एकान्त 'कृतपुण्य' सा दिव्यवीणा को लेकर और आदेश
यास ही अर्हन्त सि [illegible] राने की शक्तिवाला
तरुण है [illegible] त सुन और ल [illegible] रत्न उसके

एक बार उन्हों समझा—य पूर्ण कुटिया में दृष्टि फें [illegible] त
पर्ण-भित्ति पर दो रन्तु वह, एक विशाल धनुष और दो तूणीर [illegible] गों
से सम्पन्न थे। ए कर भारी खड्ग भी एक कोने में लटक रहा था।
कुटी के [illegible] एक बड़ा-सा शिलाखण्ड था, जिसपर एक सिंह की
समूची [illegible] पड़ी थी। उसपर एक आदमी भली भांति सो सकता था।
यह स [illegible] ती दृष्टि से देख देवी अम्बपाली उसी अमोघ वीणा को
ध्यानपू [illegible] देखती ठगी-सी खड़ी रह गईं। उनके मस्तिष्क में कौशाम्बी-
पति उदयन का मिलनक्षण चित्रित होने लगा।

४२. एकान्त वन में

उस एकान्त वन के गर्भ में स्थापित इस निर्जन कुटी में, दीपक के टिमटिमाते प्रकाश में देवी अम्बपाली एकाकिनी उस कुटी के मध्य में स्थापित शिलाखण्ड पर बैठी कुछ देर एकटक उस दिव्यवीणा को देखती रहीं।

अम्बपाली की दृष्टि उसी वीणा पर थी। उन्हें हठात् उस वीणा के मध्य से एक मुख प्रकट होता-सा प्रतीत हुआ। यह उसी युवक का मुख था। कैसा प्रफुल्ल, गौर, कैसा प्रिय! अम्बपाली ने कुछ ऐसी अनुभूति की, जो अब तक उन्हें नहीं हुई थी। अपने हृदय की धड़कन वे स्वयं सुनने लगीं। उनका रक्त जैसे तप्त सीसे की भांति खौलने और नसों में घूमने लगा। उनके नेत्रों के सम्मुख शत-सहस्र-लक्ष-कोटि रूपों में वही मुख पृथ्वी, आकाश और वायुमण्डल में व्याप्त हो गया। उस मुख से वज्रध्वनि में सहस्र-सहस्र बार ध्वनित होने लगा—'नाचो अम्ब-

पाली, नाचो, वही नृत्य, वही नृत्य।' कठिनाई होगी।

? कहीं चोट तो

४३. अपार्थिव न[illegible]

[illegible] य हूं, तुम आगे-आगे

पा[illegible]ने समूचा भुना हुआ हरिण [illegible] स्थान [illegible] की [illegible] गोलिका, कूर्च और चित्रपट

"डरो [illegible] वहां का दृश्य देख[illegible] औ[illegible] [illegible] औड़ी-टेढ़ी पार्वत्य पगडण्डियों

अम्बप[illegible]त कुसुम[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भरता चल खड़ा हुआ और उसने

[illegible] शिलाख[illegible] में आत्म[illegible] [illegible] [illegible]ली पुरुष-वेश के असह्य भार को

ढोते उसने क[illegible] उठा ली, उसपर [illegible]

[illegible]सिद्[illegible]

गर्व [illegible] ज्वालामुखी ने ज्वलि[illegible] गया। अम्बपाली को इस

पर [illegible]डेलने आरम्भ कर दिए हों, जैसे भूचा[illegible] की त्रुटियां उस [illegible]मिल प्रका

मग [illegible]रने लगे हो। वीणा की झंकृति पर [illegible]त निर्जन व[illegible] में एका

अम्बपाली सावधान होतीं और फिर भावसमुद्र में डू[illegible] क[illegible] समस्या

धीरे-धीरे दोनों ही बाह्यज्ञान-शून्य हो गए। सुदूर [illegible]। टिमटिमाते नक्षत्रों की साक्षी में, उस गहन वन के एका[illegible] [illegible] दोनों ही कलाकार पृथ्वी पर दिव्यकला को मूर्तिमती करते [illegible] व्यवस्[illegible] करते ही रहे। उनके पार्थिव शरीर जैसे उनसे पृथक् हो गए।

४४. अभिन्न हृदय

उसी शिलाखण्ड पर गहन-तिमिराच्छन नीलाकाश में हीरे की भांति चमकते हुए तारों की परछाईं में दोनों प्रेमी हृदय एक-दूसरे को आप्यायित कर रहे थे। युवक शिला का ढासना लगाए बैठा था और अम्बपाली उसकी गोद में सिर रखकर लेटी हुई थीं।

युवक ने धीरे से नीचे झुककर अम्बपाली के प्रफुल्ल होंठों का चुम्बन लिया। अम्बपाली ने भी चुम्बन का प्रत्युत्तर देकर युवक के वक्षस्थल में अपना मुंह छिपा लिया।

कुछ देर बाद युवक ने धीरे से अम्बपाली को अपने बाहुपाश से मुक्त करके कहा :

"तो अब विदा, प्रिये, कल के सुप्रभात तक।"

अम्बपाली का मुख सूख गया। उसने कहा :

"तुम कहां सोओगे?"

य कृतपुण्य होकर रह। परन्तु वहां तू मध्यमा की प्रतीक्षा न करना, सब सामग्री बेच श्वसुर से भी जितना धन भव हो, ले, भारी सार्थवाह के रूप में बिक्री करता और ा हुआ बंग, कलिंग, अवन्ती, भोज, आन्ध्र, माहिष्मती, प्रतिष्ठान की यात्रा कर। यह लेख ले और जहां-जहां ाम इसमें अंकित हैं, उन्हें यह मुद्रिका दिखा, उनके सह- के अभियान में योग संग्रह कर और वैशाली में अपना रख 'कृतपुण्य' सार्थवाह होकर प्रवेश कर। और आदेश ा।"

बात सुन और लक्षावधि स्वर्ण-मूल्य के रत्न उसके सने समझा—यह ब्राह्मण अवश्य कोई छद्मवेशी बहुत । परन्तु वह उससे पूछने का साहस नहीं कर स । होकर कहा—"जैसी आज्ञा, परन्तु आपके द ही दें, के

ण में नन्दन साहु की हट्ट है, भूमि प्रासाद के में लहराने लगे। तुझे आवश्यकता न जने लगी, जिसका घोरष सुनकर वैश री म ण में निगम-सम्म से जगकर आंख मलते ए सप्तभूमि प्रासाद क र अप्रकट न देवी की आज्ञा से सम्पूर्ण प्रासाद फूलों, पताकाओं, तोरणों खित रत्नजटित बन्दनवारों से सजाया गया। भृत्य-बन्दी चांदी के तूर्य द्वारा बारम्बार गगनभेदी नाद करने लगे।

नागरिकों का ठट्ठ अम्बपाली के बाहरी प्रांगण और सिंहपौर पर एकत्रित हो गया था। सभी देवी के इस प्रकार अकस्मात् लोप हो जाने और फिर अकस्मात् ही अपने आवास में लौट आने की रहस्यपूर्ण अद्भुत कहानी विविध भांति कह रहे थे। सर्वत्र यह बात प्रसिद्ध हो गई कि देवी अम्बपाली को गहन वन में क्रीड़ारत गन्धर्वराज चित्ररथ गन्धर्वलोक में ले गए थे। वहां गन्धर्वराज ने मंजुघोषा वीणा स्वयं बजाई थी और समस्त दिव्यदेहधारी गन्धर्वों के सम्मुख देवी अम्ब-पाली ने अपार्थिव नृत्य किया था।

४६. दो बटारू

चम्पा, वैशाली और राजगृह का मार्ग जहां से तीन दिशाओं को जाता

पाली, नाचो, वही नृत्य, वही नृत्य।' कठिनाई होगी ? कहीं चोट

४३. अपार्थिव न...

...ये हूं, तुम आगे-आ...

पा... ने समूचा भुना हुआ हरिण ...

"डरो म... वहां का दृश्य देख... ...लिका, कूर्च और चि...

...त कुसुम... ...ड़ी-टेढ़ी पार्वत्य पगडंडि...

अम्बपा... में आत्म... ...भरता चल खड़ा हुआ और उ...

...रू शिलाख... उठा ली, उसपर ... ...ली पुरुष-वेश के असह्य भार...

ढोते उसने क...

...सिन्...

गर्व ... ...स ज्वालामुखी ने ज्वलि... ...में गया। अम्बपाली को ...

...ढ़ी ... ने आरम्भ कर दिए हों, जैसे भूचा... की त्रुटियां उस घ... मिल...

...ऐसी ... हो। वीणा की झंकृति पर ... ...त निर्जन वन में ...

से अ... ने इधर... ...ज्ञान होतीं और फिर भावसमुद्र में डू... ...ई कठिन... समस्या...

लगा। ऐसा प्रत... ...दोनों ही बाह्यज्ञान-शून्य हो गए। सुदूर ... ...और...

सुस्ताकर उसने व... ...की साक्षी में, उस गहन वन के ... ...र देख ... ...णाम...

निकाल आहार कर... ...त्री पर दिव्यकला को

और पूछा :

...तु शरीर जैसे उनसे ...

"कहां के ब्राह्मण हैं, ..."

"मगध के।"

"तो भन्ते, मेरे पास पाथेय है, भोजन करो।"

"जैसी तेरी इच्छा, गृहपति ! तू कौन है ?"

"सेट्ठि।"

"कहां का, गृहपति ?"

"वीतीभय का।"

"स्वस्ति, गृहपति !" कहकर ब्राह्मण मौन हो गया।

जिसे ब्राह्मण ने गृहपति कहकर सम्मानित किया था, उसने कुत्तक की गांठ खोल उसमें से एक बड़ा-सा मधुगोलक निकालकर श्रद्धापूर्वक ब्राह्मण के आगे धर दिया। दूसरा मधुगोलक वह वहीं वृक्ष की छाया में बैठकर खाने लगा। ब्राह्मण की ओर उसने पीठ कर ली।

ब्राह्मण भी भूखा था। परन्तु ज्योंही उसने मधुगोलक को तोड़ा—उसमें से मुट्ठी-भर तेजस्वी रत्न निकल पड़े। ब्राह्मण आश्चर्यचकित हो उस बटारू के मलिन वेश और दीन दशा की ओर देखने लगा। उसका आश्चर्य बढ़ता जा रहा था। यदि यह वास्तव में इतना श्रीमन्त

"सा।थ कृतपुण्य होकर रह। परन्तु वहां तू मध्यमा की प्रतीक्षा
"वि न करना, सब सामग्री बेच श्वसुर से भी जितना धन
"वि संभव हो, ले, भारी सार्थवाह के रूप में बिक्री करता और
र लेता हुआ बंग, कलिंग, अवन्ती, भोज, आन्ध्र, माहिष्मती,
ौर प्रतिष्ठान की यात्रा कर। यह लेख ले और जहां-जहां
नाम इसमें अंकित हैं, उन्हें यह मुद्रिका दिखा, उनके सह-
ली के अभियान में योग संग्रह कर और वैशाली में अपना
गुप्त रख 'कृतपुण्य' सार्थवाह होकर प्रवेश कर। और आदेश
दूंगा।"

की बात सुन और लक्षावधि स्वर्ण-मूल्य के रत्न उसके
कर उसने समझा—यह ब्राह्मण अवश्य कोई छद्मवेशी बहुत
है। परन्तु वह उससे पूछने का साहस नहीं कर सका।
नत होकर कहा—"जैसी आज्ञा, परन्तु आपके दर्शन कैसे

...पण में नन्दन साहु की हट्ट है, वहीं...
...भद्र, ...
...आर्य, दुष्टा... ...ी तुझे आवश्यकता नहीं हो, अब मैं
...री ...ायण में निगम-सम्मत होता है, वहीं
रहता हूं। वहां ... तुझपर अप्रकट न रहेगा
...आश्रय में।"

"परन्तु इस अवस्था में क्यों ... लिखित ...जंपत्र दि...
"मेरे पास धन न... है, आर्य!"
"पाथेय कहां पाया?"
"माता से छिपाकर मध्यमा ने दिया।"

ब्राह्मण कुछ-कुछ मर्म समझ गया। वह सन्देह की तीखी आंखों से
बटारू को देखता रहा। फिर एकाएक अट्टहास करके हंस पड़ा।
उस हंसने से अप्रतिभ हो बटारू ने कहा :
"आर्य के इस प्रकार हंसने का क्या कारण है?"
"यही कि, गृहपति, तू भेद को छिपा नहीं सका।"
बटारू ने सूखे कंठ से कहा—"भेद कैसा?"
"तो तू सत्य कह, भद्र, तू कौन है?"
"जो कहा, वह क्या असत्य है?"
"असत्य ही है, भद्र!"
"कैसे जाना, आर्य?"
"तेरे नक्श देखकर, तू तो सामन्तपुत्र है।"

आने लगीं। एक दिन परिषद् का राजस्व नगर में आते हुए मार्ग में लूट गया और उसके कुछ दिन बाद ही दिनदहाड़े अन्तरायण भी लूट लिया गया। इस घटना से वैशाली में बहुत आतंक छा गया। लोग नगर छोड़कर भागने लगे।

४८. प्रत्यागत

फिर उन्हीं दिनों कृतपुण्य सेट्ठि की वैशाली के अन्तरायण में धूम मच गई। सेट्ठियों के निगम ने उसका स्वागत-सत्कार करने को गण-नक्षत्र मनाया। नगर-सेट्ठि ने उसे घर बुलाकर गंधमाला से सम्मानित किया। इसके ठाट-बाट, धन-वैभव तथा विक्रेय सामग्री को देख वैशाली का सेट्ठि-निगम सन्न रह गया। सर्वत्र यही चर्चा होने लगी कि चम्पा का यह महासेट्ठि चम्पा के पतन के बाद राजकुल की संपूर्ण सम्पदा लेकर वैशाली में भाग आया है।

पाठक इस 'कृतपुण्य' को भूले न होंगे। यह भाग्यविदग्ध हर्षदेव का नूतन संस्करण था।

भाग्य की नियति से विक्षिप्तावस्था में वैशाली को त्यागने के सात वर्ष पश्चात् हर्षदेव ने महासेट्ठि सार्थवाह कृतपुण्य के रूप में वहां प्रवेश किया और उत्तरायण में सहस्र स्वर्ण शिखरों वाला हर्म्य श्वेत मरमर का बनवा दास-दासियों, कम्मकरों, लेखकों, कर्णिकों, दण्डधरों, द्वार-पालों, रक्खकों से सेवित हो देखते ही देखते सर्वपूजित हो वह वहां निवास करने लगा और अपनी दिनचर्या से ऐश्वर्य-चमत्कार दिखा-दिखाकर नगर-नागर और जनपद को चमत्कृत करने लगा, तो कुछ दिन तक तो लोग सब कुछ भूलकर सेट्ठि कृतपुण्य की ही चर्चा वैशाली में घर-घर करने लगे।

४९. वैशाली में मगध-महामात्य

वैशाली के जनपद में एक बार फिर भूकम्प हुआ। वैशाली के महान राजमार्ग पर दीर्घकाय ब्राह्मण पांव-प्यादा धीर-मन्थर गति से संथागार की ओर बढ़ रहा था। उसके पांव नंगे और धूल-धूसरित थे कमर में एक शाण-शाटिका और कन्धे पर शुभ्र कौशेय पड़ा था, जिसके बीच में उसका स्वच्छ जनेऊ चमक रहा था। इस ब्राह्मण का वर्ण गौर, मुख-

मुद्रा गम्भीर और तेजपूर्ण नेत्र, दृष्टि पैनी, ललाट उन्नत, कन्धे, और ग्रीवा मांसल, होंठ संपुटित, भालपट्ट चन्दनचर्चित, नंगे सिर पर शत-धौत हिमश्वेत चोटी। वह अगल-बगल नहीं देख रहा था, उसकी दृष्टि पृथ्वी पर न थी।

उसके निकट आने तथा साथ चलने की स्पर्धा वैशाली में कोई नहीं कर सकता था। उसके पचास हाथ के अन्तर पर दो सहस्र ब्राह्मण नंगे पैर, नंगे वदन, नंगे सिर, केवल शाटिका कमर में पहने और जनेऊ हाथों में ऊंचे किए चुपचाप चल रहे थे। उनके पीछे सहस्रों नागरिक, ग्रामीण, सेट्ठि, सामन्त, विश, कम्मकर और अन्य पुरुष थे। घरों के झरोखों से मिसिका और अलिन्दों से कुलवधू, गृहपति, पत्नियां आश्चर्य, कौतूहल और भीतमुद्रा से इस सूर्य के समान तेजस्वी ब्राह्मण को देख रहे थे।

यह ब्राह्मण विश्वविख्यात राजनीति का ज्ञाता, मगध का पदच्युत दुर्धर्ष अमात्य वर्षकार था। उनके राजविग्रह, राजकोप तथा राजच्युति के समाचार प्रथम ही विविध रूप धारण करके वैशाली में फैल गए थे।

संथागार के प्रांगण में वैशाली गणसंघ के अष्टकुल प्रतिनिधियों ने महामात्य का स्वागत किया।

५०. भद्रनन्दिनी

बहुत दिन बाद वैशाली में अकस्मात् फिर उत्तेजना फैल गई। उत्तेजना के विषय दो थे—एक मगध-महामात्य आर्य वर्षकार का मगध-सम्राट से अनादृत होकर वैशाली में आना, दूसरा विदिशा की अपूर्व सुन्दरी वेश्या भद्रनन्दिनी का वैशाली में बस जाना। जिस प्रकार आर्य वर्षकार उस समय भूखण्ड पर विश्वविश्रुत राजनीति के पण्डित प्रसिद्ध थे, उसी प्रकार भद्रनन्दिनी रूप, यौवन और वैभव में अपूर्व थी। देखते ही देखते उसने अपने वैभव का ऐसा विस्तार कर लिया कि अम्बपाली की आभा भी फीकी पड़ गई। नगर-भर में यह प्रसिद्ध हो गया कि भद्रनन्दिनी विदिशा के अधिपति नागराज शेष के पुत्र पुरंजय भोगी की अन्तेवासिनी थी। वह नागकुमार भोगी के असद्-व्यवहार से कुपित होकर वैशाली आई है। उसके पास अगणित रत्न, स्वर्ण और सम्पदा है। उसका रूप अमानुषिक है और उसका नृत्य मनुष्य को मूर्च्छित कर देता है।

५१. मोहनगृह की मन्त्रणा

संथागार के पिछले भाग से संलग्न निशान्त हर्म्य थे, जिनमें चारों ओर अनेक अट्टालिकाएं ऐसी चतुराई से बनाई गई थीं, जिनकी भीत और निकास के मार्गों का सरलता से पता नहीं लगता था। एक बार अपरिचित जन उन टेढ़े-तिरछे मार्गों में फंसकर फिर निकल ही नहीं सकता था। इसी निशान्त के बीचोबीच भूगर्भ में यह मोहनगृह था।

इसी मोहनगृह में आज वज्जी संघ के विशिष्ट जनों की मन्त्रणा बैठी थी। मन्त्रणागृह में घृत के सात दीप दीपाधारों पर जल रहे थे और सब मिलाकर कुल नौ पुरुष वहां गम्भीर भाव से मन्त्रणा में व्यस्त थे। इन नौ पुरुषों में एक गणपति सुनन्द, दूसरे महाबलाध्यक्ष सुमन, तीसरे सेनापति सिंह, चौथे विदेश सचिव नागसेन, पांचवें संधि-विग्राहिक जयराज, छठे नौबलाध्यक्ष काप्यक, सातवें अर्थ-सचिव भद्रिय, आठवें आगारकोष्ठक स्वर्णसेन और नवें महाअट्टवी रक्खक सूर्यमल्ल थे। विदेशी सचिव नागसेन ने मन्त्रणा का आरम्भ किया। उन्होंने कहा—"भन्तेगण सुनें, यह मोहनमन्त्रणा अत्यन्त अनिवार्य होने पर मैंने आमन्त्रित की थी। मेरे पास इस बात के पुष्ट प्रमाण संगृहीत हैं कि अतिनिकट भविष्य में मगध सम्राट वैशाली पर आक्रमण करने की योजना बना रहे हैं और उनके अमात्य ब्राह्मण वर्षकार मन्त्रयुद्ध का संचालन करने वैशाली में आए हैं। सम्राट द्वारा उनका कलह और बहिष्कार केवल कपट-योजना है। उन्होंने मन्त्रयुद्ध का वैशाली में प्रारंभ कर दिया है और वे उसमें सर्वतोभावेन सफल होते जा रहे हैं। उनके सैकड़ों गुप्तचर विविध रूप धारण कर वैशाली में आ बसे हैं। उनके नट, विट, वेश्याएं कुटनिएं, विदूषक तथा सत्री और तीक्ष्ण सभ्य नागरिकों के वेश में शिल्पी, दूर्त, वणिक, सार्थवाह, सेट्ठि बनकर वैशाली में फैल गए हैं। विविध प्रकार के धूर्त चर चारों ओर भर गए हैं और यह ब्राह्मण कुण्डग्राम के ब्राह्मण सन्निवेश में एक टूटे छप्पर के नीचे बैठ उनके द्वारा मन्त्रयुद्ध का संचालन कर रहा है।"

गणपति सुनन्द ने कहा—"आयुष्मान् के पास इन सब बातों के संबंध में क्या-क्या प्रमाण हैं ?"

"भन्ते, आपने क्या विदिशा की वेश्या भद्रनन्दिनी का नाम नहीं सुना, जिसके हाथ में आज वैशाली के प्राण हैं ?"

"वह कौन है ?"

"मागध विषकन्या कुण्डनी। उसमें ऐसी सामर्थ्य है, भन्ते कि जिस पुरुष को वह चुम्बन करेगी, उसकी तुरन्त मृत्यु हो जाएगी। चम्पा की विजय का श्रेय इसी विषकन्या को हैं। इसीने चम्पा के महाराजा दधिवाहन के प्राण लिए हैं, भन्ते!"

"ओह, ऐसी भयंकर सूचना! क्या तुमने उसके सम्बन्ध में यथातथ्य जाना है, भद्र!"

"भन्ते, मैं उससे मिल लिया हूं। अब तक जो लिच्छवि उसके द्वारा मरे नहीं, यह उसकी कृपा है, नहीं तो कोई दिन ऐसा नहीं जाता, जिस दिन वह सौ सुवर्ण देनेवाले किसी लिच्छिवि तरुण का अपने आवास में स्वागत न करती हो। यह भी सम्भव है कि वह किसी महती योजना की प्रतीक्षा में हो!"

"यह तो अति भयंकर बात है, आयुष्मान्!"

नागसेन ने कहा—"अभी अर्थ-सचिव भद्रिय और महाअट्टवी रक्खक सूर्यमल्ल भी कुछ सूचनाएं देंगे।"

"आयुष्मान भद्रिय कहें!"

"भन्ते, आपको ज्ञात है कि चम्पा का कोई धनकुबेर कृतपुण्य सेट्ठि गृहपति अन्तरायण में कहीं से आकर बस गया है।"

"उसके ऐश्वर्य और सम्पदा के सम्बन्ध में मैंने सुना है। उसकी क्या बात है?"

"वह भी इसी कुटिल ब्राह्मण का चर है। वह देश-देशान्तरों से वैशाली निगम के नाम हुंडियां मोल ले-लेकर संचित कर रहा है। उसका विचार किसी भी दिन ब्राह्मण का संकेत पाते ही वैशाली के सब सेट्ठियों के टाट उलटवाने का है।"

"यहां तक, भद्र?"

"अब भन्ते, सूर्यमल्ल की सूचना भी सुनें।"

"आयुष्मान् बोलें!"

"भन्ते, मुझे यह सूचना देनी है कि जिस दस्यु बलभद्र के आतंक से आजकल वैशाली आतंकित है, वह भी एक मागध सेनानी है और उसके अधीन दस सहस्र साहसी भट मधुवन में छिपे हैं, एवं पचास सहस्र सैन्य वज्जीगण के विविध वन्य प्रान्तों में गुप्त रूप से व्यवस्थित हैं। उसके सेनानायक सामन्त और नायकगण वैशाली के उत्तर-क्षेत्रिय-कुण्डपुर-सन्निवेश, वाणिज्य ग्राम, चापाल चैत्य, सप्ताम्र चैत्य, बहुपुत्र चैत्य, कपिनह्य चैत्य आदि स्थानों में छद्मवेश और छद्मनामों से बस रहे

हैं।"

"तो इसका अभिप्राय यह है कि अब वैशाली में कौन शत्रु है और कौन मित्र, इसका जानना ही कठिन है।" महाबलाधिकृत सुमन ने कहा।

"भन्ते," नागसेन ने कहा—"अब वैशाली-विजय करने को सम्राट के यहां आने की और सैन्य-अभियान की आवश्यकता ही नहीं है। जो कुछ हो गया है, वैशाली को जय करने के लिए वही यथेष्ट है।"

अब सेनापति सिंह ने खड़े होकर कहा :

"भन्ते गणपति, यह आपने शत्रुओं की विकट योजना का एक अंश सुना, अब अपने बल को भी देखिए। वैशाली का सम्पूर्ण राष्ट्र आज मदिरा और विलास में डूबा हुआ है। उसके प्राण अम्बपाली के आवास में पड़े रहते हैं। ये सेट्ठिजन, जो असंख्य सम्पदा के साथ सम्पूर्ण व्यापार-विनिमय के भी एकमात्र स्वामी हैं, आवश्यकता पड़ने पर हमें युद्ध में कोई सहायता नहीं देंगे। हमारे कोष की दशा शोचनीय है। अर्थ-सचिव इसपर प्रकाश डाल सकते हैं। सैन्य-संगठन का ढांचा ढीला है। तरुण कामुक और विलासी हैं।" उन्होंने तीखी दृष्टि स्वर्णसेन पर डाली, जो चुपचाप विमनभाव से सब बातें सुन रहे थे।

गणपति ने कहा—"भद्र, भद्रिय क्या कुछ कहेंगे ?"

भद्रिय ने कहा—"केवल यही कि यदि हमें तत्काल ही युद्ध करना पड़ा तो राजकोष की कोई सहायता नहीं मिल सकती। बलि-संग्रह नहीं हो रहा; और जब से दस्यु बलभद्र का आतंक बढ़ा है, इसमें और भी वृद्धि हो गई है। सम्भव है, आगार-कोष्ठक मित्र स्वर्णसेन सेना को अन्न और सामग्री दे सकें।" उन्होंने भी मुस्कराकर स्वर्णसेन की ओर देखा।

स्वर्णसेन ने खड़े होकर कहा—"दस्यु बलभद्र का दमन यदि तत्काल नहीं हुआ, तो फिर आगार की सारी व्यवस्था नष्ट हो जाएगी।"

अब नौबलाध्यक्ष काप्यक ने खड़े होकर कहा :

"भन्ते गणपति, एक महत्त्वपूर्ण सूचना मुझे भी देनी है। मागधों ने गंगा के उस पाटलिग्राम में सेना का एक अड्डा बनाया है। वे जब-तब आकर ग्रामवासियों को घर से निकालकर स्वयं वहां रहने लगते हैं और वे गंगा और मिही के तीर पर दो-दो लीग के अन्तर पर काष्ठ के कोट बनवाते जा रहे हैं। पाटलिग्राम का गंगातट नौकाओं से पटा पड़ा है। इस प्रकार वैशाली की ऐन नाक पर यह पाटलिग्राम मागधों का सैनिक स्कन्धावार बनता जा रहा है और कभी वह वैशाली के

नौ-बल की बहुत बड़ी बाधा प्रमाणित हो सकता है।"

"तो आयुष्मान् नागसेन कहें कि सब बातों को विचारकर हमें क्या करणीय है?"

स्वर्णसेन ने बीच ही में खड़े होकर कहा :

"मेरा मत है कि इस कुटिल ब्राह्मण को तुरन्त बन्दी बना लिया जाए और उन सब गुप्तचरों को भी।"

"यह तो खुला रण-निमन्त्रण होगा, आयुष्मान्!" महाबलाधिकृत सुमन ने कहा—"और इसका परिणाम भीषण हो सकता है।"

नागसेन ने कहा, "मेरा मत है कि हमें त्रिसूत्रीय योजना का विस्तार करना चाहिए। एक सूत्र यह है कि हमें निसृष्टार्थ दूत मगध को प्रेषित करना चाहिए। यह दूत कुलीन, बहुश्रुत, बहुबान्धव, बहुकृत, बहुविद्य, बुद्धि-मेधा-प्रतिभा-सम्पन्न, मधुरभाषी, सभाचतुर, प्रगल्भ, प्रतिकार और प्रतिवाद करने में समर्थ, उत्साही, प्रभावशाली, कष्ट-सहिष्णु, निरभिमानी तथा स्थिर स्वभाव वाला पुरुष हो। उसके साथ सब यान-वाहन पुरुष परिवार हो, करणीय विषय का ऊहापोह करने योग्य हो।

"वह सम्राट को मैत्री-सन्देश दे, उसकी गतिविधि देखे, शत्रु के आटविक, अन्तपाल, नगर तथा राष्ट्र के निवासी प्रमुख जनों से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करे। मागध सैन्य का संगठन, व्यूह-परिपाटी-संख्या देखे-समझे। शत्रु के दुर्ग, उसका कोष, आय के साधन, प्रजा की जीविका और राष्ट्र की रक्षा एवं उसके छिद्रों को भी देखे।

"दूसरा सूत्र यह कि हमें अपने इंगित, चेष्टा, आचार, विचार किसीसे ऐसा प्रकट नहीं करना चाहिए, जिसमें वैशाली में व्याप्त मागध दूतों को यह ज्ञात हो जाए कि हम सावधान हैं और हमारी योजना क्या है।

"तीसरा सूत्र यह है कि हमें कोष, अन्न और सैन्य का भली भांति संगठन और व्यवस्था करनी चाहिए।"

महाबलाधिकृत ने कहा—"मुझे योजना स्वीकृत है। आयुष्मान् नागसेन का कथन यथार्थ है। मैं प्रस्ताव करता हूं कि स्वयं नागसेन ही मगध जाएं।"

"नहीं भन्ते, यह ठीक नहीं होगा। मैं यहां नियुक्त हूं, मेरी अनुपस्थिति तुरन्त प्रकट हो जाएगी। मेरा प्रस्ताव है कि मित्र जयराज जाएं।"

"मैं स्वीकार करता हूं; परन्तु योजना मेरी अपनी होगी। प्रकट में कोई अन्य व्यक्ति बहुत-सी उपायन सामग्री लेकर चले और मैं गुप्त-रूप में। दूत का जाना वर्षकार की सम्मति से उनके लिए सम्राट से अनुनय करने के लिए हो। हम लोग सब भांति से दबे हुए हैं, भयभीत हैं, असंगठित हैं, असावधान हैं, यही भाव प्रकट हो। मेरी अनुपस्थिति भी प्रकट न हो। मेरे स्थान पर मेरा मित्र काप्यक, मेरा अभिनय करे।"

"यह उत्तम है, आयुष्मान्," महाबलाधिकृत सुमन ने कहा—"सैन्य संगठन का कार्य आयुष्मान् सिंह को सौंपता हूं।"

"मैं स्वीकार करता हूं। मेरी भी अपनी स्वतन्त्र योजना होगी और अभी वह गुप्त रहेगी।"

"तो ऐसा ही हो आयुष्मान्। अब रह गया कोष, धान्य और साधन। इसके लिए आयुष्मान् भद्रिय उपयुक्त हैं। फिर हम सबकी सहायता करेंगे। आयुष्मान् जयराज एक मास में लौट आएं, तभी दूसरी बार मोहनगृह-मन्त्रणा हो।" गणपति सुनन्द ने कहा तथा मन्त्रणा समाप्त हुई।

५२. अनाहूत

अम्बपाली का जन्म-नक्षत्र था। वैशाली में उसका उत्सव मनाया जा रहा था। सम्पूर्ण नगर तोरण, ध्वजा और विविध पताकाओं से सजाया गया था। संथागार की छुट्टियां कर दी गई थीं। गत आठ वर्षों से लिच्छवि गणतन्त्र का यह एक जातीय त्योहार-सा हो गया था।

अम्बपाली के आवास सप्तभूमि प्रासाद ने भी आज शृंगार किया था; परन्तु यह कोई नहीं जानता था कि यह उसका अन्तिम शृंगार है।

सातवें अलिन्द में देवी अम्बपाली अपनी दासियों, सखियों और नर्तकियोंसहित नगर के श्रीमन्त सेट्ठिपुत्रों और सामन्तपुत्रों का हंस-हंसकर स्वागत एवं मनोरंजन कर रही थीं। बहुमूल्य उपहारों का आज ढेर लगा था, फिर भी तांता लग रहा था।

मध्यरात्रि व्यतीत होने लगी। पान-आहार समाप्त होने पर आया। अनावश्यक भीड़ छंट गई। केवल बड़े-बड़े सामन्तपुत्र और सेट्ठिपुत्र अब निराला पा सुख से उपाधानों पर उठंग गए। उनकी

अलस देह, अधमुंदी आंखें और गद्गद वाणी प्रकट कर रही थी कि वे आज इस लोक में नहीं, प्रत्युत मायापूरित किसी अलौकिक स्वर्ग-लोक में पहुंच चुके हैं।

मद्य की झोंक में युवराज स्वर्णसेन ने कहा—"देवी, इस परमानन्द के अवसर पर एक ही अभिलाषा रह गई।"

"तो समर्थ युवराज, अब उसे किस अवसर के लिए अवशिष्ट रखते हैं? पूरी क्यों नहीं कर लेते?"

"खेद है, पूरी नहीं कर सकता।" उन्होंने हाथ का मद्यपात्र खाली करके मदलेखा की ओर बढ़ा दिया। मदलेखा ने उसमें और मद्य डाल दी।

अम्बपाली ने मन्द मुस्कान करके कहा—"क्यों नहीं, युवराज?"

युवराज ने ठण्डी सांस लेकर कहा—"ओह, बड़ी अभिलाषा थी!"

"हाय, हाय, ऐसी अभिलाषा की वस्तु योंही जा रही है! परन्तु युवराज प्रिय, क्या उसकी पूर्ति एक बार परिपूर्ण छलकते मद्यपात्र को पीने से नहीं हो सकती?"

"नहीं, नहीं, सौ पात्रों से भी नहीं, सहस्र पात्रों से भी नहीं।" यह कहकर उन्होंने वह प्याला रिक्त करके मदलेखा की ओर बढ़ा दिया। मदलेखा ने देवी का इंगित पा उसे फिर आकंठ भर दिया।

सोमदत्त ने कहा—"मित्र युवराज, आपकी वह अभिलाषा क्या है?"

"यही कि इस समय दस्यु बलभद्र यहां यदि आमन्त्रित किया गया होता, तो इस मद्य में अपने खड्ग को डुबोकर इसे उसके वक्ष के आर-पार कर देता।"

देवी अम्बपाली ने कहा—"मित्रो, क्या तुममें से किसीने दस्यु को देखा भी है?"

"नहीं, नहीं देखा है।"

"तो यदि वह छद्मवेश धारण करके यहां आया हो; आकर पान-गोष्ठी का आनन्द लूट रहा हो, तो?"

"तो, यह तो बड़ी दूषित बात होगी।" सूर्यमल्ल ने कहा।

"दूषित किसलिए, प्रिये?"

"हम नागरिकों के साथ एक दस्यु पान करे!"

"परन्तु मैं सोचती हूं भद्र, कि किसी भांति हम जान जाएं कि वन्य पशु-पक्षी हम लोगों के विषय में क्या सोचते होंगे—तो संभव है,

हम जानकर आश्चर्य करें कि वे हम भद्र नागरिकों में बहुत-से दोषों का उद्घाटन कर लेंगे।"

"किन्तु देवी, यदि उस दस्यु को एक बार देख पाएं ?"

"तो मैं उसे स्वयं एक पात्र भरकर दूं और अपने को प्रतिष्ठित करूं।"

"प्रतिष्ठित ?" सूर्यमल्ल ने चिढ़कर कहा।

"क्यों नहीं, मित्र ? अन्ततः वह एक साहसिक और वीर पुरुष तो है ही।"

'यह तो तभी कहा जा सकता है, जब वह एक बार हमारे खड्ग का पानी पी जाए।"

इसी समय कक्ष की एक ओर से किसीने शान्त-स्निग्ध, किन्तु स्थिर वाणी में कहा, "देवी अम्बपाली अपने हाथों से एक पात्र मद्य देकर यदि अपने को सुप्रतिष्ठित करना चाहें तो यह उनके लिए सर्वोत्तम अवसर है।"

सबने आश्चर्यचकित होकर उधर देखा। एक स्तम्भ की ओट से दीर्घकाय, बलिष्ठ पुरुष नग्न खड्ग हाथ में लिए धीर गति से आगे बढ़ रहा था। उसका सर्वांग काले वस्त्र से आवेष्टित था और मुख पर भी काला आवरण पड़ा हुआ था।

यह अतर्कित, असम्भाव्य घटना देख क्षण-भर के लिए सब कोई विमूढ़ हो गए। अम्बपाली उस कण्ठस्वर में कुछ-कुछ परिचित ध्वनि पाकर संदेह और उद्वेग से उस आगन्तुक को देखने लगीं। इसी समय सूर्यमल्ल ने खड्ग लेकर आगे बढ़कर कहा—"यदि तुम वही दस्यु हो, जिसकी हम अभी चर्चा कर रहे थे, तो तुम्हें इसी क्षण मरना होगा।"

"जल्दी और व्यवस्थाक्रम भंग मत करो, मित्र सूर्यमल्ल। मैं वही हूं, जिसकी तुम लोग चर्चा कर रहे थे। परन्तु मैं तुमसे अभी क्षण-भर बाद बात करूंगा, पहले देवी अम्बपाली एक चषक मद्य अपने हाथों मुझे प्रदान कर सुप्रतिष्ठित हों और मुझे आप्यायित करें।"

सूर्यमल्ल ने बिना कुछ बोले खड्ग उठाया। अम्बपाली ने अब आगन्तुक के कण्ठस्वर को भली भांति पहचान लिया। उन्होंने आगे बढ़कर सूर्यमल्ल का हाथ पकड़कर कहा, "ठहरो, भद्र, पहले मद्य दूंगी।" उन्होंने अपने हाथों मद्यपात्र भरकर आगे बढ़कर दस्यु को दिया।

मद्य पीकर उसने पात्र आधार पर रख दिया और कहा—"सुप्रतिष्ठित हुआ, देवी!"

"मैं सुप्रतिष्ठित हुई, भन्ते !"

सूर्यमल्ल ने आगे बढ़कर कहा—"बहुत हुआ, देवी अम्बपाली, अब आप तनिक हट जाइए।"

"परन्तु मेरे आवास में आज रक्तपात नहीं होगा।" उन्होंने आगे बढ़कर कहा।

दस्यु ने कहा—"देवी अम्बपाली ! आज सबकी इच्छा पूरी होने दो। मित्र सूर्यमल्ल, तुम्हारी पारी क्षण-भर बाद आएगी। अभी युवराज स्वर्णसेन अपनी वह चिरभिलषित इच्छा पूरी करें, जो शत-सहस्र मद्यपात्रों से भी पूर्ण होनेवाली नहीं थी।" फिर थोड़ा आगे बढ़कर कहा, "मित्र स्वर्णसेन, यह सेवक दस्यु बलभद्र उपस्थित है। खड़े हो जाओ, हाथ का मद्यपात्र रख दो। वह सम्मुख खड्ग है, उठा लो और झटपट चेष्टा करके देखो कि अभिलाषा-पूर्ति कर सकते हो या नहीं। क्योंकि जब मैं अपनी अभिलाषा-पूर्ति करने में जुट जाऊंगा, तो फिर युवराज की अभिलाषा मन में रह जाएगी। अवसर नहीं मिलेगा।"

कक्ष में उपस्थित स्त्री-पुरुष स्तब्ध आतंकित खड़े थे। केवल अम्बपाली का रोम-रोम पुलकित हो रहा था। उन्होंने दस्यु को और दस्यु ने उनको चुराई आंखों में देखकर मन ही मन हंस दिया।

दो पग आगे बढ़कर खड्ग को हवा में ऊंचा उठाते हुए दस्यु ने कहा—"उठो युवराज, मुझे अभी बहुत काम है। आज देवी अम्बपाली का जन्म-नक्षत्र है। आज प्रत्येक नागरिक की मनोभिलाषा पूरी होनी चाहिए।"

युवराज अभी नशे में झूम रहे थे। अब उन्होंने हाथ का मद्यपात्र फेंक लपककर एक भारी बर्छा भीत से उठा लिया। अन्य लिच्छवि-तरुणों ने भी खड्ग खींच लिए।

दस्यु ने उनकी ओर देखकर कहा—"मित्रो, पहले युवराज।"

युवराज ने इसी समय प्रबल वेग से बर्छा फेंका। दस्यु ने उछलकर एक खम्भे की आड़ ले ली। बर्छा खम्भे से टकराकर टूट गया। दस्यु ने आगे बढ़कर युवराज स्वर्णसेन के कण्ठ में हाथ डालकर उन्हें आगे खींच लिया और कण्ठ पर खड्ग रखकर कहा—"अब इस खड्ग से क्या मैं तुम्हारा सिर काट लूं, युवराज ?"

"नहीं, नहीं, इस समय यहां ऐसा नहीं होना चाहिए।" अम्बपाली ने कातर कण्ठ से कहा।

दस्यु ने हंसकर कहा—"यही मेरी भी इच्छा है; परन्तु इसके लिए

घुटने टेककर युवराज को प्राणभिक्षा मांगनी होगी।"

स्वर्णसेन ने सूखे होंठ चाटकर कहा—"मेरा खड्ग कहां है?"

"यह है मित्र," दस्यु ने खड्ग उठाकर युवराज पर फेंक दिया। युवराज ने भीमवेग से आगे बढ़कर दस्यु पर खड्ग का प्रहार किया, परन्तु नशे के कारण वार पृथ्वी पर पड़ा। दस्यु धीरे से एक ओर हट गया। युवराज झोंक न संभाल सकने के कारण औंधे मुंह पृथ्वी पर गिर गए।

दस्यु ने एक लात मारकर कहा—"अब घुटनों के बल बैठकर प्राण-दान मांगो युवराज!" और उसने अनायास ही युवराज को अपने चरणों पर लिटा दिया।

अम्बपाली ने हर्षातिरेक से विह्वल होकर कहा—"ओह!"

परन्तु दूसरे ही क्षण क्रुद्ध सामन्तपुत्र चारों ओर से खड्ग ले-लेकर दौड़े।

"जो जहां है, वहीं खड़ा रहे,"—दस्यु ने कड़कते स्वर में कहा—"मैं यहां तुम मद्यप स्त्रैणों की हत्या करने नहीं आया हूं!"

लोगों ने भयभीत होकर देखा—अनगिनत काली-काली मूर्तियां प्रेत की भांति कक्ष में न जाने कहां से भर गईं। सबके हाथ में विकराल नग्न खड्ग थे।

दस्यु ने कहा—"एक-एक आओ और स्वर्ण, रत्न, आभरण अपने-अपने अंगों पर से उतारकर यहां मेरे चरणों में रखते जाओ!"

सबने देखा, प्रत्येक के पृष्ठ पर एक-एक जम नग्न खड्ग लिए खड़ा है। सब जड़वत् खड़े रहे।

"पहले तुम स्वर्णसेन!" दस्यु ने युवराज की गर्दन पर खड्ग की नोक रखकर कहा।

स्वर्णसेन ने अपने रत्नाभरण उतारकर चुपचाप दस्यु के पैरों में रख दिए।

इसके अनन्तर एक-एक करके सबने उनका अनुसरण किया।

दस्यु ने मुस्कराकर कहा—"हां, अब ठीक हुआ।" अम्बपाली ने मदलेखा को संकेत किया। वह कक्ष में गई और एक रत्नमंजूषा लेकर लौट आई। उसे अम्बपाली ने अपने हाथों में ले चुपचाप दस्यु के चरणों में रख दिया।

इसी समय महाप्रतिहार ने भय से कांपते-कांपते आकर कहा—"देवी, सम्पूर्ण आवास को सहस्रों दस्युओं ने घेर लिया है।"

अम्बपाली ने स्निग्ध स्वर में कहा—"आगार-जेट्ठक को कह भद्र, कि सब द्वार खोल दे, सब पहरे हटा ले, समस्त भण्डार उन्मुक्त कर दे और दस्युओं से कह कि वे सम्पूर्ण आवास लूट ले जाएं।"

प्रतिहार भयभीत होकर कभी देवी और कभी दस्युपति के चरणों में पड़ी रत्नराशि की ओर, कभी प्रस्तर-प्रतिमा की भांति अवाक्-निस्पन्द खड़े सेट्ठि-सामन्तपुत्रों को देखने लगा। फिर चला गया। अम्बपाली ने कक्ष में खड़े दस्युओं को सम्बोधित करके कहा—"मित्रो, उस कक्ष में आज की बहुमूल्य उपायन-उपहार-सामग्री एकत्रित है, इसके अतिरिक्त आवास में शत कोटि स्वर्णभार, बहुत-सा अन्न-भण्डार तथा गज, रथ, अश्व हैं। वह सब लूट लो। अनुमति देती हूं, आज्ञा देती हूं।" ऐसा प्रतीत होता था, जैसे देवी अम्बपाली के शरीर का एक-एक रक्त-बिन्दु आनन्द से नृत्य कर रहा था।

दस्यु बलभद्र ने संकेत से सबको रोककर अम्बपाली की ओर घूरकर कहा—"देवी और सब तथाकथित भद्रजन तनिक उस कक्ष के उस पार अलिन्द में चलने का कष्ट करें।"

सबने दस्यु की आज्ञा का तत्क्षण पालन किया। अलिन्द में जाकर दस्यु ने द्वार का आवरण उघाड़ दिया। सबने देखा— नीचे प्रांगण में असंख्य नरमुण्ड खड़े हैं। सबकी पीठ पर एक-एक गठरी है।

बलभद्र ने पुकारकर कहा—"मित्रो, तुमने देवी अम्बपाली के आवास से क्या लूटा है?"

"हमने केवल अन्न लिया है, भन्ते!"

अम्बपाली ने कहा—"मेरे आवास में शत कोटि स्वर्णभार और अनगिनत रत्न चहबच्चों और खत्तों में भरे पड़े हैं। सबके द्वार उन्मुक्त हैं। तुम लूट क्यों नहीं लेते, प्रियजनो?"

"नहीं, नहीं, देवी, हम ऐसे दस्यु नहीं हैं। हम भूखे ग्रामीण कृषक हैं। अन्तरायण के अधिकारियों ने सेना भेजकर हमसे बलि ग्रहण कर ली थी। वे हमारी सारी फसल उठाकर ले गए हैं। हमारे बच्चे भूखों मर रहे थे। देवी की जय रहे! अब वे पेट भरकर खाएंगे।"

दस्यु ने कहा—"देवी अम्बपाली, यह गणतन्त्र भी उसी भांति गण-शोषक है, जैसे साम्राज्य। यहां भी दास हैं, दरिद्र हैं, और ये निकम्मे मद्यप स्त्रैण सामन्तपुत्र हैं, ये सेट्ठिपुत्र हैं। आज ये कंकण-पत्थर की भांति अरब-खरब के रत्न-मणि अपने शरीर पर लादकर इन भूखे-नंगे कृषकों को लूटने को सेना भेजकर यहां मदमत्त होने आए हैं। ये सभी

गणरक्षक तो यहां हैं, जो निर्लज्ज की भांति वीर-दर्प करते हैं। देवी! मैं ये हीरे-मोती इन्हीं कृषकों को लौटा देना चाहता हूं, जिनके पेट का अन्न छीनकर ये मोल लिए गए हैं। इन्हें फिर से बेचकर ये अन्न मोल लेकर अपने बच्चों को खिलाएंगे और वस्त्र पहनाएंगे।"

दस्यु की आंखों से आग की झरें निकल रही थीं। इसी समय मदलेखा धीरे-धीरे आगे बढ़ी। उसने अपने दोनों हाथ आगे बढ़ा दिए। उनमें उसके दो-तीन आभरण थे। मृदु-मन्द स्वर से कहा—"ये मेरे हैं भन्ते, इन्हें लेकर मुझे भी अनुगृहीत कीजिए।"

कठोर दस्यु द्रवित हुआ। उसने आशीर्वाद का वरद हस्त उस क्रीता दासी के मस्तक पर रखा और फिर कहा—"मित्रो, अब तुम शांत भाव से अपने-अपने स्थान पर चले जाओ।"

सबके चले जाने पर दस्यु ने कहा—"आप सब जो जहां हैं, घड़ी-भर वहीं रहें।"

सबने चुपचाप दस्यु की आज्ञा का पालन किया।

५३. मधुवन में

दस्यु बलभद्र आगे, देवी अम्बपाली उसके पीछे, स्वर्णसेन और सूर्यमल्ल उनसे भी पीछे, तथा पांच दस्यु खड्गहस्त उनके पीछे, इस प्रकार वे वैशाली के शून्य राजपथ को पार कर वन-वीथी में होते हुए उत्तर रात्रि में मधुवन-उपत्यका में पहुंच गए। अम्बपाली दस्युराज से बात किया चाह रही थीं, परन्तु दस्यु चुपचाप आगे बढ़ा जा रहा था। मार्ग में अन्धकार था। अम्बपाली एक सुखद भावना से ओतप्रोत हो गईं। उनके मानस-नेत्रों में कुछ पुराने चित्र अंकित हुए। वे होंठों ही में कहने लगीं, यदि इसी समय एक बार फिर सिंह आक्रमण करे और मुझे उधर पर्वतशृंग पर स्थित कुटीर में एक बार अवश नृत्य करना पड़े, तो कैसा हो!

उसने आवेश में आकर अश्व बढ़ाया। अश्व को दस्युराज के निकट लाकर कहा—"भन्ते, हमें कब तक इस भांति चलना पड़ेगा?"

"हम पहुंच चुके, देवी!" दस्यु ने कहा।

फिर एक संकेत किया। कहीं से एक दस्यु काले भूत की भांति निकलकर सम्मुख उपस्थित हुआ। दस्यु ने मन्द स्वर से कहा, "साम्ब, सब यथावत् ही है न?"

"हां, भन्ते !"

"तब ठीक है, तू अपना कार्य कर।"

काला भूत चला गया। दस्यु ने अब पर्वत पर चढ़ना प्रारम्भ किया। पहाड़ी बहुत ऊंची न थी। चोटी पर चढ़कर सब लोग यथा-स्थान खड़े हो गए। सूर्यमल्ल और स्वर्णसेन ने भयभीत होकर देखा—सम्मुख उस टेकरी के दक्षिण पार्श्व की उपत्यका में दूर तक स्थान-स्थान पर आग जल रही थी। उस जलती आग के बीच में, आगे-पीछे बहुत-से दस्यु अश्व पर सवार हो इधर-उधर आ-जा रहे हैं। सबका सर्वांग काले रंग के वस्त्र से आवेष्टित है। सूर्यमल्ल ने धीरे से निकट खड़े हुए युवराज स्वर्णसेन से कहा—"यह तो दस्यु-सैन्य-शिविर प्रतीत होता है। दीख पड़ता है, जैसे दस्युओं का दल चींटियों के दल के समान अनगिन है।"

एक विचित्र प्रकार का अस्फुट शब्द-सा सुनकर स्वर्णसेन ने टेकरी के वामपार्श्व में घूमकर देखा। उधर से सुसज्जित अश्वारोही सैन्य धीरे-धीरे सावधानी से इस तथाकथित दस्यु-शिविर की ओर बढ़ रही थी। उसके शस्त्र इस अंधेरी रात में भी दूर जलती आग के प्रकाश में चमक रहे थे। इस सैन्य को धीरगति से आगे बढ़ते देख स्वर्णसेन ने प्रसन्न मुद्रा से उंगली से संकेत किया।

सूर्यमल्ल ने हर्षित होकर कहा, "यही हमारी सेना है, दस्युओं के शिविर पर अब आक्रमण हुआ ही चाहता है। परन्तु दस्यु क्या बिलकुल ही असावधान हैं?" उसने अचलभाव से आगे की ओर निश्चल देखते हुए दस्युओं की ओर देखा। फिर पीछे खड़े हुए दस्युराज को मुंह फेरकर देखा। वे उसी प्रकार नग्न खड्ग लिए खड़े थे।

इतने ही में लिच्छवि सेना ने एकबारगी ही फैलकर दस्यु-शिविर पर धावा बोल दिया। स्वर्णसेन और सूर्यमल्ल का रक्त उबलने लगा। उन्होंने दस्यु बलभद्र की ओर देखा, जो उसी भांति निस्तब्ध खड़ा था।

"क्या इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है? किस भरोसे यह निश्चित यहां खड़ा है?" स्वर्णसेन ने हाथ मलते हुए कहा—"खेद है, हमारे पास शस्त्र नहीं हैं।"

लिच्छवि सैन्य ने वेग से धावा बोल दिया; परन्तु यह कैसा आश्चर्य है कि दस्यु सम्मुख नहीं आ रहे हैं। जो दस्यु सैनिक इधर-उधर वहां घूमते दीख रहे थे, वे भी अब लुप्त हो गए हैं। लिच्छवि सेना यों ही शून्य में अपने भाले और खड्ग चमकाती हुई चिल्ला रही थी। वह जैसे

वायु से युद्ध कर रहे हों।

"यह सब क्या गोरखधन्धा है, मित्र ?" स्वर्णसेन से सूर्यमल्ल का कन्धा पकड़कर कहा।

सूर्यमल्ल की दृष्टि दूसरी ओर थी। उसकी आंखें पथरा रही थीं और वाणी जड़ थी। उसने भरे हुए स्वर में कहा—"सर्वनाश !" साथ ही उसने एक ओर को उंगली उठाई।

स्वर्णसेन ने देखा—काली नागिन की भांति काले वस्त्र पहने दस्यु-सैन्य एक कन्दरा से निकलकर लिच्छवि सैन्य के पिछले भाग में फैलती जा रही है। दूर तक इस काली सेना के अश्वारोही घाटी में बिखरे हुए हैं। देखते ही देखते, लिच्छवि सैन्य का उसने समस्त पृष्ठभाग छा लिया और जब वह सेना विमूढ़ की भांति दल बांधकर तथा सम्मुख एक भी शत्रु न पाकर ठौर-ठौर पर जलती हुए आग के चारों ओर घूम-घूमकर तथा हवा में शस्त्र घुमा-घुमाकर चिल्ला रही थी, तभी दस्यु-सैन्य ने, जैसे कोई विकराल पक्षी अपने पर फैलाता है, अपने दाहिने-बायें पक्षों का विस्तार किया। देखते ही देखते लिच्छवि सैन्य तीन ओर से घिर गई। सम्मुख दुर्गम-दुर्लंघ्य पर्वत था। परन्तु लिच्छवि सैन्य को कदाचित् आसन्न विपत्ति का अभी आभास नहीं मिला था। सूर्यमल्ल के होंठ चिपक गए और शरीर जड़ हो गया। स्वर्णसेन के अंग से पसीना बह चला।

आग के उजाले के कारण लिच्छवि सैन्य ने दस्यु-दल को बहुत निकट आने पर देख पाया। थोड़ी ही देर में मार-काट मच गई और दस्युओं के दबाव से सिकुड़कर लिच्छवि जलती हुई आग की ढेरियों में गिर-गिरकर झुलसने लगे। हाहाकार और चीत्कार से आकाश हिल गया।

स्वर्णसेन ने कहा—"भन्ते बलभद्र, इस महाविनाश को रोकिए। यह नर-संहार है, युद्ध नहीं है।"

"तो मित्र, तुम बिना शर्त आत्मसमर्पण करते हो ?"

"हम निरुपाय हैं, भन्ते बलभद्र, दया करो !"

"तो मित्र सूर्यमल्ल, तुम जाकर युवराज का यह आदेश अपनी सेना को सुना आओ और सेनानायक को यहां मेरे निकट ले आओ।"

इसके बाद उन्होंने अपने एक दस्यु को कुछ संकेत किया। उसने एक संकेत-शब्द उच्चारित किया। दस्युसैन्य जहां थी, वहीं युद्ध रोक-कर स्तब्ध खड़ी रह गई। सूर्यमल्ल ने श्वेत पताका हवा में फहराते

हुए अपने सेनापतियों को तुरन्त युद्ध से विरत कर दिया, तथा नायक को लेकर वे दस्युराज बलभद्र की सेवा में आ उपस्थित हुए। दस्युराज बिना एक भी शब्द कहे चुपचाप पूर्व-अनुक्रम से टेकरी से उतरकर एक पर्वत-कन्दरा में घुस गए। कन्दरा अधिकाधिक पतली होती गई। तब सब कोई अश्व से उतरकर अपने-अपने अश्व की रास थाम पैदल चलने लगे। अन्ततः वे एक विस्तृत हरे-भरे मैदान में जा पहुंचे। पूर्व दिशा में उज्ज्वल आलोक फैल गया था। तब वैशाली के इन वैभवशाली जनों ने देखा कि उस मैदान में एक अत्यन्त सुव्यवस्थित स्कंधावार निवेश स्थापित है, जिसमें पचास सहस्र अश्वारोही भट्ट युद्ध करने को सन्नद्ध उपस्थित हैं।

एक विशाल पर्वत-गुहा में सुकोमल उपाधान और रत्न कम्बल बिछे थे। सब सुख-साधनों से गुफा सम्पन्न थी। अम्बपाली को एक आसन पर बैठाते हुए दस्यु ने कहा—"देवी अम्बपाली और मित्रगण! तुम्हारा इस दस्युपुरी में स्वागत है। आज तुम मेरे अतिथि हो। आनन्द से खाओ-पिओ। रात के दुःस्वप्न को भूल जाओ।"

उसने संकेत किया। साम्ब चुपचाप आ खड़ा हुआ। उसने अम्बपाली की ओर संकेत करके कहा—"साम्ब, देवी बहुत खिन्न हैं, रात-भर जागरण से ये थक गई हैं, तथा श्रमित हैं। जा, इनकी यथावत् व्यवस्था कर दे।"

उसने देवी से उसके साथ दूसरी गुहा में जाने का अनुरोध किया। देवी के चले जाने पर विविध मद्य, भुना मांस और शल्य लाकर दासी ने अतिथियों के सम्मुख रख दिए। लिच्छवि राजपुरुष एक-दूसरे को आश्चर्य से देखकर खाने-पीने और अदृष्ट में जो भोगना बदा है, भोगने की चर्चा करने लगे। परन्तु मुख्य बात यह थी, जो सब कह रहे थे—"दस्यु अद्भुत है, अप्रतिम है, महान है।"

५४. विसर्जन

साम्ब ने देवी अम्बपाली को दूसरी गिरिगुहा में ले जाकर जिस श्यामा वामा के उन्हें सुपुर्द किया, उसके अंगसौष्ठव और भाव-मृदुलता देख अम्बपाली भाव-विमोहित हो गईं। राजमहालयों में दुर्लभ सुख-सज्जा इस दुर्गम वन में उपस्थित थी। उस गिरिगुहा में वैभव और विलास को देखकर अम्बपाली आश्चर्यचकित रह गईं। उन्होंने आगे बढ़कर

सम्मुख स्मितवदना श्यामा वामा की ओर देखकर कहा :

"तू कौन है, हला ?"

"मैं नाउन हूं, भट्टिनी !" वह हंस दी।

जैसे चन्द्रमा को देखकर कुमुदिनी खिल जाती है, उसी प्रकार उस श्यामा वामा के निर्दोष मृदुल हास्य से पुलकित होकर अम्बपाली ने उसे अंक में भरकर कहा, "तू बड़भागिनी है, हला ! तू जिस पुरुष की सेवा में नियुक्त है, उसकी सेवा करने को न जाने कितने जन तरस रहे हैं।"

"सुनकर कृतकृत्य हुई, भट्टिनी ! आपके दर्शनों से मेरे नेत्र स्नात-पूत हो गए। अब आज्ञा हो तो मैं आपका अंग-संस्कार करूं। इस वन में जो साधन सुलभ हैं, उन्हीं पर, भट्टिनी संतोष करना होगा।"

अम्बपाली ने मुस्कराकर कहा—"अच्छा, हला !"

नाउन ने देवी अम्बपाली का अंग-संस्कार किया, उन्हें सुवासित किया। नाउन के हस्तलाघव, हस्तकौशल, मृदुल वार्तालाप और यत्न से देवी अम्बपाली का सारा श्रम दूर हो गया। फिर जब सुवासित मदिरा और विविध प्रयत्न और एक से एक बढ़कर खाद्य-पेय उनके सम्मुख आए तो उनसे रहा नहीं गया। उन्होंने कहा—"हला, तेरे स्वामी, वे दस्यु-सम्राट क्या दर्शन ही न देंगे ?"

"यह तो उनकी इच्छा पर निर्भर है, भट्टिनी; किन्तु अभी आप आहार करके थोड़ा विश्राम कर लें।"

"नहीं, नहीं, हला, उन्हें बुला।"

नाउन ने हंसकर कहा—'क्या कहूं, भट्टिनी ? बुलाने से तो वे आएंगे नहीं, आप ही आ सकते हैं।"

"यह कैसी बात ?"

"वे किसीकी इच्छा के अधीन नहीं हैं, इसीसे।" नाउन ने दुष्टता-पूर्ण हंसी हंसते हुए कहा।

"ऐसा ही मैं भी कभी समझती थी। कभी अवसर मिलने पर उनसे कह देना। कह सकेगी ?"

"कह सकूंगी।"

"अब भी ऐसा ही है, देवी अम्बपाली !" सोमप्रभ ने हंसते-हंसते आकर कहा।

अम्बपाली ने सोमप्रभ को सुवेशित भद्र नागरिक वेश में नहीं देखा था। आज देखकर क्षण-भर को उनकी प्रगल्भता लुप्त हो गई।

सोम ने कहा, "आप मुझपर कुपित तो नहीं हैं, देवी ?"

"कुपित होकर तुम्हारे जैसे समर्थ का कोई क्या कर सकता है, भद्र ?"

"समर्थ पर भी कुछ जन समर्थ होते हैं।"

"ऐसे कितने जन हैं, प्रियदर्शन ?"

"केवल एक को मैं जानता हूं, आज्ञा पाऊं तो कहूं।"

"स्वेच्छा से कहना हो तो कहो।"

"तो सुनो, मैंने एक व्यक्ति देखा है, जो निरातंक, साह्लाद, सोल्लास ो स्वर्ण-रत्नभण्डारों के द्वार उन्मुक्त करके दस्युओं को लूट लेने के लए अभिनन्दित करता है।"

"रहने दो प्रिय, आओ, कुछ खाओ-पिओ।"

दोनों बैठ गए। अवसर पाकर नाउन पान लेने खिसक गई। म्बपाली ने सोम का हाथ पकड़कर कहा, "तुम ऐसे समर्थ, ऐसे सक्षम, मचारी, दिव्य शक्तियों से ओतप्रोत ऐन्द्रजालिक कौन हो, प्रिय-र्शन ?"

"यह कहने को मैं तुम्हें यहां ले आया हूं, अम्बपाली !"

"तो कह दो प्रिय, मैंने तो तुम्हारे कण्ठस्वर से ही तुम्हें पहचान या था।"

"यह मैंने तुम्हारे इन नेत्रों में पढ़ लिया था।"

"तुम्हारी नेत्रों से पढ़ने की विद्या से मैं परिचित हूं, पर अब हो।"

"मैं मागध हूं, प्रिये, मेरा नाम सोमप्रभ है।"

अम्बपाली ने जैसे तप्त अंगार स्पर्श कर लिया।

सोम ने कहा, 'क्या मागधों को तुम सहन नहीं कर सकतीं ?"

"नहीं प्रिय, नहीं।"

"इसका कारण ?"

"अकथ्य है।"

"अब भी !"

"मृत्यु के मूल्य पर भी, प्रियदर्शन सोम ! यदि तुम अम्बपाली को मा कर सको तो कर देना।" उनके बड़े-बड़े नेत्र आंसुओं से गीले हो ए।

"प्रिये अम्बपाली, क्या मैं तुम्हारी कुछ भी सहायता नहीं कर कता हूं ?"

"नहीं, प्रियदर्शन, नहीं। अम्बपाली निस्सहाय, निरुपाय है।"

विषादपूर्ण मुस्कान सोमप्रभ के मुख पर फैल गई। उन्होंने एक लम्बी सांस ली। उसके साथ अनेक स्मृतियां वायु में विलीन हो गईं।

"प्रियदर्शन सोम, क्या मैं तुम्हारा कुछ प्रिय कर सकती हूं, प्राणों के मूल्य पर भी?"

"प्रिय, तुम मुझे सदैव क्षमा करती रहना और सहन करती जाना।"

"अरे, यह तो मेरा अनुरोध था, प्रियदर्शन!"

"तब तो और भी अच्छा है। हम दोनों एक ही नाव पर जीवन-यात्रा कर रहे हैं।"

"जो कदाचित् विषाद, निराशाओं और आंसुओं से परिपूर्ण है।"

"तो क्या किया जा सकता है, प्रिये, प्रियतमे, जीवन से पलायन भी तो नहीं किया जा सकता!"

"न, नहीं किया जा सकता, सोम प्रियदर्शन! एक याचना करूं?"

सोम ने अम्बपाली के दोनों हाथ पकड़कर कहा, "यह अकिंचन सोम तुम्हारा ही है, प्रिये अम्बपाली।"

"तो प्रियदर्शन, मुझे सहारा देना, जब-जब मैं स्खलित होऊं तब-तब।"

उनके होंठ कांपे, फिर उन्होंने टूटते अवरुद्ध स्वर में कहा—"यह मत भूलना सोमप्रभ कि मैं एक असहाय-दुर्बल नारी हूं। तुम पुरुष की भांति मेरी रक्षा करना; मैं तुम्हारी किंकरी, तुम्हारी शरण हूं।" अम्बपाली सोम के पैरों में लुढ़क गईं। सोम ने उन्हें उठाकर अंक में भर लिया और अपने तप्त-तृषित, आग के अंगारों के समान जलते हुए होंठ उनके शीतल-कम्पित होंठों पर रख दिए। अम्बपाली मूर्च्छित होकर सोम के अंक में बिखर गईं।

५५. जयराज का दौत्य

वज्जीगण-प्रतिनिधि का भव्य स्वागत करने में मगध-सम्राट ने कुछ भी उठा न रखा। प्रशस्त सभामण्डप यत्न से सुसज्जित किया गया। सम्राट गंगा-जमुनी काम के सिंहासन पर विराजमान हुए। मस्तक पर रत्न-जटित जाज्वल्यमान स्वर्ण-मुकुट धारण किया।

लिच्छवि राजप्रतिनिधि जयराज ने भी अपने अनुरूप भव्य वेश धारण किया था।

सम्राट के सम्मुख जा राजनिष्ठा के नियमानुसार उनका अभि-नन्दन कर जयराज ने वज्जीगणपति का राजपत्र उपस्थित किया, तथा गणपति की ओर से उपायन उपस्थित कर, उसे स्वीकार कर कृतार्थ करने का शिष्टाचार प्रदर्शित किया।

सम्राट ने राजपत्र राजसम्मान-सहित ग्रहण कर उपायन के लिए आभार और संतुष्टि प्रकट कर कहा—"कह आयुष्मान्, मैं तेरा और अष्टकुल के प्रतिष्ठित वज्जी संघ का क्या प्रिय कर सकता हूं?"

जयराज ने धीमे किन्तु स्थिर स्वर में कहा—"क्या देव मुझे स्पष्ट भाषण करने की अनुमति देते हैं?"

"क्यों नहीं आयुष्मान्, तू कथनीय कह।"

"तो देव, वज्जीगण का अनुरोध है कि सम्राट आर्य महामात्य को राजगृह में फिर से सुप्रतिष्ठित करें।"

"यह तो मगध राज्य का अपना प्रश्न है, भद्र, वज्जीगण राज्य को अनुरोध करने का इसमें क्या अधिकार है? अपितु राजदण्डप्राप्त, बहिष्कृत महामात्य को राजनियम के विपरीत वज्जीगण-संघ ने प्रश्रय देकर मागध राज्य-संधि भंग की है, जिसका दायित्व वज्जीगण-संघ पर है।"

"इसके विपरीत देव, वज्जीगण-संघ की यह धारणा है कि सम्राट की अभिसंधि से महामात्य अकूटनीति का अनुसरण कर तूष्णी युद्ध कर रहे हैं।"

"तो इस धारणा के वज्जीगण-संघ के पास पुष्ट प्रमाण होंगे?"

"देव, वज्जीगण-संघ सम्राट की मैत्री का मूल्य समझता है। वह कोई प्रमाण कुछ नहीं करता। सम्राट को मैं विश्वास दिलाता हूं।"

"आयुष्मान्, क्या कहना चाहता है, कह।"

"महाराज, वैशाली के अष्टकुल सम्राट से मैत्री-सम्बन्ध स्थिर किया चाहते हैं। वज्जीगण सम्राट की किसी भी इच्छा की अवहेलना नहीं करेंगे।"

"तब तो मुझे केवल यही विचार करना है कि मुझे उनसे क्या कहना चाहिए।"

"सम्राट यदि स्पष्ट कहें!"

"यह तो व्यर्थ होगा, आयुष्मान्!"

"तो क्या मैं ही सम्राट को वज्जीगण-संघ का सन्देश निवेदन करूं?"

"यह अधिक उपयुक्त होगा।"
"मैं स्पष्ट कहने के लिए सम्राट से क्षमायाचना करता हूं।"
"कह भद्र, कथनीय कह।"
"देव यह जानते हैं कि वह बात अब सार्वजनिक हो चुकी है।"
"आयुष्मान् तेरा अभिप्राय क्या है ?"
"यह स्पष्ट है, देव यदि अष्टकुल की किसी कुलीन कुमारी से विवाह किया चाहते हैं तो यह सुकर है।"
"प्रस्ताव महत्त्वपूर्ण है और इससे मेरी प्रतिष्ठा होगी।"
"साथ ही अष्टकुल के वज्जीगणतन्त्र और मगध-साम्राज्य की मैत्री-समृद्धि भी बढ़ेगी। किन्तु इसके लिए एक वचन देना होगा।"
"कैसा वचन ?"
"केवल लिच्छवि-कुमारी ही का पुत्र भावी मगध-सम्राट होगा।"
"केवल यही ? और कुछ तो नहीं ?"
"नहीं, देव !"
"आयुष्मान् को कुछ और भी कथनीय है ?"
"यत्किंचित्, महाराज, देवी अम्बपाली वज्जीगण का विषय है, उनपर सम्पूर्ण गणजनपद का समान अधिकार है। अष्टकुल उनपर किसी एक का एकाधिकार सहन नहीं करेगा।"
"वह मैं समझ गया, और कह भद्र।"
"और तो कुछ कथनीय नहीं है, देव !"
"कुछ भी नहीं ?"
"नहीं।"
"अच्छा, तो मैं अष्टकुल का प्रस्ताव अस्वीकार करता हूं।"
"क्या आप अष्टकुल की किसी भी कुमारी से विवाह करना अस्वीकार कर रहे हैं ?"
"यह मेरे लिए सौभाग्य की बात थी, भद्र; किन्तु मैं इसे अपनी स्वेच्छा और भावना की बलि देकर नहीं स्वीकार कर सकता। रही देवी अम्बपाली की बात। वज्जीगण के उस धिक्कृत कानून की बात मैं जानता हूं, परन्तु आयुष्मान्, कोई भी मागध स्त्री-जाति के अधिकारों को हरण करने वाले इस कानून के विरोध में खड्गहस्त होना आनन्द से स्वीकार करेगा। अच्छा आयुष्मान्, अब विदा। अपने प्रस्ताव के लिए अष्टकुल के वज्जीगण-प्रमुखों से मेरी कृतज्ञता अवश्य प्रकट कर देना।"

"सम्राट, मुझे यह भय है कि इस निर्णय का कोई भयानक परिणाम न हो; दो पड़ोसी राज्य-व्यवस्थाओं के बीच की सद्भावना न नष्ट हो जाए।"

"आयुष्मान्, महाराज्यों की एक मर्यादा होती है और सम्राट की भी। मागध-सम्राट की एक पृथक् मर्यादा है, आयुष्मान्, जिसका तू स्वप्न देख रहा है, मेरी अभिलाषा उससे बड़ी है।"

"इससे सम्राट का यह अभिप्राय तो नहीं है कि सम्राट अष्टकुलों के स्थापित गणतन्त्र से युद्ध छेड़ चुके ?"

"अष्टकुलों के गणपति ने क्या इससे भयभीत होकर तुझे उत्कोच देकर मेरे पास भेजा है ?"

"महाराज, लिच्छवि गणसंघ छत्तीस राज्यों के संघ का केन्द्र है। हम गणशासित भली भांति खड्ग पकड़ना जानते हैं।"

"सुनकर आश्वस्त हुआ भद्र, मैं यह बात स्मरण रखूंगा।"

इतना कहकर सम्राट आसन छोड़ उठकर खड़े हुए। जयराज क्रोध से तमतमाते हुए मुख से पीछे लौटे। चिन्ता की रेखाएं उनके सदा के उन्नत ललाट पर अपना प्रभाव डाल रही थीं।

५६. दूसरी मोहन-मन्त्रणा

महाबलाधिकृत सुमन के अधिकरण में मोहन-गृह में वज्जीगण की समर-मन्त्रणा हुई। सन्धि-विग्राहिक जयराज ने अपना विवरण सुनाते हुए कहा—"यद्यपि यह सत्य है कि मगध-सम्राट के पास उत्तम सेनापति और अच्छे सैनिक नहीं हैं, तथा उसकी सेना में बहुत छिद्र हैं, फिर भी आर्य वर्षकार का तूष्णीयुद्ध और आर्य चण्ड भद्रिक की व्यूहयोजना अद्वितीय हैं। हम यदि तनिक भी असावधान हुए तो हमारा पतन निश्चित है और हमारे साथ उत्तरपूर्वीय भारत के सब गणराज्य नष्ट हो जाएंगे। यह स्पष्ट है कि मगध-सम्राट की सम्पूर्ण शक्ति इन दोनों ब्राह्मणों के हाथ में है और यही मागध राज्यसत्ता को साम्राज्य के रूप में संगठित कर रहे हैं, जो आर्यों की पुरानी कुत्सित राज-व्यवस्था है। आर्यों के साम्राज्य इसलिए सफल हुए कि उनमें आर्यों के शीर्षस्थानीय क्षत्रिय और ब्राह्मण एकीभूत हो गए थे और निरीह प्रजावर्गीय संकर जातियों का कोई आश्रय ही न था। परन्तु अब वह बात नहीं है। शिशुनाग वंश आर्य नहीं है, वह अपने ही स्वर्गीय जनों पर सम्राट होकर रह

नहीं सकता। ये आर्य ब्राह्मण उस मूर्ख राजा की आड़ में आर्यों के जिस ढांचे पर साम्राज्य गांठ रहे हैं, वह अन्ततः विफल होगा। परन्तु अभी वह यदि वैशाली को आक्रान्त करता है और उधर प्रद्योत का भी पतन हो जाता है, तो हमारी सम्पूर्ण भावना नष्ट हो जाएगी और सम्पूर्ण जनपद फिर आर्यों के दासत्व में फंस जाएगा अथवा साम्राज्यवाद के मद में अंधे बिम्बिसार जैसे जातिघातक ही उनके अधिपति बन बैठेंगे !"

"यह अत्यन्त भयानक बात होगी, आयुष्मान् । सम्पूर्ण जनपद के मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिए हमें लड़ना और जय पाना होगा।" सेनाधिनायक सुमन ने कहा।

"किंतु सेनापति, यदि सत्य देखा जाए, तो हम गणराज्यों के विधाता भी तो ठीक-ठीक जनपद मानवीय अधिकारों का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे हैं। हमने भी तो अपने गणराज्यों की राज्य-व्यवस्था में आर्यों का बहिष्कार कर रखा है।" सिंह ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"यह है, परन्तु इसके गम्भीर कारण हैं, तथा इस समय हमें केवल मूल विषय पर विचार करना है, आयुष्मान्। अब हमें यह जान लेना चाहिए कि हमारे भय के दो मध्यबिंदु हैं—एक ब्राह्मण वर्षकार और दूसरे मगध-महासेनापति चण्ड भद्रिक।"

"एक तीसरा भय और है।"

"वह कौन ?"

"सेनापति सोमप्रभ। वह एक मागध तरुण है, जिसके स्थैर्य, रण-पाण्डित्य और विलक्षण प्रतिभा पर तक्षशिला के आचार्य और छात्र दोनों ही स्पर्धा करते रहे हैं। सम्भवतः वह मागध तरुण मगधसेना का संचालन करेगा।" जयराज ने कहा।

"यह तरुण कौन है, भद्र ?"

"उसका परिचय रहस्यपूर्ण है। सम्भवतः एक ही व्यक्ति उसका परिचय जानता है, पर उसने होंठ सी रखे हैं।"

"कौन व्यक्ति ?"

"आर्या मातंगी।"

"यह तो बड़ी अद्भुत बात है। तब फिर सम्राट ने इस अज्ञात कुलशील को इतना भारी दायित्व कैसे दे रखा है ?"

"चम्पा-युद्ध में उसने असाधारण रण-पाण्डित्य प्रदर्शन करके आर्य भद्रिक की प्रतिष्ठा बचाई थी।"

"तो क्या सम्राट ने उसे सेनापति अभिषिक्त किया है ?"

"नहीं, मगध-सेनापति चण्ड भद्रिक ही हैं।"

"भद्रिक के शौर्य से मैं अविदित नहीं हूं। भद्रिक मेरा सहसखा है। मैं उसके सम्मुख असहाय हूं, वह महाप्राण पुरुष है। फिर तू भद्र, ऐसा क्यों कहता है कि श्रेणिक के पास अच्छे सेनापति नहीं है ?"—सेनापति सुमन ने कहा।

"भन्ते सेनापति, आर्य भद्रिक की निष्ठा निस्संदेह ऐसी ही है; परन्तु मगध में उनकी-सी चली होती, तो मगध-सेना अजेय होती। परन्तु सम्राट सदैव उनसे सशंक रहते हैं। वे समझते हैं कि कहीं चण्ड भद्रिक उन्हें मारकर सम्राट न हो जाए। जैसे अवन्ती-अमात्य ने राजा को मारकर अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बना दिया।"

"यही सत्य है आयुष्मान्, मैंने उसका कौशल देखा है। परन्तु आयुष्मान्, सोमप्रभ कहां है ? कुछ ज्ञात हुआ ?"

"मगध में तो यही सुना है कि वह देश-विदेश में घूमकर ज्ञानार्जन कर रहा है।"

"मगध में जो सब कहते हैं, वह तो सुना, परन्तु संधि-विग्राहिक जयराज क्या कहते हैं ?"

जयराज हंस दिए। उन्होंने धीरे से कहा—"जयराज कहता है, वह सशरीर, सदलबल वैशाली में उपस्थित है।"

जयराज की बात सुनकर सब अवाक् होकर उसका मुंह ताकने लगे।

सेनापति ने कहा—"यह क्या कहता है, आयुष्मान् ?"

सिंह ने उत्तेजित होकर कहा—"ऐसा प्रबल शत्रु दलबलसहित वैशाली में उपस्थित है और हमें इसका ज्ञान ही नहीं है !"

"ज्ञान न होता तो कहता कैसे ?"

"वह है कहां ?"

"मधुवन की उपत्यका में," कुछ रुककर उसने कहा—"दस्यु बलभद्र ही सोमप्रभ है।"

क्षण-भर के लिए सब स्तब्ध बैठे रहे। स्वर्णसेन विचलित हो गए। सिंह ने कहा—"ठीक है, मैंने भी सन्देह किया था। अच्छा, उसके पास सैन्य कितनी है ?"

"पचास सहस्र, कुछ अधिक ही। इनमें दस सहस्र उत्कृष्ट अश्वारोही हैं। वे सब टुकड़ी बांधकर दस्यु-वेश में सम्पूर्ण जनपद में फैले हुए हैं। दिन-भर वे पर्वत-कन्दराओं में छिपे रहते हैं और रात्रि को आक्रमण

करते हैं। [illegible] मंजे हुंए योद्धा हैं। उनमें कुछ राजमार्ग पर आते-जाते राजस्व, अन्न और दूसरी युद्धोपयोगी वस्तुओं को लूट लेते हैं। कुछ किसानों में मिल उन्हें बलि देने और विद्रोह करने को उकसाते हैं।"

"इतना ?"

"और भी, भन्ते सेनापति। उसने मरुस्थल में धान्वन दुर्ग बनाए हैं, जंगलों में वन-दुर्ग और घने, गहन झाड़ियों से भरे वनों में संकट-दुर्ग बना लिए हैं, जहां दलदल है वहां 'पंक' बनाए हैं और पर्वतों पर 'शैला', पर्वतों की उपत्यकाओं में 'निम्न' और 'विषम' तथा गौओं और शकटों के चल-दुर्ग बनाए हैं। ये सब 'सत्र' हैं और शत्रु के छिपकर घात करने के साधन हैं। इन सबको यथावत् निर्माण कर शत्रु कूटयुद्ध कर रहा है। वह बहुत धन-जन की हानि कर चुका है।"

"तो इधर ब्राह्मण का 'तूष्णीयुद्ध' और उधर आयुष्मान सोमप्रभ का 'कूटयुद्ध'। तो अब श्रेणिक बिम्बिसार के 'प्रकट-युद्ध' के कैसे समाचार हैं ?"

"कहता हूं, भन्ते सेनापति। प्रथम तो यह कि उसने सोन, गंगा और वागमती के तट के सब दुर्गों की मरम्मत करा ली है, तथा सोलह और नये दुर्ग निर्माण किए हैं। इन दुर्गों में साल के मोटे खम्भों के तिहरे प्राकार हैं। प्रत्येक दुर्ग में तीन से सात सहस्र तक शिक्षित भट, पादातिक, अश्वारोही, रथी और गजारोही हैं। अन्न, जल और अन्य सामग्री इतनी संचित है कि दुर्गवासी आवश्यकता होने पर एक वर्ष तक उससे काम चला सकते हैं। मैं प्रत्यक्ष रूप से सभी का निरीक्षण कर चुका हूं।"

"तो फिर ठीक है," सेनापति सिंह ने कहा—"अब हम भी हर प्रकार से तैयार हैं, बल्कि मैं तो यह कहूंगा कि हमें मागधों के आक्रमण की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, तथा अवसर पाते ही प्रथम आक्रमण कर देना चाहिए।"

इसपर महाबलाध्यक्ष सुमन ने कहा—"तो आयुष्मान्, ऐसा ही हो। तू सैन्य को तैयार रख और अवसर पाते ही आक्रमण कर। मैं अमात्य वर्षकार और उनके सहायकों को बन्दी करने की आज्ञा प्रचारित करता हूं।"

५७. युद्ध-विभीषिका

वैशाली में आतंक छा गया। मगध-महामात्य ब्राह्मण वर्षकार और ब्राह्मण सोमिल, अनुचर कलत्र और बटुकवर्ग सहित बन्दी कर लिए गए। सेट्ठिपुत्र कृतपुण्य भी बन्दी हो गए। उनका घर-द्वार सभी राज-सैनिकों ने अपने अधीन कर लिया। नगर के घाट-द्वार, राजमार्ग सभी बन्द कर दिए गए। बाहर जाने-आने के लिए सैनिक-आज्ञापत्र लेना अनिवार्य हो गया। अंतरायण के सब खाद्य-भण्डारों पर सैनिक अधिकार हो गया। विदेशियों की बारीकी से छानबीन होने लगी। बहुत जन संदिग्ध पाए जाकर बन्दी बना लिए गए। जलाशय, कूप, राजमार्ग, वीथी, दुर्ग, द्वार, तोरण, स्तम्भ, बुर्ज सभीपर सैनिकों का अनवरत पहरा बैठा दिया गया। सब स्वस्थ, वयस्क पुरुष अनिवार्य रूप में सैनिक बना दिए गए। सम्पूर्ण गृह और व्यापार-उद्योग युद्धोद्योगों में परिणत हो गए। शस्त्रास्त्र और कवच एवं विविध युद्ध-साधनों का रात-दिन निर्माण होने लगा। लिच्छवि तरुणियां भी सेवा-सेना में भरती होकर शुश्रूषोपचार की शिक्षा पाने लगीं। सेना को शस्त्रास्त्र बांट दिए गए। उनकी टुकड़ियां नगर के भीतर बाहर चलती-फिरती दृष्टि पड़ने लगीं। सारे नगर में सैनिक अनुशासन की व्यवस्था कर दी गई। आज्ञा-उल्लंघन के लिए मृत्यु-दण्ड घोषित कर दिया गया। वैशाली के मनमौजी और स्वभाव ही से लिच्छवियों के मुखों पर हास्य-विनोद के स्थान पर चिन्ता, व्यग्रता और उद्वेग दीख पड़ने लगे। तरुण भट अपने-अपने शस्त्र चमकाते, अश्व कुदाते, बढ़-बढ़कर बातें बघारते इधर-उधर घूमते दीख पड़ने लगे।

बहुत लोग बहुत भांति की बातें करते। कोई दस्यु बलभद्र की अद्भुत सर्वत्र-गमन की शक्ति-सत्ता को खूब बढ़ा-चढ़ाकर कहता, कोई मागध-सम्राट की कामुकता, वीरता तथा साम्राज्यलिप्सा की आलोचना करता। बहुत जन इस युद्ध का संबंध अम्बपाली से जोड़ते।

अम्बपाली के आवास में भी आभा फीकी पड़ गई। सैनिक नियमों के आधार पर उनके आवास में सार्वजनिक प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया। अम्बपाली के आवास को विशेष रीति पर सैनिक निरीक्षण और संरक्षण में रख दिया गया। राजकोष, महत्त्वपूर्ण लेख और बहुमूल्य सामग्री भूमिगर्भ स्थित भूगृहों में रख दी गई।

वैशाली के सब आबालवृद्ध विचलित, व्यग्र और आशंकित हो

उठे। युद्ध की विभीषिका ने उन्हें विमूढ़ कर दिया।

उधर 'स्थान', 'आसन' और 'गमन' का ठीक-ठीक विकल्प कर ग्राम, अरण्य आदि अध्वनिवेश में ईंधन, धान्य, जल, घास आदि की समुचित व्यवस्था-प्रबन्ध कर भोजन, वस्त्र, शस्त्रास्त्र की यत्नपूर्वक सुरक्षा से संग ले मागध सैन्य-सहित मौहूर्तिकों से नक्षत्र दिखा सम्राट ने प्रयाण किया।

कठिन मार्गों, भारी दलदल, गहरे जल, गुफा, पर्वत आदि को पार करती हुई; पर्वतों पर चढ़ती-उतरती; तंग, पथरीले, पहाड़ी विषम मार्गों पर होती हुई; भूख, प्यास और थकन से खिन्न हो बीच-बीच में सुस्ताती; ज्वर, संक्रामक, महामारी तथा दुर्भिक्ष की बाधाओं को सहन करती; बीमार, पैदल, हाथी, अश्वों के साथ मागध सैन्य आगे बढ़ती चली गई। धीरे-धीरे सेना ने स्कन्धावार में प्रवेश कर वहां उपनिवेश किया।

सेनापति भद्रिक और सम्राट ने स्कन्धावार-राजगृह के मन्त्रणागार में युद्ध-मन्त्रणा की। मन्त्रणा में सम्राब, महासेनापति आर्य भद्रिक, सेनापति उदायि, सेनापति सोमप्रभ और अमात्य सुनीथ उपस्थित थे।

युद्ध के सम्बन्ध में सब अंगों पर प्रकाश डाला गया। दूष्य सेना, शत्रु सेना, आटविक सेना का पृथक्-पृथक् विभाजन कर पृथक्-पृथक् सेनापतियों को सौंप दिया गया। सम्पूर्ण सेना का अधिनायकत्व महासेनापति आर्य भद्रिक ने ग्रहण किया। सेनापति सोमप्रभ हुए।

इस प्रकार युद्ध-संचालन की सारी व्यवस्था कर मागध महासेनापति चण्ड भद्रिक ने सोमप्रभ का अभिनन्दन करते हुए संपूर्ण सेनापतियों के समक्ष उनके शौर्य, कौशल, युक्ति और स्थैर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की और परिपूर्ण अनुशासन का बारम्बार अनुरोध किया।

५८. प्रकाश-युद्ध

मिही के उस पार की मल्लों की भूमि पर वज्जी सैन्य का स्कंधावार-निवेश था। मिही-तट पर दुर्गों का ताता बंधा था, तथा वहां एक अस्थायी पुल नावों का बांधा गया था, जिसकी रक्षा गांधार काप्यक के गांधार भट यत्नपूर्वक कर रहे थे। मिही-तट के इन दुर्गों में वज्जियों

के शस्त्र-भण्डार और रक्षित सैन्य बहुत मात्रा में थे। नि[illegible] धारा अति तीव्र होने के कारण नीचे से ऊपर आकर इन दुर्गों पर आक्रमण करना सुकर न था। वज्जी-स्कंधावार-निवेश और मगध-स्कंधावार-निवेश के मध्य में पाटिलग्राम था।

मगध-स्कंधावार-निवेश से पांच सौ धनुष के अन्तर पर पाटिल-ग्राम के दक्षिण समभूमि पर मागध सेनापति सोमप्रभ ने संग्रामक्षेत्र स्थापित करके सम-व्यूह की रचना की। संपूर्ण व्यूह के पक्ष, कक्ष और उरस्य, ये तीन अंग स्थापित किए गए। सेना के अग्रभाग के दोनों पार्श्व में 'पक्ष' स्थापित कर उसके दो भाग कर, वाम माहिष्मती के सुगुप्त की ओर दक्षिणपक्ष प्रतिष्ठान के सुवर्ण बल की अधीनता में स्थापित हुआ। पीछे के 'कक्ष' के भी दो भाग करके वामकक्ष भोज समुद्रपाल और दक्षिणकक्ष आंध्र सामंत भद्र की अधीनता में स्थापित किया गया। मध्य 'उरस्य' में स्वयं सेनापति सोमप्रभ स्थित हुए। उनके पार्श्वरक्षक बंग के वैश्रमणदत्त, अवंती के श्रीकांत और कलिंग के वीर कृष्णमित्र स्थित हुए।

लिच्छवि सैन्य को तीन स्वतन्त्र व्यूहों में सेनापति सिंह ने विभक्त किया था। एक 'पक्षभेदी' व्यूह स्थापित किया गया। इसमें सेना के सम्मुख दोनों ओर हाथियों को खड़ा किया गया और पिछले भाग में उत्कृष्ट अश्वारोहियों को, उरस्य में रथों को। इसका संचालन मल्लराज प्रमुख सौभद्र कर रहा था। दूसरी सैन्य को 'मध्यभेदी' व्यूह में स्थापित किया गया था। इसमें हाथी मध्य में, रथी पीछे और अश्वारोही अग्र-भाग में स्थापित थे। इसका संचालन लिच्छवि सेना-नायक वज्रनाभि कर रहा था। तीसरी सेना को 'अन्तर्भेदी' व्यूह में बद्ध किया गया था, जिसमें हाथी पीछे, मध्य में अश्वारोही और अग्र-भाग में रथों की योजना थी। रथों, अश्वों एवं हाथियों की रक्षा की व्यवस्था मागधों ही के समान थी। इस सैन्य का संचालन गांधार तरुण कपिश कर रहा था।

लिच्छवि सेनापति सिंह ने स्वयं हाथियों का एक 'शुद्ध-व्यूह' रच उसे अपने अधीन रखा था।

एक दण्ड दिन चढ़े तक दोनों ओर की सैन्य अपने-अपने व्यूहों में सन्नद्ध खड़ी हो गईं। उनके शस्त्र सूर्य की स्वर्णिम आभा में चमक रहे थे। दोनों सेनापतियों ने एक बार सारी सेना में घूम-घूमकर अपनी-अपनी सेना का निरीक्षण किया। मागध सेनापति सोमप्रभ

...आरूढ़ श्वेत कौशेय परिधान में अपनी सेना से बाहर आ दस धनुष के अन्तर पर खड़ा हो गया। इसी समय मागध सैन्य से प्रधान संचालक ने शंख फूंका। शंखध्वनि के साथ ही मगध सैन्य से जय-जयकार का महानाद उठा। इसी समय लिच्छवि सेनापति सिंह, श्वेत अश्व पर आरूढ़, रंगीन परिधान पहने अपनी सैन्य से बाहर आ, पांच धनुष के अन्तर पर खड़ा हो गया। अब लिच्छवि सैन्य में भी शंखध्वनि एवं जय-जयकार का नाद उठा।

मगध-सम्राट युद्धस्थल से सौ धनुष के अन्तर पर अपने प्रसिद्ध हाथी मलयागिर पर खड़े युद्ध की गतिविधि देख रहे थे। क्षण-क्षण पर सूचनाएं उन्हें मिल रही थीं। वे शत्रु द्वारा छिन्न-भिन्न होती सेना को ढाढ़स बंधाकर फिर इकट्ठी कर रहे थे।

जय-पराजय अभी अनिश्चित थी। सूर्य इस समय अपराह्न में ढल चला था। दोनों ओर की सैन्य रक्तपिपासु हो निर्णायक युद्ध करने में लगी थीं। धीरे-धीरे युद्ध की विभीषिका बढ़ने लगी। घायल भट्ट मृतक पुरुषों और पशुओं की ओट में होकर बाण-वर्षा करने लगे। मरे हुए हाथियों, घोड़ों, सैनिकों तथा टूटे-फूटे रथों से युद्धस्थल का सारा मैदान भर गया। एक दण्ड दिन रहे दोनों ओर से युद्ध बन्द करने के संकेत किए गए। हाथी, घोड़े, सैनिक धीरे-धीरे अपने-अपने आवास को लौटने लगे। सूर्यास्त से कुछ प्रथम ही युद्ध-विभीषिका शांत हो गई। परतु इस एक ही दिन के युद्ध में दोनों पक्षों की अपार हानि हो गई। यह महा-भीषण युद्ध जब सूर्यास्त होने पर बन्द हुआ तो आहत, थकित, भ्रमित योद्धा अपने-अपने स्थानों पर उदास और निराश भाव से लौट आए।

५९. अभिसार

वैशाली के राजपथ जनशून्य थे। दो दण्ड रात जा चुकी थी। युद्ध के आतंक ने नगर के उल्लास को मूर्च्छित कर दिया था। कहीं-कहीं प्रहरी खड़े उस अंधकार रात्रि में भयानक भूत से प्रतीत हो रहे थे। दो मनुष्य-मूर्तियां अंधकार को भेदन करती हर्म्यों की छाया में वैशाली के गुप्त-द्वार के निकट आ पहुंचीं। एक ने द्वार पर आघात किया। भीतर से प्रश्न हुआ—"संकेत ?"

मनुष्य-मूर्ति ने मृदुस्वर में कहा—"अभिनय।" हल्का चीत्कार करके द्वार खुल गया। दोनों मूर्तियां भीतर घुसकर राजपथ छोड़ अंधेरी

गलियों में अट्टालिकाओं की परछाइं में छिपती-छिपती आगे बढ़ने लगीं। प्रत्येक मोड़ पर एक काली छाया आड़ से निकलकर आगे बढ़ती और दोनों मूर्तियां निःशब्द उसका अनुसरण करतीं।

सप्तभूमि प्रासाद के सिंहद्वार पर आकर दोनों मूर्तियां रुक गईं। संकेत के साथ ही द्वार खुल गया और आगन्तुकों को भीतर ले द्वार फिर उसी तरह बन्द हो गया।

प्रासाद में सन्नाटा था। न रंग-बिरंगे प्रकाश, न फव्वारे, न दास-दासियों की, न दण्डधरों की भाग-दौड़। दोनों व्यक्ति चुपचाप प्रतिहार के साथ पीछे-पीछे चले गए। सातवें अलिन्द को पार करने पर उन्होंने देखा—एक और काली मूर्ति एक खम्भे के सहारे खड़ी है। उसने आगे बढ़कर कहा—"इधर से, भन्ते !"

प्रतिहार वहीं रुक गया। नवीन मूर्ति स्त्री थी। वह सर्वांग काले कपड़े से आच्छादित थी। दोनों आगन्तुक कई प्रांगण, अलिन्द और कक्षों को पार करते हुए कुछ सीढ़ियां उतर एक छोटे-से द्वार पर पहुंचे, जो चांदी का था। इसपर अति भव्य जाली का काम हो रहा था। इस जाली में से छन-छनकर रंगीन प्रकाश बाहर पड़ रहा था।

द्वार खोलते ही देखा—एक बहुत विशाल कक्ष भिन्न-भिन्न प्रकार की सुख-सामग्रियों से परिपूर्ण था। यद्यपि यह उतना बड़ा न था जहां नागरिक जनों का सत्कार होता था, परन्तु उत्कर्ष की दृष्टि से इस कक्ष के सम्मुख उसकी गणना नहीं हो सकती थी। यह सम्पूर्ण भवन श्वेत और काले पत्थरों से बना था और सर्वत्र ही सुनहरी पच्चीकारी का काम हो रहा था। उसमें बड़े-बड़े स्फटिक के अष्टपहलू अमूल्य खम्भे लगे थे, जिनमें मनुष्य का हू ब हू प्रतिबिम्ब सहस्रों की संख्या में दीखता था।

हठात् सामने का पर्दा हटा और उसमें से एक रूपराशि प्रकट हुई, जिसके बिना यह अलिन्द सूना हो रहा था। उसे देखते ही दोनों आगन्तुकों में से एक तो धीरे-धीरे पीछे हटकर कक्ष से बाहर हो गया। दूसरा व्यक्ति स्तम्भित-सा वहीं खड़ा रह गया। अम्बपाली आगे बढ़ीं। वे बहुत महीन श्वेत कार्पास पहने थीं। वह इतनी महीन थी कि उसके आरपार साफ दीख पड़ता था। उसमें से छनकर उनके सुनहरे शरीर की रंगत अपूर्व छटा दिखा रही थी। पर यह रंग कमर तक ही था। वे चोली या कोई दूसरा वस्त्र नहीं पहने थीं, इसलिए उनकी कमर के ऊपर के सब अंग-प्रत्यंग स्पष्ट दीख पड़ते थे।

…सनिय कक्ष में गुलाबी रंग का प्रकाश हो रहा था। उस प्रकाश …अम्बपाली का इस प्रकार मानो आवरण भेदन कर इस रूप-रंग में प्रकट होना आगन्तुक व्यक्ति को मूर्तिमती मदिरा का आवरण-सा प्रतीत हुआ। रूप-सौन्दर्य, सौरभ और आनन्द के अतिरेक से वह भाव-विमोहित-सा स्तब्ध-निस्पन्द खड़ा रहा।

अम्बपाली आगे बढ़ीं। उनके पीछे सोलह दासियां एक ही रूप-रंग की, मानो उन्हींकी प्रतिमाएं हों, अर्घ्य-पाद्य लिए आई थीं।

अम्बपाली ने आगन्तुक के निकट पहुंच, नीचे झुक, नतजानु हो, आगन्तुक का अभिवादन किया, उसके चरणों में मस्तक झुकाया। दासियां भी पृथ्वी पर झुक गईं।

आगन्तुक महाप्रतापी मगध-सम्राट बिम्बिसार थे। उन्होंने हाथ बढ़ाकर अम्बपाली को ऊपर उठाया। अम्बपाली ने कहा—"देव, पीठ पर विराजें।" सम्राट ने ऊपर का परिच्छेद उतार फेंका। वे रत्नपीठ पर विराजमान हुए।

अम्बपाली ने नीचे धरती पर बैठकर सम्राट का अर्घ्य-पाद्य, गन्ध-पुष्प आदि से सत्कार किया। फिर इसके बाद उन्होंने अपनी मदभरी आंखें सम्राट पर डालकर कहा—"देव, इतना दुःसाहस, इतना असाध्य साधन ?"

"प्रिये, स्थिर न रह सका।"

"मैं जानती थी, देव !"

"ओ, तो तुम बिम्बिसार के मनोदौर्बल्य से अभिज्ञात हो ?"

"मैं प्रतीक्षा कर रही थी।"

"मैंने सोचा, अब नहीं तो फिर कभी नहीं। कौन जाने यह युद्ध का दानव बिम्बिसार को भक्षण ही कर ले, मन की मन में रह जाए !"

"शान्त पापं !"

"किन्तु प्रिये, तुम्हारा प्रबन्ध धन्य है !"

"देव, कोटि-कोटि प्राणों के मूल्य से अधिक मेरे लिए आपका जीवन-धन है। किन्तु शत्रुपुरी में आपका यों आना अच्छा नहीं हुआ।"

"वाह, कैसा आनन्दवर्धक है ! प्रिये, प्राणसखे ! आज ही, इस क्षण बिम्बिसार के प्राणों में यौवन-दर्शन हुआ है, इस आनन्द के लिए तो कोई भी पुरुष सौ बार प्राण दे सकता है।"

"मैं कृतार्थ हुई, देव !" इतना कह अम्बपाली ने सुवासित मद्य का पात्र भरकर सम्राट के आगे किया। सम्राट ने पात्र ले अम्बपाली का

हाथ पकड़ उन्हें खींचकर बगल में बैठा लिया और कहा—"इसे मधुमय कर दो, प्रिये !" और उन्होंने वह पात्र अम्बपाली के अछूते होंठों से लगा दिया। इसके बाद वे उसे गटागट पी गए।

संकेत पाते ही दासियों ने क्षण में गायनवाद्य का आयोजन जुटा दिया। कक्ष सुवासित मदिरा की सुगन्ध और सुरंग में सुरभित, सुरंजित हो संगीत-लहरी में डूब गया, और उस गंभीर रात्रि में जब वैशाली में युद्ध की महती विभीषिका रक्त की नदी बहा रही थी, मगध के प्रतापी सम्राट सुरा-सौन्दर्य के दांव पर शत्रुपुरी में अपने प्राण और अपने साम्राज्य को लगा रहे थे।

६०. सांग्रामिक

उस संध्या मागध सैन्य अत्यन्त क्षतिग्रस्त हो अभियान से लौटी। सम्राट और सेनापति आर्य उदायि उसके साथ नहीं थे। यह अत्यन्त भयानक बात थी। वे दोनों शत्रु के बन्दी हुए या युद्ध में मारे गए, इसका कोई सूत्र नहीं प्राप्त हुआ। केवल एक सैनिक ने सेनापति उदायि को बन्दी होते देखा था। परन्तु सम्राट के सम्बन्ध में कोई भी कुछ नहीं बता सका। सोमप्रभ ने सुना तो हतबुद्धि हो गए। उन्होंने जल्दी-जल्दी एक लेख लिखकर आर्य भद्रिक के पास दक्षिण युद्धकेन्द्र पर भेज दिया और स्वयं दौड़े हुए तटस्थ केन्द्र पर आ पहुंचे। सेना की दुर्दशा देख उनकी आंखों में आंसू आ गए। सब विवरण सुनकर उन्होंने तत्काल ही अपना कर्तव्य स्थिर किया। प्रथम उन्होंने यह कठोर आज्ञा प्रचारित की कि सम्राट का लोप होने का समाचार स्कन्धावार में न फैलने पाए। सेनापति उदायि के बन्दी होने का समाचार भी गुप्त रखा गया। आहतों की व्यवस्था और सेना का पुनर्संगठन करने की जल्दी से जल्दी जो व्यवस्था हो सकती थी, उन्होंने फुर्ती से कर डाली। इसी समय आर्य भद्रिक भी आ पहुंचे। सोम ने कहा—"आर्य सेनापति, बड़े ही दुर्भाग्य की बात है !"

"क्या सम्राट हत हुए ?"

"ऐसी कोई सूचना नहीं है।"

"और उदायि ?"

"उन्हें बन्दी होते देखा गया है।"

"सम्राट के साथ कौन था ?"

आर्य गोपाल थे, वे भी नहीं लौटे हैं।"

"उन्हें जीवित या मृत किसीने देखा है ?"

"नहीं।"

"यह संदिग्ध है, भद्र, सम्राट के अन्वेषण के लिए अभी चर भेजने होंगे।"

"वह सब सम्भव व्यवस्था मैंने कर दी है। पर आपके सन्देह से मैं सहमत हूं, भन्ते सेनापति—कैसे सम्राट और गोपाल दोनों एक बार ही लोप हो गए !"

"किसी भी सैनिक ने उन्हें देखा ?"

"किसीने भी नहीं।"

"तो उन्होंने युद्ध में भाग नहीं लिया !"

इतना कहकर आर्य भद्रिक गहन चिन्ता में पड़ गए। सोमप्रभ महासेनापति का मुंह ताकने लगे। उन्होंने कहा—"क्या कोई गूढ़ रहस्य है, भन्ते सेनापति ?"

"भद्र सोम, यदि सम्राट हत हुए तो जम्बूद्वीप की अपार क्षति होगी। पूर्व का साम्राज्य भंग हो जाएगा।"

"यदि बन्दी हुए ?"

"पर किसीने देखा तो नहीं। इसीमें एक गूढ़ संकेत मुझे मिलता है भद्र ! हमें गुरुतर कार्य करना होगा।"

"मैं प्राणान्त उद्योग करूंगा, भन्ते सेनापति !"

"आश्वस्त हुआ, भद्र। अब हमें मागध सैन्य दो स्वतन्त्र भागों में विभक्त करनी होगी। एक भाग तो तुम लेकर वैशाली को निर्दयतापूर्वक रौंद डालो। दूसरे भाग को मैं लेकर लिच्छवि महासैन्य पर घोर संकट उपस्थित करूंगा। उसका वैशाली से सम्बन्ध-विच्छेद करना होगा। मैं एक भी लिच्छवि भट को जीवित नहीं लौटने दूंगा।"

"और मैं एक भी हर्म्य, एक भी प्रासाद, एक भी अट्टालिका वैशाली में खड़ी नहीं रहने दूंगा। मैं सबको भस्म का ढेर बनाकर, वैशाली को खेत बनाकर उसपर गधों से हल जुतवाऊंगा।"

"तभी सत्य प्रतिकार होगा, भद्र ! सम्राट मृत हों या बन्दी, जम्बूद्वीप का पूर्वी द्वार भंग नहीं हो सकता, जब तक यह ब्राह्मण खड्गहस्त जीवित है। मगध-साम्राज्य अजेय-अखंड है।"

सम्राट का लोप होना यत्न से गुप्त रखा गया। सेनापति उदायि आहत हुए हैं, यह प्रचारित किया गया।

६१. रथ-मुशल-संग्राम

सोम ने साम्ब को बुलाकर कहा—"साम्ब, तू अभी मधुवन जा और महाराज विदूडभ से कह कि चापाल चैत्य, सप्ताम्र चैत्य, कपिनैह चैत्य में प्रच्छिन्न सैन्य को लेकर चारों ओर आग लगाते हुए, सम्पूर्ण दुर्गों और सत्रों को सुरक्षित करते हुए दक्षिण-वामपार्श्व से वैशाली की ओर बढ़ें। मार्ग में जो पुरुष, जो घर, जो खेत, जनपद मिले, नष्ट करते जाएं तथा ज्योंही इधर दक्षिणपार्श्व से वैशाली कोट पर आक्रमण हो, वे सुरक्षित पचास सहस्र मागध भट्ट और पचास सहस्र अपनी कोसल-सैन्य लेकर दुर्धर्ष वेग से वैशाली को रौंद डालें। उनसे कहना—कल हम वैशाली की उन्मुक्त अभिषेक पुष्पकरिणी में एक ही काल में अपने-अपने खड्ग धोएंगे। जा, सूचना देकर सूर्यास्त से पूर्व ही तू आकर, मैं जहां जिस दशा में होऊं, सन्देश दे।"

तीन दण्ड रात्रिव्यतीत होने पर सोम ने वैशाली-अभियान किया। संकेत पाकर कोसलराज विदूडभ ने दूसरी ओर से चन्द्राकार सैन्य बिखेरकर वैशाली को घेर लिया। प्रभात होने से प्रथम ही घनघोर युद्ध होने लगा। इस मोर्चे पर काप्यक गान्धार और उनके भटों ने विकट पराक्रम प्रकट किया। परन्तु सोमप्रभ लिच्छवि और गान्धारों का व्यूह तोड़ गंगा पार उतर गए। उन्होंने रथ-मुशल महास्त्र से अपना संहार-कार्य प्रारम्भ कर दिया। यह एक लोह-निर्मित विराट-काय, बिना योद्धा और बिना सारथी का रथ था। इसपर किसी भी शस्त्र का कोई प्रभाव नहीं होता था। यह रथ लिच्छवि-सैन्य में घुस-कर रथ, हाथी, अश्व, पादाति घर, हर्म्य सभीका महाविध्वंस करने लगा। जो कोई इस लोह-यन्त्र की चोट में आ जाता, उसीकी चटनी हो जाती। भारतीय युद्ध में सर्वप्रथम इस महास्त्र का प्रयोग किया गया था, जिसका निर्माण आचार्य काश्यप ने अपनी अद्भुत प्रतिभा से किया था। इसका रहस्य अतिगोपनीय था। मरे हुए हाथियों, घोड़ों और सैनिकों के अम्बार लग गए। ढहे हुए घरों की धूल-गर्द से आकाश पट गया। यह लोह-यन्त्र केले के पत्ते की भांति घरों, प्राचीरों की भित्तियों को चीरता हुआ पार निकल जाता था। इस महाविध्वंसक-विनाशक महास्त्र के भय से प्रकम्पित विमूढ़ लिच्छवि भट, सेनापति सब कोई निरुपाय रह गए। शत-सहस्र भट भी मिलकर इस निर्द्वन्द्व महास्त्र की गति रोक नहीं सके। इस लौहास्त्र का सम्बल प्राप्त कर अजेय मागधी

विशाल लिच्छवि सैन्य को चीरती हुई चली गई। अब उसकी मार [illegible]ा की प्राचीरों पर होने लगी। सहस्रों भट धनुष पर अग्निवाण [illegible]-चढ़ाकर नगर पर फेंकने लगे। महास्त्र ने झील, तालाब और नदी [illegible] बांधों को तोड़ डाला। सारे ही नगर में जलप्रलय मच गई। आग और जल के बीच वैशाली महाजनपद ध्वंस होने लगा। लिच्छवि भट प्राणों का मोह छोड़ युद्ध करते-करते कट-कटकर मरने लगे। सोमप्रभ निर्दय-निर्भय दैत्य की भांति महानरसंहार करता हुआ आगे बढ़ने लगा। मागध सैन्य ने अब बहुत मात्रा में योगाग्नि और योगधुम का प्रयोग किया। औपनिषद् पराघात प्रयोग भी होने लगे। मदनयोग, दूषीविष, अन्धादृक के आक्षेप से शत्रु के सहस्रों हाथी, घोड़े और सैनिक उन्मत्त, बधिर और अन्धे हो गए।

चार दण्ड दिन रहते सोमप्रभ वैशाली के कोटद्वार पर जा टकराए। इसी समय कोसलराज विदूडभ भी अपनी सुरक्षित चमू लेकर वैशाली की परिधि पार कर वैशाली के अन्त:कोट पर आ धमके। उनके सहस्रों भट सीढ़ियां और कमन्द लगाकर प्राचीरों, दुर्गों और कंगूरों पर चढ़ गए।

शत्रु-मित्र सभीको यह दीख गया था कि वैशाली का अब किसी भी क्षण पतन सुनिश्चित है।

६२. कैंकर्य

इसी समय रक्तलुप्त खड्ग हाथ में लिए हुए गोपाल भट्ट ने सोमप्रभ के निकट आकर कहा :

"भन्ते सेनापति, सम्राट का एक आदेश है।"

सम्राट का समाचार सुनकर सोमप्रभ वेग से चिल्ला उठे—"सम्राट की जय!" उन्होंने कूदकर गोपाल भट्टके निकट आकर कहा :

"सम्राट जीवित हैं?"

"हैं, भन्ते सेनापति!"

"कहां?"

"देवी अम्बपाली के आवास में।"

सोमप्रभ के हृदय की जैसे गति रुक गई। उसने थूक निगलकर सूखते कंठ से कहा :

"क्या कहा? कहां?"

"देवी अम्बपाली के आवास में, भन्ते सेनापति !"
"क्या सम्राट बन्दी नहीं हुए ?"
"नहीं भन्ते, वे स्वेच्छा से देवी अम्बपाली के आवास में गए।"
"आप कहते हैं आर्य, स्वेच्छा से ?"
"हां, भन्ते सेनापति !"

सोम ने दांतों से होंठ काटे, फिर स्थिर मुद्रा से कहा, "सम्राट का क्या संदेश है भन्ते ?"

"सम्राट का आदेश है कि देवी अम्बपाली के आवास की रक्षा की जाए। आवास पर लिच्छवि सैन्य ने आक्रमण किया है।"

"किसलिए, आर्य ?"

"सम्राट को बन्दी करने के लिए।"

सोमप्रभ ने अवज्ञा से मुस्कराकर कहा—"इसीसे, भन्ते !"

फिर उन्होंने उधर से मुंह फेर लिया। बगल से तूर्य लेकर एक ऊंचे स्थल पर चढ़कर वेग से तूर्य फूंका। तूर्य की वह ध्वनि दूर-दूर तक फैल गई। इसके बाद उन्होंने अपना श्वेत उष्णीय खड्ग की नोक में लगाकर हवा में ऊंचा किया। इसके बाद फिर तीन बार तूर्य फूंका। इसका आश्चर्यजनक प्रभाव हुआ। मागध सैन्य में जो जहां था, वहीं स्तब्ध खड़ा रह गया। शत्रु-मित्र आश्चर्यचकित रह गए। युद्ध बन्द हो गया। सोमप्रभ ने तत्काल सैन्य को पीछे लौटने का आदेश दिया। कराहते हुए घायलों और जलते हुए हर्म्यों के बीच मागध सैन्य चुपचाप लौट चली। सबसे आगे अश्व पर सवार मागध सेनापति सोमप्रभ खड्ग की नोक पर अपने उष्णीष की धवल ध्वजा फहराता अवनतवदन जा रहा था।

मागध स्कन्धावार पर श्वेत पताका चढ़ा दी गई। वैशाली को सांस लेने का अवसर मिला।

६३. महाशिलाकण्टक विनाशयन्त्र

जिस समय मागध सेनापति ने दुर्धर्ष वेग से वैशाली पर रथ-मुशल अभियान किया था, उसी समय दक्षिण मोर्चे पर लिच्छवि सेनापति ने मागध महासेनापति आर्य भद्रिक को तीन ओर से घेर लिया था। लिच्छवियों के पास भी एक अद्‌भुत महास्त्र था। इसका नाम महाशिलाकण्टक था। यह यन्त्र कंकड़-पत्थर, घास-फूस, काठ-कूड़ा, जो कुछ

...तुच्छ साधन मिले, उसीको वह बड़े वेग से शत्रु पर फेंकता था ...फेंका हुआ पदार्थ महाशिला की भांति शत्रु पर आघात करता ...

मागध महासेनापति आर्य भद्रिक ने अपने व्यूह में हाथियों को पक्ष में और अश्वारोहियों को कक्ष में रख उरस्य में रथियों की स्थापना करके कठिन पारिपतन्तक-व्यूह की रचना की थी।

ज्योंही पूर्वीय सीमाभूमि में सोमप्रभ ने युद्ध छेड़ा, त्योंही लिच्छवि सेनापति सिंह ने महाशिलाकण्टक विनाशयन्त्र को लेकर मकर-व्यूह रच मागध सैन्य पर आक्रमण किया। महाशिलाकण्टक विनाशयन्त्र की प्रलयंकर मार के सम्मुख मागध सैन्य का शीघ्र ही व्यूह भंग हो गया। महासेनापति सुरक्षित सैन्य को ले व्यूह के पक्ष में स्थित सैन्य-संचालन कर रहे थे। विनाशयन्त्र से उनके पक्षस्थ हाथी जब पटापट मरने लगे और शेष विकल हो अपनी ही सैन्य को रौंदते हुए पीछे भाग चले, तब आर्य भद्रिक के लिए सैन्य को व्यवस्था में रखना कठिन हो गया। अन्तत: उन्होंने धनुर्धर रथियों को चौमुखा युद्ध करने का आदेश दिया और स्वयं रक्षित सैन्य को ले पचास धनुष के अन्तर पर पीछे हट, भागी हुई अव्यवस्थित सेना का पुनर्संगठन करने लगे। साथ ही आसन्न संकट की संभावना से उन्होंने सहायक सैन्य भेजने के लिए सोमप्रभ को संदेश भेज दिया। परन्तु लिच्छवि सेनापति सिंह ने चारों ओर से मागध सैन्य पर ऐसा अवरोध डाला कि मध्याह्न होते-होते आर्य भद्रिक का अपने स्कन्धावार और प्रधान सैन्य से सम्पूर्ण रीत्या सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया और वे चारों ओर से लिच्छवि, कोल और कासियों की सेना से घिर गए।

अब उन्होंने आक्रमण को रोकने तथा अपनी व्यवस्था बनाए रखने के लिए और हटना ठीक समझा, परन्तु इसका प्रभाव उलटा पड़ा। मागध सैन्य हतोत्साह हो गई। इसी समय उन्हें सेनापति सोमप्रभ का युद्ध बन्द कर देने का समाचार मिला। आर्य भद्रिक मर्मान्तिक वेदना से तड़प उठे और वे पांच धनुष पीछे हटकर खण्ड-युद्ध करने लगे।

सेनापति सिंह ने समझा—अब जय निश्चित है। वे अपने नायकों को निरन्तर अन्त तक युद्ध जारी रखने का आदेश दे स्कन्धावार को लौट आए। अभी दो दण्ड दिन शेष था।

६४. छत्र भंग

सम्राट बिम्बिसार अलसभाव से शय्या पर पड़े थे। उनके श
एक कौशेय और हलका उत्तरीय था। उनके केशगुच्छ कन्धों पर फ
थे। अधिक आसव पीने तथा रात्रि-जागरण के कारण उनके बड़े-बड़े नेत्र गुलाबी आभा धारण किए, अधखिले नूतन कमल की शोभा धारण कर रहे थे। द्वार पर बहुत-से मनुष्यों का कोलाहल हो रहा था, परन्तु सम्राट को उसकी चिन्ता न थी। वे सोच रहे थे देवी अम्बपाली का देव-दुर्लभ सान्निध्य सुख, जिसके सम्मुख राजवैभव, साम्राज्य और अपने जीवन को भी वे भूल गए थे।

परन्तु द्वार पर कोलाहल के साथ शस्त्रों की झनझनाहट तथा अश्वों और हाथियों का चीत्कार भी अधिकाधिक बढ़ता गया। सुरा-स्वप्न की कल्पना में यह कटु कोलाहल सम्राट को विघ्नरूप प्रतीत हुआ। उन्होंने हाथ बढ़ाकर निकट आसन्दी पर रखी स्फटिक कूप्यक की ओर हाथ बढ़ाया। दूसरे हाथ में पन्ने का हरित पात्र ले उसमें समूचा पात्र उंडेल दिया। परन्तु उसमें एक बूंद भी मद्य नहीं था। पात्र को एक ओर विरक्ति से फेंककर उन्होंने एक बार पूरी आंख उघाड़कर कक्ष में देखा। वहां कोई भी व्यक्ति न था। सम्राट ने हाथ बढ़ाकर चांदी के घण्टे पर ज़ोर से आघात किया। परन्तु उन्हें देखकर वड़ा आश्चर्य हुआ कि मदलेखा के स्थान पर स्वयं देवी अम्बपाली दौड़ी चली आ रही हैं। उनके मुंह पर रक्त की बूंद भी नहीं है और उनकी आंखें भय से फट रही हैं तथा वस्त्र अस्तव्यस्त हैं।

"हुआ क्या, देवी अम्बपाली ?" सम्राट ने संयत हो पूछा।

"आवास पर आक्रमण हो रहा है, देव !"

"किसलिए ?"

"आपको पकड़ने के लिए।"

"क्या मैंने लिच्छवि सेनापति, गणपति और राजप्रमुख जनों को बन्दी करने की आज्ञा नहीं दी थी ?"

"दी थी, देव।"

"तो वे बन्दी हुए ?"

"नहीं देव, वे आपको बन्दी किया चाहते हैं।"

"हूं," कहकर सम्राट विम्बिसार उठ बैठे। उनका गौर शरीर एक वार कम्पित हुआ। होंठ सम्पुटित हुए। उन्होंने जिज्ञासाभरी दृष्टि

[illegible]ी की ओर देखकर हंसते हुए कहा—"फिर इतना अधैर्य [illegible]ये, जब तक यह मागध सम्राट का खड्ग है ?" उन्होंने अपने [illegible]खे हुए अपने खड्ग की ओर देखकर कहा।

"देव, मुझे कुछ अप्रिय संदेश सम्राट से निवेदन करना है।"

"अप्रिय संदेश ? युद्धकाल में यह असंभाव्य नहीं। तुम क्या कहना चाहती हो, देवी अम्बपाली ?"

"देव, सेनापति उदायि मारे गए।"

"उदायि मारे गए ?" सम्राट ने चीत्कार कर कहा।

"और आर्य भद्रिक निरुपाय-निरावलम्ब हैं। वे घिर गए हैं और किसी भी क्षण आत्मसमर्पण कर सकते हैं।"

"अरे, तब तो आयुष्मान् सोमप्रभ और मेरे हाथियों ही पर आशा की जा सकती है।"

"भद्र सोमप्रभ ने युद्ध बन्द कर दिया, देव !"

"युद्ध बन्द कर दिया ? किसकी आज्ञा से ?"

"अपनी ही आज्ञा से, देव !"

सम्राट का सम्पूर्ण अंग थर-थर कांपने लगा। मस्तक का सम्पूर्ण रक्त नेत्रों में उतर आया। उन्होंने खूंटी पर लटकता अपना मणिखचित विकराल खड्ग फुर्ती से उठा लिया और उच्चस्वर से कहा, "यह मागध सम्राट श्रेणिक बिम्बिसार का सागर-स्नातपूत खड्ग है। मैं इसीकी शपथ खाकर कहता हूं कि अभी उस अधम-वंचक सोमप्रभ का शिरच्छेद करूंगा।" उन्होंने वेग से तीन बार विजयघण्ट पर प्रहार किया।

सिंहनाद ने नतमस्तक कक्ष में प्रवेश किया। सम्राट ने अकम्पित कण्ठ से कहा—"सिंहनाद, मुझे गुप्तमार्ग दिखा। मैं अभी मागध स्कन्धावार में जाऊंगा। देवी अम्बपाली, भय न करो ! मैं अभी एक मुहूर्त में उस कृतघ्न को मारकर तुम्हारे महालय का उद्धार करता हूं।"

सिंहनाद ने साहस करके कहा—"किन्तु देव···"

"एक शब्द भी नहीं, भणे, मार्ग दिखा।"

अम्बपाली पीपल के पत्ते की भांति कांपने लगीं। उन्होंने अर्थपूर्ण दृष्टि से एक ओर देखा। सिंहनाद ने गुप्त गर्भद्वार का उद्घाटन करके कहा—"इधर से, देव !"

सम्राट विकराल-नग्न खड्ग हाथ में लिए, नंगे बदन, नंगे सिर बढ़े चले गए। पीछे-पीछे सिंहनाद पागल की भांति जा रहा था। क्षणभर

में क्या होगा, नहीं कहा जा सकता था।

भीड़-भाड़ और अव्यवस्था में बहुतों ने सम्राट की ओर ... नहीं। जिन्होंने देखा, उनमें से बहुतों ने उन्हें पहचाना नहीं ... पहचाना, वह सहमकर पीछे हट गया। सम्राट, भारी-भारी ड... सेनापति सोमप्रभ के मण्डप के सम्मुख जा खड़े हुए।

मण्डप में नायक, उपनायक, सेनापति सब विषण्णवदन, मुंह लटकाए खड़े थे। सेनापति सोमप्रभ एकाग्र हो कुछ लिख रहे थे। हठात् सम्राट को नंगे सिर, नंगे शरीर, विकराल खड्ग हाथ में लिए आते देख सभी खड़े हो गए। सम्राट ने कठोर स्वर से पुकारा, "सोम!"

सोम ने देखा। उन्होंने पास पड़ा हुआ खड्ग उठा लिया और वह सीधे तनकर खड़े हो गए। सम्राट का अभिवादन नहीं किया।

सम्राट ने कहा : "तूने युद्ध बन्द कर दिया?"

"हां।"

"किसकी आज्ञा से।"

"अपनी आज्ञा से।"

"किस अधिकार से?"

"सेनापति के अधिकार से।"

"मेरी आज्ञा क्यों नहीं ली गई?"

"कुछ आवश्यकता नहीं समझी गई।"

"युद्ध किस कारण बन्द किया गया?"

"इस कारण कि युद्ध का उद्देश्य दूषित था।"

"कौन-सा उद्देश्य?"

"एक स्त्रैण, कापुरुष, कर्तव्यच्युत सम्राट ने अपनी पदमर्यादा और दायित्व का उल्लंघन कर एक सार्वजनिक स्त्री को पट्टराजमहिषी बनाने के उद्देश्य से युद्ध छेड़ा था।"

"और तेरा क्या कर्तव्य था रे, भाकुटिक?"

"मैंने तक्षशिला के विश्वविश्रुत विद्याकेन्द्र में राजनीति और रणनीति की शिक्षा पाई है। मेरा यह निश्चित मत है कि साम्राज्य की रक्षा के लिए साम्राज्य की सेना का उपयोग होना चाहिए, सम्राट की अभिलाषा और भोगलिप्सा की पूर्ति के लिए नहीं।"

"क्या सम्राट की मर्यादा तुझे विदित है?"

"यथावत्! और साम्राज्य की निष्ठा भी!"

"वह क्या मुझसे भी अधिक है?"

संदेह !"

मैं घोषणा करता हूं—देवी अम्बपाली को मैं पट्टराजमहिषी अभिषिक्त करके राजगृह के राजमहालय में ले जाऊंगा। लिए यदि एक-एक लिच्छवि के रक्त से भी वज्जी भूमि को आरक्त करना होगा, तो मैं करूंगा। वैशाली को भूमिसात् करना होगा, तो मैं करूंगा। मैं अविलम्ब युद्ध प्रारम्भ करने की आज्ञा देता हूं।"

"मैं अमान्य करता हूं। इस कार्य के लिए रक्त की एक बूंद भी नहीं गिराई जाएगी और देवी अम्बपाली मगध के राजमहालय में पट्ट-राजमहिषी के पद पर अभिषिक्त होकर नहीं जा सकतीं।"

"जाएं तो ?"

"तो, या तो सम्राट नहीं या मैं नहीं।"

सम्राट ने हुंकार भरी और खड्ग ऊंचा किया। सोम ने कहा :

"भन्ते ! नायक, उपनायक, सेनापति, सब सुनें—यह कामुक, स्त्रैण और कर्तव्यच्युत सम्राट और एक कर्मनिष्ठ साम्राज्य के सेवक के बीच का युद्ध है। सब कोई तटस्थ होकर यह युद्ध देखें।"

सम्राट ने कहा—"यह एक जारज, अज्ञातकुलशील, कृतघ्न सेवक के अक्षम्य विद्रोह का दण्ड है रे, आ।"

दूसरे ही क्षण दोनों महान योद्धा हिंसक युद्ध में रत हो गए। खड्ग परस्पर टकराकर घात-प्रतिघात करने लगे। क्षण-क्षण पर दोनों के प्राणनाश की आशंका होने लगी। दोनों ही घातक प्रहार कर रहे थे तथा दोनों ही अप्रतिम योद्धा थे। युद्ध का वेग बढ़ता ही गया।

अवसर पाकर सम्राट ने एक भरपूर हाथ सोमप्रभ के सिर को ताककर चलाया; परन्तु सोम फुर्ती से घूम गए। इससे खड्ग उनके कन्धों को छूता हुआ हवा में घूम गया। इसी क्षण सोम ने महावेग से खड्ग का एक जनेवा हाथ सम्राट पर मारा। सम्राट ने उसे उछल-कर खड्ग पर लिया। आघात पड़ते ही खड्ग झन्न से दो टूक होकर भूमि पर जा गिरा और उस आक्रमण के वेग को न संभाल सकने से सम्राट फिसलकर गिर पड़े। सम्राट के वक्ष पर अपना चरण रख सोम-प्रभ ने उनके कंठ पर खड्ग रखकर कहा—"श्रेणिक बिम्बिसार, अब इस असिधार से तुम्हारे कण्ठ पर तुम्हारा मृत्युपत्र लिखने का क्षण आ गया। वीर की भांति मृत्यु का वरण करो। तुम भयभीत तो नहीं ?"

सम्राट ने वीर-दर्प से कहा—"नहीं।"

इसी समय एक चीत्कार सुनाई दिया। सोम ने पीछे फिरकर देखा—

देवी अम्बपाली धूल और कीचड़ में भरी, अस्तव्यस्त वस्त्र, [illegible]
दोनों हाथ फैलाए चली आ रही थीं। उन्होंने वहीं से [illegible]
कहा—"सोम ! प्रियदर्शी सोम ! सम्राट को प्राणदान दो। [illegible]
करती हूं कि मैं मगध-राजमहालय में नहीं जाऊंगी, न मगध के [illegible]
राजमहिषी का पद धारण करूंगी।"

सोम ने अपना चरण सम्राट के वक्ष पर से नहीं हटाया, न उनके कण्ठ से खड्ग। उन्होंने मुंह मोड़कर अम्बपाली को देखा। अम्बपाली दौड़कर सोमप्रभ के चरणों में लोट गईं। उनकी अश्रुधारा से सोम के पैर भीग गए। वे कह रही थीं—"इनका प्राण मत लो सोम, मैं इन्हें प्यार करती हूं। परन्तु मैं कभी भी राजगृह नहीं जाऊंगी। मैं कभी इनका दर्शन नहीं करूंगी। स्मरण भी नहीं करूंगी। मैं हतभाग्या अपने हृदय को विदीर्ण कर डालूंगी। छोड़ दो प्रियदर्शन सोम, इन्हें छोड़ दो ! ये निरीह, शून्य और प्रेम के देवता हैं। ये महान सम्राट हैं। इन्हें प्राणदान दो। मेरे प्राण ले लो—प्रियदर्शन सोम ! ये प्राण तो तुम्हारे ही बचाए हुए हैं, ये तुम्हारे हैं, इन्हें ले लो, ले लो !"

अम्बपाली इस प्रकार विलाप करती हुई सोम के चरणों में भूमि पर पड़ी-पड़ी मूर्च्छित हो गईं।

सोम ने सम्राट के कण्ठ से खड्ग हटा लिया। वक्षस्थल से चरण भी हटा लिया। उन्होंने गम्भीर भाव से आज्ञा दी—"सम्राट को बन्दी कर लो। मैं इन्हें प्राणदान देता हूं। परन्तु इन्हें युद्धापराधी घोषित करता हूं। कर्तव्य न पालन करने के अभियोग पर सैनिक न्यायालय में इनका विचार होगा और देवी अम्बपाली को यत्न से लिच्छवि सेनापति के अधिकार में पहुंचा दो।"

इतना कहकर सोमप्रभ मण्डप से बाहर चले आए। उस समय सूर्यास्त हो चुका था और चारों दिशाओं में अन्धकार फैल गया था।

६५. आत्मसमर्पण

सिंह दक्षिण-युद्धक्षेत्र की कमान गान्धार काप्यक को सौंपकर उल्काचेल केन्द्र में लौट आए। यहां आकर उन्होंने अनेक लेख लिखे, बहुत-से आदेश प्रचारित किए। इसके बाद उन्होंने उल्काचेल के उपनायक अभीति को बुलाकर कहा, "सूर्यास्त में अब केवल एक घड़ी शेष है, काप्यक का कुछ न कुछ सन्देश मिलना चाहिए···।"

...भी उनके मुंह में थी कि उसी समय एक चर ने प्रवेश कर ...ते हुए कहा—"भन्ते, सेनापति काप्यक का यह पत्र है।"

...ने मुहर तोड़कर पत्र पढ़ा। समाचार आर्य भद्रिक के आत्म-...तथा उनसे भेंट के सम्बन्ध में था। सिंह ने तुरन्त खड़े होकर कहा—"आर्य भद्रिक को ससम्मान ले आओ, भद्र। मगध विजय हो गया, बहुत बड़ा कार्य सम्पूर्ण हुआ।"

आगे-आगे भद्रिक चण्ड और पीछे काप्यक गान्धार ने नग्न खड्ग लिए मण्डप में प्रवेश किया।

सिंह ने आगे बढ़कर खड्ग उष्णीय से लगाकर उच्च स्वर से कहा, "महामहिम मागध महासेनापति आर्य भद्रिक को लिच्छिवि सेनापति सिंह ससम्भ्रम अभिवादन निवेदन करता है।"

भद्रिक शांत भाव से आकर खड़े हो गए। कष्ट और सहिष्णुता की रेखाएं उनके मुखमण्डल पर थीं—परन्तु नेत्रों में वीरत्व और अभय की चमक थी। उन्होंने स्थिर कण्ठ से कहा—"आयुष्मान सिंह! मैं तुम्हें मगध-विजय पर साधुवाद देता हूं, तथा तुम्हारी शालीनता की श्लाघा करता हूं।"

"अनुगृहीत हुआ। आर्य ने आज मुझे गर्वित होने का अवसर दिया है।"

"परन्तु भद्र, मैंने बस-भर ऐसा नहीं किया। मैं पराजित होकर बंदी हुआ हूं। अब मैं जानना चाहता हूं कि··"

"अस्थायी संधि के नियम? वे ये हैं। आर्य, मैं समझता हूं, आपको आपत्ति न होगी।" सिंह ने तालपत्र का लेख सेनापति के सम्मुख उपस्थित किया।

उसपर एक दृष्टि डालकर सेनापति ने कहा—"तुम उदार हो आयुष्मान्, किन्तु मैं क्या एक अनुरोध कर सकता हूं?"

"मैं शक्ति-भर उसे पूर्ण करूंगा, आर्य!"

"महामात्य वर्षकार की अब हमें अत्यन्त आवश्यकता है। विना उनके परामर्श के सन्धि-वार्ता सम्पन्न न हो सकेगी।"

"ठीक है, आर्य!"

"और एक बात है।"

"क्या, आर्य?"

"मगध सेना के वन्दी सैनिकों को उनके शस्त्र और अश्वों सहित लौट जाने दिया जाए।"

"ऐसा ही होगा, आर्य !"

"धन्यवाद आयुष्मन्, मुझे तुम्हारे नियम स्वीकार हैं। [illegible] खड्ग है।" उन्होंने खड्ग कमर से खोलकर सिंह के सम्मुख [illegible]

"नहीं-नहीं, वह उपयुक्त स्थान पर है, आर्य। मैं विनत [illegible] हूं, उसे वहीं रहने दीजिए।"

भद्रिक ने खड्ग कमर में बांध, हाथ उठाकर सिंह को आशीर्वाद दिया और दो कदम पीछे हटकर चले गए।

६६. अश्रु-सम्पदा

मध्यरात्रि थी। एक भी तारा आकाशमण्डल में नहीं दीख रहा था। काले बादलों ने उस अंधेरी रात को और भी अंधेरी बना दिया था। दूर तक फैले हुए युद्धक्षेत्र में सहस्रों चिताएं जल रही थीं। उनमें युद्ध में निहित सैनिकों के शव जल रहे थे।

मगध-सेनापति सोमप्रभ एक महाशाल्मलि वृक्ष के नीचे तने से ढासना लगाए, ध्यानमुद्रा से यह महाविनाश देख रहे थे। गहन-चिन्ता से उनके माथे पर रेखाएं पड़ गई थीं। उनके बाल रूखे, धूलि-भरे और बिखरे हुए थे। मुंह सूख रहा था और होंठ सम्पुटित थे।

इसी समय निकट पदशब्द सुनकर उन्होंने किसी वनपशु की आशंका से खड्ग पर हाथ रखा; परन्तु देखा—एक मनुष्य-छाया उन्हीं की ओर आ रही है। छाया के और निकट आने पर उन्होंने भरे हुए स्वर में पुकारा—"कौन है ?"

एक स्त्री-मूर्ति आकर उनके निकट खड़ी हो गई। जलती हुई निकट की चिता के लाल-पीले प्रकाश में सोमप्रभ ने देखा। पहचानने में कुछ देर लगी। पहचानकर वे ससंभ्रम खड़े हो गए। उनके मुंह से जैसे आप ही निकल गया, "आप !"

"मैं ही हूं, सोमप्रभ !"

सोम स्तम्भित, जड़वत्, अवाक् खड़े रह गए। आगन्तुका ने और भी निकट आकर कहा—"तुझे इस अवस्था में इस स्थान पर देखने के लिए ही भद्र, अपना जीवन व्यतीत करती हुई मैं अब तक जीवित रही थी। आज मेरे दुर्भाग्यपूर्ण जीवन की सोलहों कला फल गईं, पुत्र! मेरा नारी होना, मां होना सब कुछ सार्थक हो गया।" सोम ने चिता के कांपते पीले प्रकाश में आंख उठाकर उस शोक-सन्तापदग्धा स्त्री के

[illegible] देखा, जिसपर वेदनाओं के इतिहास की गहरी अनगिनत [illegible] हुई थीं। सोम का मस्तक झुकने लगा और एक क्षण बाद [illegible] मूर्ति के चरणों पर लोट गए।

[illegible]न्तुका ने धीरे से बैठकर सोम का सिर उठाकर अपनी गोद में रखा। बहुत देर तक सोमप्रभ उस गोद में फफक-फफककर अबोध शिशु की भांति रोते रहे और वह महिमामयी महिला भी अपने आंसुओं से सोमप्रभ के धूलि-धूसरित सिर को सिंचन करती रहीं। बहुत देर बाद सोमप्रभ ने सिर उठाकर कहा—"मां, इस समय यहां पर क्यों आईं?"

"मेरे पुत्र, तुझ निस्संग के साथ रुदन किए बहुत दिन व्यतीत हुए। जब जीवन के प्रभात ही में शोक और दुर्भाग्य की कालिमा ने मुझे ग्रसा था, तब रोई थी, सब आंसू खर्च कर दिए थे। फिर इन चालीस वर्षों में एक बार भी रो नहीं पाई, भद्र, बहुत-बहुत यत्न किए, एक आंसू भी नहीं निकला। सो आज चालीस वर्ष बाद, पुत्र, तुझे छाती से लगाकर इस महाश्मशान में रोने की साध लेकर ही आई हूं। लोक-पाल-दिक्पाल देखें अब, यह एक मां अपने एकमात्र पुत्र को चालीस वर्षों से महाकृपण की भांति संचित अपने विदग्ध आंसुओं की निधि से सम्पन्न करने, आप्यायित करने, पुत्र पर अपने आंसुओं से भीगे हुए सुख-सौभाग्य की वर्षा करने आई है।"

सोम बहुत देर तक उनकी गोद में सिर झुकाए पड़े रहे। फिर उन्होंने सिर उठाकर कहा—"चलो मां, पुष्करिणी के उस पार अपनी कुटिया में मुझ परित्यक्त को ले चलो, मुझे अपनी शरण में ले लो, मां!"

"मेरे पुत्र, अभी एक गुरुतर कार्य और करना है, पहले वह हो जाए पीछे और कुछ।"

"वह क्या, मां?"

"तेरे पिता की मुक्ति।"

"मेरे पिता की मुक्ति? कहां हैं वे मां?"

"बन्दी हैं।"

"किसने उन्हें बन्दी किया है? मैं अभी उसका शिरच्छेद करूंगा।" उन्होंने अत्यन्त हिंस्रभाव से खड्ग उठाया।

"तैंने ही पुत्र! जा, उन्हें मुक्त कर।"

सोम आश्चर्य से आंखें फाड़-फाड़कर आर्या मातंगी को देखने लगे। भय, आशंका और उद्वेग से जैसे उनके प्राण निकलने लगे। बड़ी कठि-

नाई से उनके मुंह से टूटे-फूटे

"हां पुत्र, अब अधिक

सोम चीत्कार करके मूर्छि

बहुत देर तक आर्या मा

रहीं। उन्होंने पुत्र को होश

अवश जड़ता ने उन्हें घेर

लगा। नेत्र पथराने लगे,

सोम की मूर्च्छा भंग

चिल्लाकर कहा, "मां,

नहीं करूंगा।"

आर्या ने नि

निकट लाकर सुना

है, किन्तु उसके पित

आर्या के ओष्ठ, ह

६७.

उस अर्धनिशा में सेनापति

प्रहरी घबरा गए।

सोम ने पूछा—"क्य

"नहीं, जाग रहा है। यह

"ठीक है। अब यहां

प्रहरी ने द्वार खोल दि

धीरगति से उस क्षुद्र कक्ष में

सोम को देखकर वे क्षण-

"आ, आयुष्मान्! क्या

हूं। परन्तु एक वचन दे, खड्ग

हो, तो वही मगध-सम्राट होगा

में दिया था। वह वचन सम्राट

सोम ने भर्राए कण्ठ से क

"आश्वस्त हुआ; परन्तु

चलाने में सिद्धहस्त है।"

सोम ने उत्तर नहीं दि